जैन विविध ग्रंथमाला में छपी हुई पुस्तकें—

---

१ मेघमहोदय-वर्षप्रबोध—(महामहोपाध्याय श्री मेघविजय गणी विरचित) वर्ष कैसा होगा सुकाल पड़ेगा या दुष्काल, वर्षाद कब और कितनी बरसेगी, अनाज, रूई, कपास, सोना, चाँदी आदि वस्तुएँ सस्ती रहेंगी या महँगी इत्यादि मास शुभाशुभ प्रतिदिन जानने का यह अपूर्व ग्रंथ है। काशी आदि के पञ्चांग कर्ता राज्य ज्योतिषियों ने भी इस ग्रंथ को प्रामाणिक मानकर अपने पञ्चांगों में इस ग्रंथ पर से फलादेश लिख रहे हैं। सम्पूर्ण मूल ग्रंथ ३५०० श्लोक प्रमाण के साथ भाषान्तर भी लिखा गया है जिसे समस्त जनता इससे लाभ ले सकती है। कीमत चार रुपया।

२ जोइस हीर—मूल प्राकृत गाथा के साथ हिन्दी भाषान्तर छपा है यह समस्त प्रकार के मुहूर्त देखने के लिये अपूर्व ग्रंथ है। मूल्य पाँच आना।

३ वास्तुसार प्रकरण सचित्र—(ठक्कुर 'फेरू' विरचित) मूल और गुजराती भाषान्तर समेत छप रहा है। फक्त तीन मास में बाहर पड़ेगा। किमत पाँच रुपया।

शीघ्र ही प्रकाशित होने वाले ग्रंथ—

१ रूपमंडन सचित्र—(सूत्रधार 'मंडन' विरचित) मूल और भाषान्तर समेत। इसमें विष्णु के २४, महादेव के १२ दशावतार, ब्रह्मा गणपति गरुड़ भैरव भवानी दुर्गा, पार्वती आदि समस्त हिन्दुओं के तथा जैन देव देवियों के भिन्न २ स्वरूपों का वर्णन चित्रों के साथ अच्छी तरह लिखा गया है।

२ प्रासाद मंडन—(सूत्रधार 'मंडन' विरचित) मूल और भाषान्तर समेत। मंदिर सम्बन्धी वर्णन अनेक नक्शा के साथ बतलाया है।

३ जैन दर्शन चित्रावली—जयपुर के प्रसिद्ध चित्रकार के हाथ से मनोहर कलम से बने हुए, अष्ट महाप्रातिहार युक्त २४ तीर्थंकरों तथा उनके दोनों तरफ शासन देव और देवी के चित्र हैं।

४ गणितसार संग्रह—(कर्ता श्री महावीराचार्य) गणित विषय।

५ त्रैलोक्य प्रकाश—(सवन्न प्रतिभा श्री हेमप्रभसूरि विरचित) जातक विषय।

६ बेड़ा जातक—(नरचन्द्रोपाध्याय विरचित) जातक विषय।

७ भुवन दीपक सटीक—मूलकर्त्ता पद्मप्रभसूरि और टीकाकार सिंहतिलकसूरि है। इसमें एक प्रश्न कुण्डली पर से १११ प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है।

जो महाशय एक रुपया भेजकर स्थाई ग्राहक बनेंगे उनको जैन विविध ग्रंथमाला की हरएक पुस्तक पौनी किमत से मिलेगी।

प्राप्ति स्थान—

पं० भगवानदास जैन

संपादक—जैन विविध ग्रंथमाला,

मोतीसिंह भोमिया का रास्ता,

जयपुर सिटी (राजपूताना)

श्रीमान् परमपूज्य प्रातःस्मरणीय आबालब्रह्मचारी
गिरिनार आदि तीर्थोद्धारक शासनप्रभाविक
तपागच्छाधिपति जगमयुगप्रधान
जैनाचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री

विजयनीतिसूरीश्वरजी महाराज साहिब

के

कर कमलों में

सादर समर्पण

भवदीय कृपापात्र—
भगवानदास जैन

धन्यवाद

श्रीमान् शासनप्रभाविक गिरिनार आदि तीर्थोद्धारक जगमयुगप्रधान जैनाचार्य श्री विजयनीतिसूरीश्वरजी, महाराज, तथा श्रीमान् शान्तमूर्ति विद्वद्वर्य मुनिराज श्री जयन्तविजयजी महाराज, एवम् खरतरगच्छीय प्रवर्त्तिनी साध्वी श्रीमती पुण्यश्रीजी महाराज की विदुषी शिष्यरत्ना साध्वी श्रीमती विनयश्रीजी महाराज, उक्त तीनों पूज्यवरों के उपदेश द्वारा अनेक सज्जनों ने प्रथम से ग्राहक होकर मुझे उत्साहित किया है, जिसे यह ग्रंथ प्रकाशित होने का श्रेय आपको है।

श्रीमान् शासनसम्राट् जगमयुगप्रधान जैनाचार्य श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज के पट्टधर जैनागम-न्याय-दर्शन-ज्योतिष शिल्प-शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्री विजयोदयसूरीश्वरजी महाराज ने ग्रंथ को शुद्ध करने एवं कहीं २ कठिन अर्थ को समझाने की पूर्ण मदद की है, इसलिये मैं उनका बड़ा आभार मानता हूँ।

श्रीमान् प्रवर्त्तक श्री कान्तिविजयजी महाराज के विद्वान् प्रशिष्य मुनिराज श्री जसविजयजी महाराज के द्वारा प्राचीन भंडारों से अनेक विषय की हस्त लिखित प्राचीन पुस्तकें नकल करने को प्राप्त हुई हैं एतदर्थ आभार मानता हूँ। मिस्त्री भायशंकर गौरीशंकर सोमपुरा पालीताना वाले से मंदिर सम्बन्धी नक्शे एवम् माहिती प्राप्त हुई हैं, तथा जयपुरवाले प० जीवराज ओंकारलाल मूर्तिवाले ने कई एक नक्शे एवम् सुप्रसिद्ध मुसव्वर बद्रीनारायण जगन्नाथ चित्रकार ने सब देव देवियों आदि के फोटो बना दिये हैं तथा जिन सज्जनों ने प्रथम से ग्राहक बनकर मदद की है, उन सब को धन्यवाद देता हूँ।

अनुवादक

प्रस्तावना

मकान, मंदिर और मूर्ति आदि कैसे सुंदर कला पूर्ण बनाये जावें कि जिसको देखकर मन प्रफुल्लित हो जाय और खर्चा भी कम लगे। तथा उनमें रहनेवाले को क्या क्या सुख दुःख का अनुभव करना पड़ेगा? एवं किस प्रकार की मूर्ति से पुण्य पापों के फल की प्राप्ति हो सकती है? इत्यादि जानने की अभिलाषा प्रायः करके मनुष्यों को हुआ करती है। उन सबको जानने के लिये प्राचीन महर्षियों ने अनेक शिल्प ग्रंथों की रचना करके हमारे पर महान् उपकार किया है। लेकिन उन ग्रंथों की सुलभता न होने से आजकल इसका अभ्यास बहुत कम हो गया है। जिससे हमारी शिल्पकला का ह्रास हो रहा है। सैकड़ों वर्ष पहले शिल्पशास्त्र की दृष्टि से जो इमारतें बनी हुई देखने में आती हैं, वे इतनी मजबूत हैं कि हजारों वर्ष हो जाने पर भी आज तक विद्यमान हैं और इतनी सुंदर कलापूर्ण हैं कि उनको देखने के लिये हजारों कोसों से लोग आते हैं और देखकर मुग्ध हो जाते हैं। शिल्पकला का ह्रास होने का कारण मालूम होता है कि– मुसलमानों के राज्य में जबरदस्ती हिंदू धर्म से भ्रष्ट करके मुसलमान बनाते थे और सुंदर कला पूर्ण मंदिर व इमारतें जो लाखों रुपये खर्च करके बनायी जाती थी उनका विध्वंस कर डालते थे और ऐसी सुंदर कला युक्त इमारतें बनाने भी न देते थे एवं तोड़ डालने के भय से बनाना भी कम हो गया। इन अत्याचारों से शिल्पशास्त्र के अभ्यास की अधिक आवश्यकता न रही होगी। जिससे कितनेक ग्रंथ दीमक के आहार बन गये और जो मुसलमानों के हाथ आये वे जला दिये गये। जो कुछ गुप्त रूप से रह गये तो उनका जानकार न होने से अभी तक यथार्थ रूप से प्रकट न हो सके। जो पांच सात ग्रंथ छपे हैं उनमें साधारण जनता को कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। क्योंकि वे मूलमात्र होने से जो विद्वान् और शिल्पी होगा वही समझ सकता है। तथा हिन्दी भाषान्तर पूर्वक जो 'विश्वकर्मा प्रकाश' आदि छपे हुए हैं। वे केवल शब्दार्थ मात्र है, भाषान्तर करनेवाले महाशय को शिल्प शास्त्र का अनुभव पूर्वक अभ्यास न होने से उनकी परिभाषा को समझ नहीं सका, जिसे शब्दार्थ मात्र लिखा है एवं नकशे भी नहीं दिये गये, तो साधारण जनता कैसे समझ सकती है? मैंने भी तीन वर्ष पहले इस ग्रंथ का भाषान्तर शब्दार्थ मात्र किया था, उसमें मेरे को कुछ भी अनुभव न होने से समझता नहीं था। बाद विचार हुआ कि इसको अच्छी तरह समझकर एवं अनुभव करके लिखा जाय तो जनता को लाभ पहुँच सकेगा। ऐसा विचार कर तीन वर्ष तक इस विषय के कितनेक ग्रंथों का अध्ययन करके अनुभव भी किया। बाद इस ग्रंथ को सविस्तार खुलासावार लिखकर और नकशे आदि देकर आपके सामने रखने का साहस किया है। हिन्दी भाषा में इस विषय के पारिभाषिक शब्दों की सुलभता न होने से मैंने संस्कृत में ही रखे हैं, जिससे एक देशीय भाषा न होते सार्वत्रिक यही शब्दों का प्रयोग हुआ करे।

विषय इसमें अपूर्ण था, वह मैंने दूसरे ग्रंथ जो इसके योग्य थे, उनमें से लेकर रख दिया है। तथा ग्रंथ की समाप्ति के बाद मैंने परिशिष्ट में वज्रलेप जो प्राचीन समय में दीवाल आदि के ऊपर लेप किया जाता था, जिससे उन मकानों की हजारों वर्ष की स्थिति रहती थी। उसके पीछे जैन धर्म के तीर्थंकर देव और उनके शासन देव देवी तथा सोलह विद्यादेवी, नवग्रह, दश दिग्पाल इत्यादि का सचित्र स्वरूप मूल ग्रंथ के साथ दिया गया है। तथा अंत में प्रतिष्ठा सम्बन्धी मुहूर्त भी लिख दिया है। इत्यादि विषय लिखकर सर्वांग उपयोगी बना दिया है।

भाषान्तर में निम्न लिखित ग्रन्थों से मदद ली है—

१ अपराजीत, २ ज्ञानप्रकाश का आयतत्त्वाधिकार, ३ क्षीरार्णव १५ अध्ययन, ४ दीपार्णव का जिनप्रासाद अध्ययन, ५ प्रासादमंडन, ६ रूपमंडन, ७ प्रतिमा मान लक्षण, ८ परिमाण मंजरी, ९ मयमतम १० शिल्परत्न, ११ राजवल्लभ, १२ शिल्पदीपक, १३ समरांगण सूत्रधार, १४ युक्ति कल्पतरु, १५ विश्वकर्म प्रकाश, १६ लघु शिल्प संग्रह १७ विश्वकर्म विद्या प्रकाश, १८ जिन संहिता, १९ बृहत्संहिता अ० ५२ से ५९, २० सुलभ वास्तु शास्त्र, २१ बृहद् शिल्प शास्त्र, इन शिल्प ग्रन्थों के अतिरिक्त—२२ निर्वाण कलिका, २३ प्रवचन सारोद्धार, २४ आचार दिनकर, २५ विवेक विलास, २६ प्रतिष्ठा सार, २७ प्रतिष्ठा कल्प, २८ आरंभ सिद्धि, २९ दिन शुद्धि, ३० लग्न शुद्धि, ३१ मुहूर्त चिन्तामणि, ३२ ज्योतिष रत्नमाला, ३३ नारचन्द्र, ३४ त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, ३५ पद्मानंद महाकाव्य चतुर्विंशतिजिनचरित्र, ३६ जोइस हीर, ३९ स्तुति चतुर्विंशतिका सटीक (बप्पभट्टी शोभनमुनि और मेरुविजय कृत)।

प्रस्तुत ग्रंथ की हस्त लिखित प्रतियें निम्नलिखित ठिकाने से कोपी करने के लिये मिली थी

२ शासनसम्राट् जैनाचार्य श्री विजयनेमिसूरीश्वर ज्ञान भंडार, अहमदाबाद।

२ श्वेताम्बर जैन ज्ञान भंडार, जयपुर।

१ इतिहास प्रेमी मुनि श्री कल्याणविजयजी महाराज से प्राप्त।

१ मुनि श्री भक्तिविजयजी ज्ञान भंडार, भावनगर से मुनि श्री जसविजयजीमहाराज द्वारा प्राप्त।

१ जयपुर निवासी यतिवर्य्य श्यामलालजी महाराज से प्राप्त।

उपरोक्त सातों ही प्रति बहुत शुद्ध न थीं जिससे भाषान्तर करने में बड़ी मुश्किल पड़ी, जिससे कहीं २ गाथा का अर्थ भी छोड़ा गया है विद्वान सुधार कर पढ़ें और मेरे को मूल की सूचना करेंगे तो आगे सुधार कर दिया जायगा।

मेरी मातृभाषा गुजराती होने से भाषा दोष तो अवश्य ही रह गये होंगे, उनको सज्जन उपहास न करते हुए सुधार करके पढ़ें। किमधिकं सुज्ञेषु।

सं० १९९२ मार्गशीर्ष
शुक्ला २ गुरुवार

अनुवादक—

विषयानुक्रमणिका

दूसरा बिम्बपरीक्षा प्रकरण

तीसरा प्रासाद प्रकरण

परिशिष्ट

और तीसरा प्रासाद प्रकरण में सत्तर (७०) गाथा है। कुल दो सौ चौहत्तर (२७४) गाथा हैं ॥ २ ॥

भूमि परीक्षा—

चउवीसंगुलभूमी खरोवि पूरिज्ज पुण वि सा गत्ता।
तेणेव मट्टियाए हीणाहियसमफला नेया ॥ ३ ॥

मकान आदि बनाने की भूमि में २४ अंगुल गहरा खड्डा खोदकर निकली हुई मिट्टी से फिर उसही खड्डे को पूरे। यदि मिट्टी कम हो जाय, खड्डा पूरा भरे नहीं तो हीन फल, बढ़ जाय तो उत्तम और बराबर हो जाय तो समान फल जानना ॥३॥

अह सा भरिय जलेण य चरणसयं गच्छमाण जा सुसइ।
ति-दु-इग अंगुल भूमी अहम मज्झम उत्तमा जाण ॥ ४ ॥

अथवा उसी ही २४ अंगुल के खड्डे में बराबर पूर्ण जल भरे, पीछे एक सौ कदम दूर जाकर और वापिस लौटकर उसी ही जलपूर्ण खड्डे को देखे। यदि खड्डे में तीन अंगुल पानी सूख जाय तो अधम, दो अंगुल सूख जाय तो मध्यम और एक अंगुल पानी सूख जाय तो उत्तम भूमि समझना ॥ ४ ॥

वर्णानुकूल भूमि—

सियविप्पि अरुणखत्तिणि पीयवइसी अ कसिणसुद्दी अ।
मट्टियवण्णपमाणा भूमी निय निय वण्णसुक्खयरी ॥५॥

सफेद वर्ण की भूमि ब्राह्मणों को, लाल वर्ण की भूमि क्षत्रियों को, पीले वर्ण की भूमि वैश्यों को और काले वर्ण की भूमि शूद्रों को, इस प्रकार अपने २ वर्ण के सदृश रङ्गवाली भूमि सुखकारक होती है ॥ ५ ॥

दिक् साधन—

समभूमि दुकरवित्थरि दुवट्ट चक्कस्स मज्झि रविसंकं।
पढमंतछायगब्भे जमुत्तरा अद्धि-उदयत्थ ॥ ६ ॥

समतल भूमि पर दो हाथ के विस्तार वाला एक गोल चक्र करना और इस गोल के मध्य केन्द्र में बारह अंगुल का एक शंकु स्थापन करना। पीछे सूर्य के उदयार्द्ध में देखना, जहाँ शंकु की छाया का अन्त्य भाग गोल की परिधि में लगे वहाँ एक चिह्न करना, इसको पश्चिम दिशा समझना। पीछे सूर्य के अस्त समय देखना, जहाँ शंकु की छाया का अन्त्य भाग गोल की परिधि में लगे वहाँ दूसरा चिह्न करना, इसको पूर्व दिशा समझना। पीछे पूर्व और पश्चिम दिशा तक एक सरल रेखा खींचना। इस रेखा तुल्य व्यासार्द्ध मानकर एक पूर्व बिंदु से और दूसरा पश्चिम बिंदु से ऐसे दो गोल खींचने से पूर्व पश्चिम रेखा पर एक मत्स्याकृति (मछली की आकृति) जैसा गोल बनेगा। इसके मध्य बिंदु से एक सीधा रेखा खींची जाय जो गोल के संपात के मध्य भाग में लगे, जहाँ ऊपर के भाग में स्पर्श करे यह उत्तर दिशा और जहाँ नीचे भाग में स्पर्श करे यह दक्षिण दिशा समझना ॥९॥
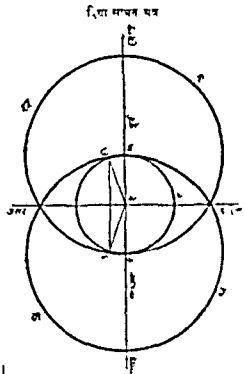
जैसे—'इ उ ए' गोल का मध्य बिंदु 'अ' है इस पर बारह अंगुल का शंकु स्थापन करके सूर्योदय के समय देखा तो शंकु की छाया गोल में 'क' बिंदु के पास प्रवेश करती हुई मालूम पड़ती है तो वह 'क' बिंदु पश्चिम दिशा समझना और वही छाया मध्याह्न के बाद 'च' बिंदु के पास गोल से बाहर निकलती मालूम होती है, तो वह 'च' बिंदु पूर्व दिशा समझना। बाद 'क' बिंदु से 'च' बिंदु तक एक सरल रेखा खींचना, यही पूर्वापर रेखा होती है। बाद इस पर केन्द्र के

बराबर व्यासार्द्ध मान कर एक 'क' बिन्दु से 'च छ ज' और दूसरा 'च' बिन्दु से 'क ख ग' गोल किया जाय तो मध्य में मच्छली के आकार का गोल बन जाता है। अब मध्य बिन्दु 'अ' से ऐसी एक लम्बी सरल रेखा खींची जाय, जो मच्छली के आकार वाले गोल के मध्य में होकर दोनों गोल के स्पर्श बिन्दु से बाहर निकले, यही उत्तर दक्षिण रेखा समझना।

मानलो कि शङ्कु की छाया तिरछी 'इ' बिन्दु के पास गोल में प्रवेश करती है, तो 'इ' पश्चिम बिन्दु और 'उ' बिन्दु के पास बाहर निकलती है, तो 'उ' पूर्व बिन्दु समझना। पीछे 'इ' बिन्दु से 'उ' बिन्दु तक सरल रेखा खींची जाय तो यह पूर्वा पर रेखा होती है। पीछे पूर्ववत् 'अ' मध्य बिन्दु से उत्तर दक्षिण रेखा खींचना।

चौरस भूमि साधन—

समभूमीति हीए वट्टंति अट्टकोण कक्कडए।
कूण दुदिसि¹त्तरगुल मज्झि तिरिय हत्थुचउरंसे ॥७॥

चौरस भूमि साधन यन्त्र
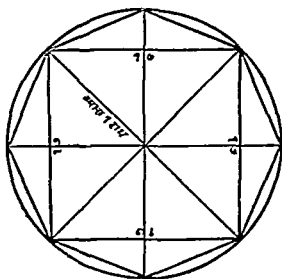
एक हाथ प्रमाण समतल भूमि पर आठ कोनों वाला त्रिज्या युक्त ऐसा एक गोल बनाओ कि कोने के दोनों तरफ सत्रह² अगुल के भुजा वाला एक तिरछा समचोरस हो जाय ॥ ७ ॥

यदि एक हाथ के विस्तार वाले गोल में अष्टमांश बनाया जाय तो प्रत्येक भुजा का माप नव अगुल होगा और चतुर्भुज बनाया जाय तो प्रत्येक भुजा का माप सत्रह अगुल होगा।

१ सत्तर' इति पाठ।

अष्टमांश भूमि स्थापना—

चउरंसि पि पि दिसे बारस भागाउ भाग पण मज्झे ।
कुणेहिं सड्ढ तिय तिय इय जायइ सुद्ध अट्टंस ॥ ८ ॥

अष्टमांश भूमि स्थापन चित्र

सम चौरस भूमि की प्रत्येक दिशा में बारह २ भाग करना, इनमें से पांच भाग मध्य में और साढे तीन २ भाग कोने में रखने से शुद्ध अष्टमांश होता है ॥ ८ ॥

इस प्रकार का अष्टमांश मंदिरों के और राजमहलों के मंडपों में विशेष करके किया जाता है।
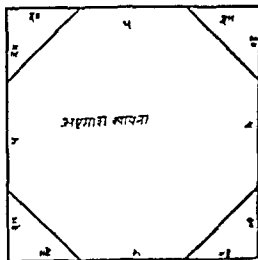
भूमि लक्षण फल—

दिणतिग बीयप्परुहा चउरंसाऽवम्मिणी' अफुट्टा य ।
अयसल्लर' भू सुहया पुव्वेसाणुत्तरंबुवहा ॥ ९ ॥
वम्मइणी वाहिकरी ऊसर भूमीइ हवइ रोरकरी ।
अइफुट्टा मिच्चुकरी दुक्खकरी तह य ससल्ला ॥ १० ॥

जो भूमि बोये हुए बीजों को तीन दिन में उगाने वाली, सम चौरस, दीमक रहित, बिना फटी हुई, शल्य रहित और जिसमें पानी का प्रवाह पूर्व ईशान या उत्तर तरफ जाता हो अर्थात् पूर्व ईशान या उत्तर तरफ नीची हो वही भूमि सुख देने वाली

१ वा । २ अक्खरा ।

अहिमतिऊण खडिय विहिपुव्व कन्नाया करे दाओ[1] ।
आणाविज्जइ पराह पणहा इम अक्खरे सल्ल ॥ १२ ॥

जिस भूमि पर मकान आदि बनवाना हो, उसी भूमि में समान नव भाग करें। इन नव भागों में पूर्वादि आठ दिशा और एक मध्य में 'ब क च त ए ह स प और (जय)' ऐसे नव अक्षर क्रम से लिखें ॥ ११ ॥

पीछे 'ॐ ह्रीं श्रीं ऐं नमो वाग्वादिनि मम प्रश्ने अवतर २' इसी मन्त्र से खड़ी (सफेद मट्टी) मन्त्र करके कन्या के हाथ में देकर कोई प्रश्नाक्षर लिखवाना या बोलवाना। जो ऊपर कहे हुए नव अक्षरों में से कोई एक अक्षर लिखे या बोले तो उसी अक्षर वाले भाग में शल्य है ऐसा समझना। यदि उपरोक्त नव अक्षरों में से कोई अक्षर प्रश्न में न आवे तो शल्य रहित भूमि जानना ॥ १२ ॥

शल्य शोधन चक्र

ईशान प	पूर्व ब	अग्नि क
उत्तर स	मध्य ज	दक्षिण च
वायव्य ह	पश्चिम ए	नैऋत्य त

बप्पराहे नरसल्लं सड्ढकरे मिच्चुकारगं पुव्वे ।
कप्पराहे खरसल्लं अग्गीए दुकरि निवदंडं ॥ १३ ॥

यदि प्रश्नाक्षर 'ब' आवे तो पूर्व दिशा में घर की भूमि में डेढ़ हाथ नीचे नर शल्य अर्थात् मनुष्य के हाड़ आदि हैं, यह घर धणी को मरण कारक है। प्रश्नाक्षर में 'क' आवे तो अग्नि कोण में भूमि के भीतर दो हाथ नीचे गधे की हड्डी आदि हैं, यह घर की भूमि में रह जाय तो राज दंड होता है अर्थात् राजा से भय रहे ॥ १३ ॥

जामे चप्पराहेण नरसल्लं कडितलम्मि मिच्चुकरं ।
तप्पराहे निरईए सड्ढकरे साणुसल्लु सिसुहाणी ॥ १४ ॥

जो प्रश्नाक्षर में 'च' आवे तो दक्षिण दिशा में गृह भूमि में कटी बराबर नीचे मनुष्य का शल्य है, यह गृहस्वामी को मृत्यु कारक है। प्रश्नाक्षर में 'त' आवे

1 दाओ।

तो नैर्ऋत्य कोण में भूमि में डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते का शल्य है यह बालक को हानि कारक है अर्थात् गृहस्वामी को सन्तान का सुख न रहे ॥ १४ ॥

पच्छिमदिसि एपण्हे सिसुसल्लं करदुगम्मि परएस ।
वायवि हपण्हि चउकरि अंगारा मित्तनासयरा ॥ १५ ॥

प्रश्नाक्षर में यदि 'ए' आवे तो पश्चिम दिशा में भूमि में दो हाथ के नीचे बालक का शल्य जानना, इसी से गृहस्वामी परदेश रहे अर्थात् इसी घर में निवास नहीं कर सकता। प्रश्नाक्षर में 'ह' आवे तो वायव्य कोण में भूमि में चार हाथ नीचे अङ्गारे (कोयले) हैं, यह मित्र (सम्बन्धी) मनुष्य को नाश कारक है ॥ १६ ॥

उत्तरदिसि मप्पण्हे दियवरसल्लं कडिम्मि रोरकरं ।
पप्पण्हे गोसल्लं सड्ढकरे धणनिणासमीसाणे ॥ १६ ॥

प्रश्नाक्षर में यदि 'म' आवे तो उत्तर दिशा में भूमि के भीतर कमर बराबर नीचे मनुष्य का शल्य जानना, यह रह जाय तो गृहस्वामी को दरिद्र करता है। यदि प्रश्नाक्षर में 'प' आवे तो ईशान कोण में डेढ़ हाथ नीचे गौ का शल्य जानना, यह गृहपति के धन का नाश कारक है ॥ १६ ॥

जप्पण्हे मज्झगिहे अइछार-कवाल-केस बहुसल्ला ।
वच्छत्थलप्पमाणा पाएण य हुंति मिच्चुकरा ॥ १७ ॥

प्रश्नाक्षर में यदि 'ज' आवे तो भूमि के मध्य भाग में छाती बराबर नीचे अतिक्षार, कपाल, केश आदि बहुत शल्य जानना ये घर के मालिक को मृत्युकारक है ॥ १७ ॥

इय एवमाइ अन्निवि जे पुव्वगयाइं हुंति सल्लाइं ।
ते सव्वेवि य सोहिवि वच्छबले कीरए गेहं ॥ १८ ॥

इस प्रकार जो पहले शल्य कहे हैं वे और दूसरे जो कोई शल्य देखने में आवे उन सबको निकाल कर भूमि को शुद्ध करे, पीछे वत्स बल देखकर मकान बनवावे ॥ १८ ॥

विश्वकर्म प्रकाश में कहा है कि—

"जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापि वा ।
क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदनमारभेत् ॥"

जल तक या पत्थर तक या एक पुरुष प्रमाण खोदकर, शल्य को निकाल कर भूमि को शुद्ध करे, पीछे उस भूमि पर घर बनाना आरम्भ करे।

वत्स चक्र—

तजहा—कन्नाइतिगे पुव्वे वच्छो तहा दाहिणे धणाइतिगे ।
पच्छिमदिसि मीणतिगे मिहुणतिगे उत्तरे हवइ ॥१६॥

जब सूर्य कन्या, तुला और वृश्चिक राशि का हो तब वत्स का मुख पूर्व दिशा में; धन, मकर और कुंभ राशि का सूर्य हो तब वत्स का मुख दक्षिण दिशा में; मीन, मेष और वृष राशि का सूर्य हो तब वत्स का मुख पश्चिम दिशा में, मिथुन, कर्क और सिंह राशि का सूर्य हो तब वत्स का मुख उत्तर दिशा में रहता है ॥ १६ ॥

जिस दिशा में वत्स का मुख हो उस दिशा में खात प्रतिष्ठा द्वार प्रवेश आदि का कार्य करना शास्त्र में मना है, किन्तु वत्स प्रत्येक दिशा में तीन २ मास रहता है तो तीन २ मास तक उक्त कार्य रोकना ठीक नहीं, इसलिये विशेष स्पष्ट रूप से कहते हैं—

गिहभूमिसत्तभाए पणदह तिहि तीस तिहि-दहक्कमसा ।
इअ दिणसंखा चउदिसि सिरपुच्छसमंकि वच्छठिई ॥ २० ॥

२

घर की भूमि का प्रत्येक दिशा में सात २ भाग समान कीजे, इनमें क्रम से प्रथम भागमें पांच दिन, दूसरे में दश, तीसरे में पंद्रह, चौथे में तीस, पांचवें में पंद्रह, छट्ठे में दश और सातवें भाग में पांच दिन वत्स रहता है। इसी प्रकार दिन संख्या चारों ही दिशा में समझ लेना चाहिये और जिस अंक पर वत्स का शिर हो उसी के सामने का बराबर अंक पर वत्स की पूंछ रहती है इस प्रकार वत्स की स्थिति है ॥२०॥

वत्स चक्र

ईशान	५ कन्या	१० कन्या	१५ कन्या	३० तुला	१५ वृश्चिक	१० वृश्चिक	५ वृश्चिक	अग्नि

उत्तर: ५ सिंह, १० सिंह, १५ सिंह, ३० कर्क, १५ मिथुन, १० मिथुन, ५ मिथुन

पूर्व

घर या प्रासाद करनेकी भूमि

दक्षिण: ५ धनु, १० धनु, १५ धनु, ३० मकर, १५ कुंभ, १० कुंभ, ५ कुंभ

पश्चिम

वायव्य	५ वृष	१० वृष	१५ वृष	३० मेष	१५ मीन	१० मीन	५ मीन	नैऋत्य

पूर्व दिशा में खात आदि का कार्य करना है उसमें यदि सूर्य कन्या राशि का हो तो प्रथम पांच दिन तक प्रथम भाग में ही खात आदि न करें किन्तु और जगह अच्छा मुहूर्त देखकर कर सकते हैं। उसके आगे दश दिन तक दूसरे भाग को छोड़कर अन्य जगह उक्त कार्य कर सकते हैं। उसके आगे का पंद्रह दिन तीसरे भाग को छोड़कर काम करें। यदि तुला राशि का सूर्य हो तो पूरे तीस दिन मध्य भाग में द्वार आदि का शुभ काम नहीं करें। वृश्चिक राशि के सूर्य का प्रथम पंद्रह दिन पांचवा भाग को, आगे का दश दिन छट्ठा भाग को और अन्तिम पांच दिन सातवां भाग को छोड़कर अन्य जगह कार्य कर सकते हैं। इसी प्रकार चारों ही दिशा के भाग की दिन संख्या समझ लेना चाहिये।

वत्सफल—

अग्गिमओ आउहरो धणक्खयं कुणइ पच्छिमो वच्छो ।
वामो य दाहिणो वि य सुहावहो हवइ नायव्वो ॥ २१ ॥

सम्मुख वत्स हो तो आयुष्य का नाशकारक है, पीछे (पिछाड़ी) वत्स हो तो धन का क्षय करता है, बांयी ओर या दाहिनी ओर वत्स हो तो सुख कारक जानना ॥ २१ ॥

प्रथम खात करने के समय शेषनाग चक्र (राहुचक्र) को देखते हैं उसको भी प्रसंगोपात लिखता हूं। इसको विश्वकर्मा ने इस प्रकार बतलाया है—

"ईशानतः सर्पति कालसर्पो विहाय सृष्टिं गणयेद् विदिक्षु ।
शेषस्य वास्तोर्मुखमध्यपुच्छं त्रयं परित्यज्य खनेच्च तुर्यम् ॥

प्रथम ईशान कोण से शेषनाग (राहु) चलता है। सृष्टिमार्ग को छोड़ कर विपरीत विदिशा में उसका मुख, मध्य (नाभि) और पूंछ रहता है अर्थात् ईशान कोण में नाग का मुख, वायव्य कोण में मध्य भाग (पेट) और नैर्ऋत्य कोण में पूंछ रहता है। इन तीनों कोण को छोड़कर चौथा अग्नि कोण जो खाली है, इसमें प्रथम खात करना चाहिये। मुख नाभि और पूंछ के स्थान पर खात करे तो हानिकारक है, दैवज्ञवल्लभ ग्रन्थ में कहा है कि—

"शिरः खनेद् मातृपितॄन् निहन्यात्, खनेच्च नाभौ भयरोगपीडाः ।
पुच्छं खनेत् स्त्रीशुभगोत्रहानिः स्त्रीपुत्ररत्नान्नवसूनि शून्ये ॥"

राजवल्लभ में अन्य प्रकार से कहा है—

कन्यादौ रविसंस्थे फणिमुखं पूर्वादिसृष्टिक्रमात् ।

अर्थात् सूर्य कन्या आदि तीन राशियों में हो तब शेषनाग का मुख पूर्व दिशा में रहता है। बाद में इसी क्रम से धन आदि तीन राशियों में दक्षिण में मीन आदि तीन राशियों में पश्चिम में और मिथुन आदि तीन राशियों में उत्तर में नाग का मुख रहता है।

पूर्वास्येऽनिलखातनं यममुखे खातं शिवे कारयेत् ।
शीर्षे पश्चिमगे च वह्निखननं सौम्ये खनेद् नैर्ऋते ॥

अर्थात् नाग का मुख पूर्व दिशा में हो तब वायुकोण में खात करना, दक्षिण में मुख हो तब ईशान कोण में खात करना, पश्चिम में मुख हो तब अग्नि कोण में खात करना और उत्तर में मुख हो तब नैर्ऋत्य कोण में खात करना।

यदि प्रथम खात मस्तक पर करे तो माता पिता का विनाश, मध्य भाग नाभि के स्थान पर करे तो राजा आदि का भय और अनेक प्रकार के रोग आदि की पीड़ा हो। पूछ के स्थान पर खात करे तो स्त्री, सौभाग्य और वंश (पुत्रादि) की हानि हो और खाली स्थान पर करे तो स्त्री पुत्र रत्न अन्न और द्रव्य की प्राप्ति हो।

यह शेष नाग चक्र बनाने की रीति इस प्रकार है—मकान आदि बनाने की भूमि के ऊपर बराबर समचोरस आठ आठ कोठे प्रत्येक दिशा में बनाने अर्थात् चौंस-

ठन ६४ कोठे बनावे। पीछे प्रत्येक कोठे में रविवार आदि वार लिखे। और अंतिम कोठे में आद्य कोठे का वार लिखे। पीछे इनमें इस प्रकार नाग की आकृति बनावे कि शनिवार और मंगलवार के प्रत्येक कोठे में स्पर्श करती हुई मालूम पड़े, जहां २
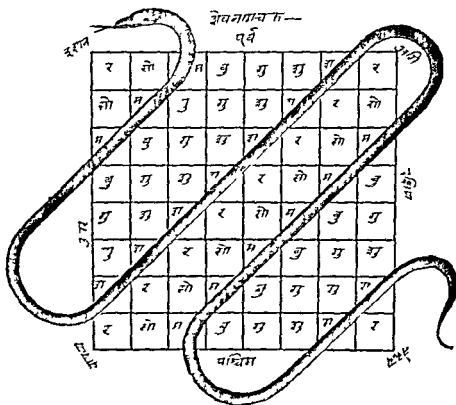
नाग की आकृति मालूम पड़े अर्थात् जहां २ शनि मंगलवार के कोठे हों वहां खात आदि न करे।

नाग के मुख को जानने के लिये मुहूर्तचिन्तामणि में इस प्रकार कहा है कि—

"देवालये गेहविधौ जलाशये, राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे, खाते मुखात् पृष्ठविदिक् शुभा भवेत् ॥"

देवालय के प्रारम्भ में राहु (नाग) का मुख, मीन मेष और वृषभ राशि के सूर्य में ईशान कोण में, मिथुन कर्क और सिंह राशि के सूर्य में वायव्य कोण में, कन्या तुला और वृश्चिक राशि के सूर्य में नैर्ऋत्य कोण में, धन मकर और कुंभ राशि के सूर्य में आग्नेय दिशा में रहता है।

घर के प्रारम्भ में राहु (नाग) का मुख, सिंह कन्या और तुला राशि के सूर्य में ईशान कोण में, वृश्चिक धन और मकर राशि के सूर्य में वायव्य कोण में, कुंभ मीन और मेष के सूर्य में नैर्ऋत्य कोण में, वृष मिथुन और कर्क राशि के सूर्य में अग्नि कोण में रहता है।

कुआं बावड़ी तलाव आदि जलाशय के आरम्भ में राहु का मुख, मकर कुम्भ और मीन के सूर्य में ईशान कोण में, मेष वृष और मिथुन के सूर्य में वायव्य कोण में, कर्क सिंह और कन्या के सूर्य में नैर्ऋत्य कोण में, तुला वृश्चिक और धन के सूर्य में अग्नि कोण में रहता है।

मुख के पिछले भाग में खात करना। मुख ईशान कोण में हो तब उसका पिछला कोण अग्नि कोण में प्रथम खात करना चाहिये। यदि मुख वायव्य कोण में हो तो खात ईशान कोण में, नैर्ऋत्य कोण में मुख हो तो खात वायव्य कोण में और मुख अग्नि कोण में हो तो खात नैर्ऋत्य कोण में करना चाहिये।

हीरकलश मुनि ने कहा है कि—

"वसहाइ गिणिय वेई चेइअणिणाइ गेहसिंहाइ।
जलमयर दुग्गि कन्ना कम्मेण ईसानइणलिय ॥

विवाह आदि में जो वेदी बनाई जाती है उसके प्रारम्भ में वृषभ आदि,

चैत्य (देवालय) के प्रारम्भ में मीन आदि, गृहारम में सिंह आदि, जलाशय में मकर आदि और किला (गढ़) के आरम्भ में कन्या आदि तीन २ संक्रांतियों में राहु का मुख ईशान आदि विदिशा में विलोम क्रम से रहता है।

शेष नाग (राहु) मुख जानने का यंत्र—

	ईशान कोण	वायव्य कोण	नैर्ऋत्य कोण	अग्निकोण
देवालय	मीन मेष वृष के सूर्य में राहु मुख	मिथुन, कर्क सिंह के सूर्य में राहु मुख	कन्या, तुला, वृश्चिक के सूर्य में राहु मुख	धन, मकर कुंभ के सूर्य में राहु मुख
घर	सिंह कन्या तुला के सूर्य में राहु मुख	वृश्चिक धन मकर के सूर्य में राहु मुख	कुम्भ मीन मेष के सूर्य में राहु मुख	वृष मिथुन, कर्क के सूर्य में राहु मुख
जलाशय	मकर कुम्भ मीन के सूर्य में राहु मुख	मेष वृष, मिथुन के सूर्य में राहु मुख	कर्क सिंह, कन्या के सूर्य में राहु मुख	तुला वृश्चिक धन के सूर्य में राहु मुख
वेदी	वृष मिथुन कर्क के सूर्य में राहु मुख	सिंह कन्या तुला के सूर्य में राहु मुख	वृश्चिक, धन, मकर के सूर्य में राहु मुख	कुम्भ मीन मेष के सूर्य में राहु मुख
किला	कन्या तुला वृश्चिक के सूर्य में राहु मुख	धन मकर, कुम्भ के सूर्य में राहु मुख	मीन मेष वृष के सूर्य में राहु मुख	मिथुन, कर्क, सिंह के सूर्य में राहु मुख

गृहारम्भ में वृषभ वास्तु चक्र—

"गेहाद्यारम्भेऽर्कभाद्वत्सशीर्षे, रामैर्दाहो वेदमिरग्रपादे ।
शून्यं वेदैः पृष्ठपादे स्थिरत्वं, रामैः पृष्ठे श्रीर्युगैर्दक्षकुक्षौ ॥ १ ॥

लाभो रामैःपुच्छगे'स्वामिनाशो, वेदैर्न स्य वामकुक्षौ सुस्वरपे' ।
रामै पीडा भवत वार्कधिष्ण्या दैवैरग्नेर्दिग्भिरत्नैर्नं समत्मन् ॥ २ ॥'

गृह और प्रासाद आदि के आरम्भ में वृषवास्तु चक्र देखना चाहिये। जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उस नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिनती करना। प्रथम तीन नक्षत्र वृषभ के शिर पर समझना, इन नक्षत्रों में गृहादिक का आरम्भ करे तो अग्नि का उपद्रव हो। इनके आगे चार नक्षत्र वृषभ के अगले पाँव पर, इन में आरम्भ करे तो मनुष्यों का वास न रहे, शून्य रहे। इनके आगे चार नक्षत्र पिछले पाँव पर, इनमें आरम्भ करे तो गृह स्वामी का स्थिर वास रहे। इनके आगे तीन नक्षत्र पीठ भाग पर, इनमें आरम्भ करे तो लक्ष्मी की प्राप्ति हो। इनके आगे चार नक्षत्र दक्षिण कोख (पेट) पर, इनमें आरम्भ करे तो अनेक प्रकार का लाभ और शुभ हो। इनके आगे तीन नक्षत्र पूंछ पर, इनमें आरम्भ करे तो स्वामी का विनाश हो इनके आगे चार नक्षत्र बांयी कोख (पेट) पर, इनमें आरम्भ करे तो गृह स्वामी को दरिद्र बनावे। इनके आगे तीन नक्षत्र मुख पर इनमें आरम्भ करे तो निरन्तर कष्ट रहे। सामान्य रूप से कहा है कि—सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिनना, इनमें प्रथम सात नक्षत्र अशुभ हैं इनके आगे ग्यारह अर्थात् आठ से अठारह तक शुभ हैं और इनके आगे दस अर्थात् उन्नीस से अट्ठाईस तक के नक्षत्र अशुभ हैं।

वृष वास्तु चक्र—

स्थान	नक्षत्र	फल
मस्तक	३	अग्निदाह
अ. पाद	४	शून्यता
पृ. पद	४	स्थिरता
पृष्ठ	३	लक्ष्मी प्राप्ति
द. कुक्षी	४	लाभ
पुच्छ	३	स्वामिनाश
वा. कुक्षी	४	निर्धनता
मुख	३	पीडा

गृहारंभे तारीफल—

धनमीणमिहुणकरणा भवतीण न कीरए गेहं ।
तुलविच्छियमेसविसे पुव्वावर सेससेस दिसे ॥२२॥

धन मीन मिथुन और कन्या इन राशियों के पर सूर्य हो तब घर का आरम नहीं करना चाहिए। तुला वृश्चिक मेष और वृष इन चार राशियों में से किसी भी राशि का सूर्य हो तब पूर्व और पश्चिम दिशा के द्वारवाला घर न बनवावे, किन्तु दक्षिण या उत्तर दिशा के द्वारवाले घर का आरम्भ करे। तथा बाकी की राशियों (कर्क, सिंह, मकर और कुम्भ) के पर सूर्य हो तब दक्षिण और उत्तर दिशा के द्वार वाला घर न बनावें, कि तु पूर्व और पश्चिम दिशा के द्वार वाले घर का आरम्भ करें ॥२२॥

नारद मुनि ने बारह राशियों का फल इस प्रकार कहा है —

"गृहसंस्थापन सूर्ये मेषस्थे शुभद भवेत् ।
वृषस्थे धनवृद्धिः स्याद् मिथुने मरण ध्रुवम् ॥
कर्कटे शुभद प्रोक्त सिंहे भृत्यविवर्द्धनम् ।
कन्या रोग तुला सौख्य वृश्चिके धनवर्द्धनम् ॥
कार्मुके तु महाहानि मकरे स्याद धनागमः ।
कुभे तु रत्नलाभ' स्याद् मीने भयमगावहम् ॥

घर की स्थापना यदि मेष राशि के सूर्य में करे तो शुभदायक है, वृष राशि के सूर्य में धन वृद्धि कारक है, मिथुन के सूर्य में निश्चय से मृत्यु कारक है, कर्क के सूर्य में शुभदायक कहा है, सिंह के सूर्य में सेवक-नौकरों की वृद्धि कारक, कन्या के सूर्य में रोगकारक, तुला के सूर्य में सुखकारक, वृश्चिक के सूर्य में धन वृद्धिकारक, धन के सूर्य में महाहानिकारक मकर के सूर्य में धन की प्राप्ति कारक कुम के सूर्य में रत्न का लाभ, और मीन के सूर्य भयदायक है।

गृहारम्भे मास फल—

मोय-धणा-मिच्चु-हाणि अत्थ सुन्न च कलह-उव्वसिय ।
पूया-सपय-अग्गी सुह च चित्ताइमासफल ॥२३॥

घर का आरम्भ चैत्र मास में करे तो शोक, वैशाख में धन प्राप्ति, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में हानि, श्रावण में अर्थ प्राप्ति, भाद्रपद में गृह शून्य, आश्विन में कलह, कार्तिक में उजाड़, मार्गसिर में पूजा-सन्मान, पौष में सम्पदा प्राप्ति, माघ में अग्नि भय और फाल्गुन में किया जाय तो सुखदायक है ॥२३॥

हीरकलश मुनि ने कहा है कि—

"कत्तिय माह भद्दवे चित्त आसो य जिट्ठ आसाढे ।
गिहआरम्भ न कीरइ अवरे कल्लाणमंगलं ॥"

कार्तिक, माघ, भाद्रपद, चैत्र, आसोज, जेठ और आषाढ़ इन सात महिनों में नवीन घर का आरम्भ नहीं करे और बाकी के—मार्गसिर, पौष, फाल्गुन, वैशाख और श्रावण इन पांच महीनों में घर का आरम्भ करना मंगल दायक है ।

वइसाहे मग्गसिरे सावणि फग्गुणि मयन्तरे पोसे ।
सियपक्खे सुहदिवसे कए गिहे हवइ सुहरिद्धी ॥२४॥

वैशाख, मार्गशिर, श्रावण, फाल्गुन और मतान्तर से पौष भी इन पांच महीनों में शुक्ल पक्ष और अच्छे दिनों में घर का आरम्भ करे तो सुख और ऋद्धि की प्राप्ति होती है ॥ २४ ॥

पीयूषधारा टीका में जगन्मोहन का कहना है कि—

"पाषाणेष्टयादिगेहादि निन्द्यमासे न कारयेत् ।
तृणदारुगृहारंभे मासदोषो न विद्यते ॥"

पत्थर ईंट आदि के मकान आदि को निन्दनीय मास में नहीं करना चाहिए। किन्तु घास लकड़ी आदि के मकान बनाने में मास आदि का दोष नहीं है ।

१ मुहूर्तचिन्तामणि में लिखा है कि [illegible] आश्विन में तुला कार्तिक में वृश्चिक [illegible] घर का आरम्भ करना अच्छा माना है ।

खातारम्भे नक्षत्र फल—

सुहलग्गे चंदबले खणिज्ज नीमीउ अहोमुहे रिक्खे ।
उड्ढमुहे नक्खत्ते चिणिज्ज सुहलग्गि चंदबले ॥२५॥

शुभ लग्न और चन्द्रमा का बल देख कर अधोमुख नक्षत्रों में खात मुहूर्त करना तथा शुभ लग्न और चन्द्रमा बलवान देखकर ऊर्ध्व संज्ञक नक्षत्रों में शिला का रोपण करना चाहिये ॥२५॥

पीयूषधारा टीका में माण्डव्य ऋषि ने कहा है कि—

"अधोमुखैर्भैर्विदधीत खातं, शिलास्तथा चोर्ध्वमुखैश्च पट्टम् ।
तिर्यङ्मुखैर्द्वारकपाटयानं, गृहप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवैः ॥"

अधोमुख नक्षत्रों में खात करना, ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में शिला तथा पाटड़ा का स्थापन करना, तिर्यङ्मुख नक्षत्रों में द्वार, कपाट, सवारी (वाहन) बनवाना तथा मृदुसंज्ञक (मृगशिर, रेवती, चित्रा और अनुराधा) तथा ध्रुवसंज्ञक (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणी) नक्षत्रों में घर में प्रवेश करना।

नक्षत्रों की ऊर्ध्वमुखादि संज्ञा—

सवण द्दणुपुस्सुरोहिणि तिउत्तरा सय धणिट्ठ उड्ढमुहा ।
भरणिअसेस तिपुव्वा मूल मघ वि कित्ती अहोमुहा ॥२६॥

श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, शतभिषा और धनिष्ठा ये नक्षत्र ऊर्ध्वमुख संज्ञक हैं। भरणी, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मूल, मघा, विशाखा और कृत्तिका ये नक्षत्र अधोमुख संज्ञक हैं ॥२६॥

[illegible] ग्रन्थ के अनुसार नक्षत्रों की अधोमुखादि संज्ञा—

"अधोमुखानि पूर्वाः भूमूलाश्लेषामघाश्रया ।
[illegible] मिश्रं [illegible] ॥

तिर्यङ्मुखानि चादित्य मैत्र ज्येष्ठा करत्रयम् ।
अश्विनी चान्द्रपौष्णानि कृषियात्रादिसिद्धये ॥
ऊर्ध्वास्यास्त्र्युत्तरा पुष्यो रोहिणी श्रवणत्रयम् ।
आर्द्रा च स्युर्ध्वजच्छत्राभिषेकतरुकर्मसु ॥"

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मूल, आश्लेषा, मघा, भरणी, कृत्तिका और विशाखा ये नव अधोमुख सञ्ज्ञक नक्षत्र खात आदि कार्य की सिद्धि के लिये हैं।

पुनर्वसु, अनुराधा, ज्येष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाति, अश्विनी, मृगशिर और रेवती ये नव तिर्यङ्मुख सञ्ज्ञक नक्षत्र खेती यात्रा आदि की सिद्धि के लिये हैं।

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और आर्द्रा ये नव ऊर्ध्वमुख संज्ञक नक्षत्र ध्वजा छत्र राज्याभिषेक और वृक्ष-रोपन आदि कार्य के लिये शुभ हैं।

नक्षत्रों के शुभाशुभ योग मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है कि—

"पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैः सजीवै—स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात् ।
द्वीशाश्विवसुपाशिशिवैः सशुक्रै—र्वारे सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात् ॥"

पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा और पूर्वाषाढा इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र पर गुरु हो तब, या ये नक्षत्र और गुरुवार के दिन घर का आरम्भ करे तो यह घर पुत्र और राज्य देने वाला होता है।

विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा और आर्द्रा इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र पर शुक्र हो तब, या ये नक्षत्र और शुक्रवार हो उस दिन घर का आरम्भ करे तो धन और धान्य की प्राप्ति हो।

"सारं करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः, कौजेऽह्नि वेश्माग्नि सुतार्दितं स्यात् ।
सज्ञैः कदास्तार्यमतक्षहस्तै-र्ज्ञस्यैव वारे सुखपुत्रदं स्यात् ॥"

हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढा और मूल इन नक्षत्रों पर मंगल हो तब, या ये नक्षत्र और मंगलवार के दिन घर का आरम्भ करे तो घर अग्नि से जल जाय और पुत्र को पीड़ा कारक होता है।

रोहिणी, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा और हस्त इन नक्षत्रों पर बुध हो तब, या ये नक्षत्र और बुधवार के दिन घर का आरम्भ करे तो सुख कारक और पुत्रदायक होता है।

"अजैकपादहिर्बुध्न्य शक्रमित्रानिलान्तकैः।
समन्दैर्मन्दवारे स्याद् रक्षोभूतयुतं गृहम् ॥"

पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाती और भरणी इन नक्षत्रों पर शनि हो तब, या ये नक्षत्र और शनिवार के दिन घर का आरम्भ करे तो यह घर राक्षस और भूत आदि क निवास वाला हो।

'अग्निनक्षत्रगे सूर्य चन्द्रे वा संस्थिते यदि।
निर्मितं मंदिरं नूनं मग्निना दह्यतेऽचिरात् ॥"

कृत्तिका नक्षत्र के ऊपर सूर्य या चन्द्रमा हो तब घर का आरम्भ करे तो शीघ्र ही वह घर अग्नि से भस्म हो जाय।

प्रथम शिला की स्थापना—

पुव्वुत्तर—नीमतले घिय-अक्खय-रयणपंचगं ठविउं।
सिलानिवेसं कीरइ सिप्पीणं सम्माणणापुव्वं ॥२७॥

पूर्व और उत्तर के मध्य ईशान कोण में नीम (खात) में प्रथम घी अक्षत (चावल) और पांच जाति के रत्न रख करके (वास्तु पूजन करके), तथा शिल्पियों का सन्मान करके, शिला की स्थापना करनी चाहिये ॥२७॥

अन्य शिल्प ग्रंथों में प्रथम शिला की स्थापना अग्निकोण में या ईशान कोण में करने को भी कहा है।

खात लग्न विचार —

भिगु लग्गे बुहु दसमे दिणयरु लाहे विहप्फई किंदे।
जइ गिहनीमारंभे ता वरिससयाउयं हवइ ॥२८॥

शुक्र लग्न में, बुध दशम स्थान में, सूर्य ग्यारहवें स्थान में और बृहस्पति केन्द्र (१-४ ७-१० स्थान) में हो, ऐसे लग्न में यदि नवीन घर का खात करे तो सौ वर्ष का आयु उस घर का होता है ॥२८॥

दसमचउत्थे गुरुससि सणिकुजलाहे श्र लच्छि वरिस असी ।
इग ति चउ छ मुणि कमसो गुरुसणिभिगुरविबुहम्मि सय ॥२९॥

दसवें और चौथे स्थान में बृहस्पति और चन्द्रमा हो, तथा ग्यारहवें स्थान में शनि और मंगल हो, ऐसे लग्न में गृह का आरंभ करे तो उस घर में लक्ष्मी अस्सी (८०) वर्ष स्थिर रहे। बृहस्पति लग्न में (प्रथम स्थान में), शनि तीसरे, शुक्र चौथे, रवि छट्ठे और बुध सातवें स्थान में हो, ऐसे लग्न में आरंभ किये हुए घर में सौ वर्ष लक्ष्मी स्थिर रहे ॥ २९ ॥

सुक्कुदए रवितइए मंगलि छट्ठे अ पंचमे जीवे ।
इअ लग्गकए गेहे दो वरिससयाउय रिद्धी ॥३०॥

शुक्र लग्न में, सूर्य तीसरे, मंगल छट्ठे और गुरु पांचवें स्थान में हो, ऐसे लग्न में घर का आरंभ किया जाय तो दो सौ वर्ष तक यह घर समृद्धियों से पूर्ण रहे ॥ ३० ॥

सगिहत्थो ससि लग्गे गुरुकिंदे बलजुओ सुविद्धिकरो ।
कूरट्ठम-यइअसुहा सोमा मज्झिम गिहारंभे ॥३१॥

स्वगृही चन्द्रमा लग्न में हो अर्थात् कर्क राशि का चन्द्रमा लग्नमें हो और बृहस्पति केन्द्र (१ ४ ७ १० स्थान) में बलवान होकर रहा हो, ऐसे लग्न के समय घरका आरंभ करे तो उस घर की प्रतिदिन वृद्धि हुआ करे। गृहारंभ के समय लग्न से आठवें स्थान में क्रूर ग्रह हो तो बहुत अशुभ कारक है और सौम्यग्रह हो तो मध्यम है ॥ ३१ ॥

रोहिणी, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा और हस्त इन नक्षत्रों पर बुध हो तब, या ये नक्षत्र और बुधवार के दिन घर का आरम्भ करे तो सुख कारक और पुत्रदायक होता है।

"अजैकपादाहिर्बुध्न्य शक्रमित्रानिलान्तकैः ।
समन्दैर्मन्दवारे स्याद् रक्षोभूतयुतं गृहम् ॥"

पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाती और भरणी इन नक्षत्रों पर शनि हो तब, या ये नक्षत्र और शनिवार के दिन घर का आरंभ करे तो यह घर राक्षस और भूत आदि के निवास वाला हो।

"अग्निनक्षत्रगे सूर्ये चन्द्रे वा संस्थिते यदि ।
निर्मितं मंदिरं नूनमग्निना दह्यतेऽचिरात् ॥"

कृत्तिका नक्षत्र के ऊपर सूर्य या चन्द्रमा हो तब घर का आरम्भ करे तो शीघ्र ही वह घर अग्नि से भस्म हो जाय।

प्रथम शिला की स्थापना—

पुव्वुत्तर–नीमतले घिय-अक्खय-रयणपंचगं ठविउं ।
सिलानिवेसं कीरइ सिप्पीणं सम्माणणापुव्वं ॥२७॥

पूर्व और उत्तर के मध्य ईशान कोण में नीम (खात) में प्रथम घी अक्षत (चावल) और पांच जाति के रत्न रख करके (वास्तु पूजन करके), तथा शिल्पियों का सन्मान करके, शिला की स्थापना करनी चाहिये ॥२७॥

अन्य शिल्प ग्रंथों में प्रथम शिला की स्थापना अग्नि कोण में या ईशान कोण में करने को भी कहा है।

खात लग्न विचार —

भिगु लग्गे बुहु दसमे दिणयरु लाहे बिहप्फई किंदे ।
जइ गिहनीमारंभे ता वरिससयाउयं हवइ ॥२८॥

शुक्र लग्न में, बुध दशम स्थान में, सूर्य ग्यारहवें स्थान में और बृहस्पति केन्द्र (१-४-७-१० स्थान) में हो, ऐसे लग्न में यदि नवीन घर का खात करे तो सौ वर्ष का आयु उस घर का होता है ॥२८॥

दसमचउत्थे गुरुससि सणिकुजलाहे अ लच्छि वरिस असी।
इग ति चउ छ मुणि कमसो गुरुसणिभिगुरविबुहम्मि सय ॥२९॥

दसवें और चौथे स्थान में बृहस्पति और चन्द्रमा हो, तथा ग्यारहवें स्थान में शनि और मंगल हो, ऐसे लग्न में गृह का आरंभ करे तो उस घर में लक्ष्मी अस्सी (८०) वर्ष स्थिर रहे। बृहस्पति लग्न में (प्रथम स्थान में), शनि तीसरे, शुक्र चौथे, रवि छट्ठे और बुध सातवें स्थान में हो, ऐसे लग्न में आरंभ किये हुए घर में सौ वर्ष लक्ष्मी स्थिर रहे ॥ २९ ॥

सुक्कुदए रवितइए मंगलि छट्ठे अ पंचमे जीवे।
इअ लग्गकए गेहे दो वरिससयाउय रिद्धी ॥३०॥

शुक्र लग्न में, सूर्य तीसरे, मंगल छट्ठे और गुरु पांचवें स्थान में हो, ऐसे लग्न में घर का आरंभ किया जाय तो दो सौ वर्ष तक यह घर समृद्धियों से पूर्ण रहे ॥ ३० ॥

सगिहत्थो ससि लग्गे गुरुकिंदे बलजुओ सुविद्धिकरो।
कूरट्ठम-अइअसुहा सोमा मज्झिम गिहारंभे ॥३१॥

स्वगृही चन्द्रमा लग्न में हो अर्थात् कर्क राशि का चन्द्रमा लग्नमें हो और बृहस्पति केन्द्र (१ ४ ७ १० स्थान) में बलवान होकर रहा हो, ऐसे लग्न के समय घरका आरंभ करे तो उस घर की प्रतिदिन वृद्धि हुआ करे। गृहारंभ के समय लग्न से आठवें स्थान में क्रूर ग्रह हो तो बहुत अशुभ कारक है और सौम्यग्रह हो तो मध्यम है ॥ ३१ ॥

इक्केवि गहे णिच्छइ परगेहि परमि सत्त बारमम्मे ।
गिहसामिवरणनाहे ग्रबले परहत्थि होइ गिह ॥३२॥

यदि कोई भी एक ग्रह नीच स्थान का, शत्रु स्थान का या शत्रु के नवांशक का होकर सातवें स्थान में या बारहवें स्थान में रहा हो तथा गृहपति के वर्णका स्वामी निर्बल हो, ऐसे समय में प्रारम किया हुआ घर दूसरे शत्रु के हाथ में निश्चय से चला जाता है ॥३२॥

गृहपति के वर्णपति—

बभणा सुक्कविहप्फइ रविकुज-खत्तिय मयग्रवइसो ग्र ।
बुहु सुद्द मिच्छसणितमु गिहसामियवरणनाह इमे ॥३३॥

ब्राह्मण वर्ण के स्वामी शुक्र और बृहस्पति, क्षत्रिय वर्ण के स्वामी रवि और मंगल, वैश्य वर्ण का स्वामी चन्द्रमा, शूद्र वर्ण का स्वामी बुध तथा म्लेच्छ वर्ण के स्वामी शनि और राहु हैं। ये गृहस्वामी के वर्ण के स्वामी हैं ॥३३॥

गृह प्रवेश विचार—

सयलसुहजोयलग्गे नीमारंभे य गिहपवेसे ग्र ।
जइ ग्रट्ठमो ग्र कूरो ग्रवस्स गिहसामि मारेइ ॥३४॥

खात के आरंभ के समय और नवीन गृह प्रवेश (घर में प्रवेश) करते समय लग्न में समस्त शुभ योग होने पर भी आठवें स्थान में यदि क्रूर ग्रह हो तो घर के स्वामी का अवश्य विनाश होता है ॥३४॥

चित्त-ग्रणुराह-तिउत्तर रेवइ-मिय-रोहिणी ग्र विद्धिकरो ।
मूल द्दा-ग्रसलेसा जिट्ठा पुत्त विणासेइ ॥३५॥

चित्रा, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, मृगशिर और रोहिणी इन नक्षत्रों में घर का आरंभ या घर में प्रवेश करे तो वृद्धि

कारक है। मूल, आर्द्रा, आश्लेषा ज्येष्ठा इन नक्षत्रों में गृहारम या गृह प्रवेश करे तो पुत्र का विनाश करे ॥३५॥

पुव्वतिग महभरणी गिहसामिवह विसाहत्थीनास।
कित्तिय अग्गि समत्ते गिहप्पवेसे अ ठिइ समए ॥३६॥

यदि घरका आरम तथा घर में प्रवेश तीनो पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा), मघा और भरणी इन नक्षत्रों में करे तो घर के स्वामी का विनाश हो। विशाखा नक्षत्र में करे तो स्त्री का विनाश हो और कृत्तिका नक्षत्र में करे तो अग्नि का भय हो ॥३६॥

तिहिरित्त वारकुजरवि चरलग्ग विरुद्धजोअ दिणचद ।
वज्जिज्ज गिहपवेसे सेसा तिहि-वार-लग्ग-सुहा ॥३७॥

रिक्ता तिथि, मगल या रविवार, चर लग्न (मेष कर्क तुला और मकर लग्न), कटकादि विरुद्ध योग, दिण चन्द्रमा या नीच का या क्रूरग्रह युक्त चन्द्रमा ये सब घर में प्रवेश करने में या प्रारभ में छोड़ देना चाहिये। इनसे दूसरे बाकी के तिथि वार लग्न शुभ हैं ॥३७॥

किंदुदुअडतक्रूरा असुहा तिछगारहा सुहा भणिया ।
किंदुतिकोणतिलाहे सुहया सोमा समा सेसे ॥३८॥

यदि क्रूरग्रह केन्द्र (१ ४ ७-१०) स्थान में, तथा दूसरे आठवें या बारहवें स्थान में हो तो अशुभ फलदायक हैं। किन्तु तीसरे छट्ठे या ग्यारहवें स्थान में हो तो शुभ फल दायक हैं। शुभग्रह केन्द्र (१ ४ ७ १०) स्थान में, त्रिकोण (नवम पंचम) स्थान में, तीसरे या ग्यारहवें स्थान में हो तो शुभ कारक हैं, किन्तु बाकि के (२ ६ ८ १२) स्थान में हो तो समान फलदायक हैं ॥३८॥

गृह प्रवेश का गृहांग में शुभाशुभमय यंत्र—

वार	उत्तम	मध्यम	अधम
रवि	३-६ ११	१ ५	१ ४ ७-१० २ ८ १२
सोम	१ ४ ७-१०-६ ५ ३-११	८ २ ६ १२	०
मंगल	३ ६-११	१ ५	१ ४-७ १० २ ८ १२
बुध	१ ४-७-१०-६ ५ ३ ११	२ ६-८ १२	०
गुरु	१ ४-७ १०-६-५-३-११	२ ६ ८ १२	०
शुक्र	१ ४-७-१० ६ ५ ३ ११	२ ६ ८ १२	०
शनि	३ ६ ११	१ ५	१ ४ ७-१० २ ८ १२
राहु केतु	३ ६ ११	१ ५	१ ४-७-१०-२-८ १२

गृहों की संज्ञा—

सूरगिहत्थो गिहिणी चंदो धण सुक्क सुरगुरु सुक्ख ।
जो सबलु तस्स भावो सबलु भवे नत्थि संदेहो ॥२६॥

सूर्य गृहस्थ, चन्द्रमा गृहिणी (स्त्री), शुक्र धन और बृहस्पति सुख है। इन में जो बलवान् ग्रह हो वह उनके भावों का अधिक फल देता है, इसमें संदेह नहीं

है। अर्थात् सूर्य बलवान् हो तो घर के स्वामी को और चन्द्रमा बलवान् हो तो स्त्री को फलदायक है। शुक्र बलवान् हो तो धन और गुरु बलवान् हों तो सुख देता है ॥३९॥

राजा आदि के पांच प्रकार के घरों का मान—

> राया सेणाहिवई अमच्च-जुवराय-अणुज रराणीण ।
> नेमित्तिय विज्जाण य पुरोहियाण इह पचगिहा ॥४०॥
>
> एगसय अट्ठहिय चउसट्ठि सट्ठि असी अ चालीस ।
> तीस चालीसतिग कमेण करसखवित्थारा ॥४१॥
>
> अड छह चउ छह चउ छह चउ चउ चउ हीणया कमेणेव ।
> मूलगिहवित्थराओ सेसाण गिहाण वित्थारा ॥४२॥
>
> चउ छच्च अट्ठ तिय तिय अट्ठ छ छ छ भागजुत्त वित्थरओ।
> सेस गिहाण य कमसो माण दीहत्तणे नेय ॥४३॥

राजा, सेनापति, मंत्री (प्रधान), युवराज, अनुज (छोटा भाई-सामंत), राणी, नैमित्तिक (ज्योतिषी), वैद्य और पुरोहित, इन प्रत्येक के उत्तम, मध्यम, विमध्यम, जघन्य और अतिजघन्य आदि भेदों से पांच पांच प्रकार के गृह बनते हैं। उनके उत्तम गृहों का विस्तार क्रमशः—१०८, ६४, ६०, ८०, ४०, ३०, ४०, ४०, और ४० हाथ प्रमाण है। और इन प्रत्येक में से ८, ६, ४, ६, ४, ६, ४, ४, और ४ हाथ क्रम से चार चार घटाया जाय तो मध्यम विमध्यम, कनिष्ठ और अति कनिष्ठ घर का विस्तार बन जाता है। यह विस्तार सब मुख्य गृह का समझना चाहिये। तथा विस्तार का चौथा, छट्ठा, आठवां, तीसरा, तीसरा, आठवां, छट्ठा, छट्ठा और छट्ठा भाग क्रम से विस्तार में जोड़ देवें, तो सब गृहों की लंबाई का प्रमाण हो जाता है ॥४० से ४३॥

राजा आदि के पांच प्रकार के घरों का मान यंत्र—

संख्या	माप हाथ	राजा	सेना पति	मन्त्री	युवराज	अनुज	राणा	नैमित्तिक	वैद्य	पुरोहित
उत्तम १	विस्तार	१०८	६४	६०	८०	४०	३०	४०	४०	४०
	लंबाई	१३५	७५ १६"	६७-१२'	१०६ १६"	५३ ८"	३३ १८'	४६-१६"	४६ १६"	४६ १६"
मध्यम २	विस्तार	१००	५८	५६	७४	३६	२४	३६	३६	३६
	लंबाई	१२५	६७ १६"	६३	९८ १६	४८	२७	४२	४२	४१
विमध्यम ३	विस्तार	९२	५२	५२	६८	३२	१८	३२	३२	३२
	लंबाई	११५	६० १६"	५८ १२"	९०-१६'	४२ १६	२० ६"	३७-८"	३७ ८"	३७-८"
कनिष्ठ ४	विस्तार	८४	४६	४८	६२	२८	१२	२८	२८	२८
	लंबाई	१०५	५३ १६"	५४	८२ १६"	३७-८'	१३ १२'	३२ १६"	३२-१६'	३२ १६"
अकनि ५	विस्तार	७६	४०	४४	५६	२४	६	२४	२४	२४
	लंबाई	९५	४६ १६'	४९ १२'	७४ १६"	३२	६ १८"	२८	८	२८

चारों वर्णों के गृहमान—

वरणचउक्कगिहेसु वत्तीस कराइ-वित्थरो भणिश्रो ।
चउ चउ हीणो कमसो जा सोलस अंतजाईणं ॥४४॥
दससस-अट्ठमस सउस-चउरस वित्थरम्मिहिय ।
दीह भव्वगिहाण य दिय-खत्तिय-वइस-सुद्दाणं ॥४५॥

प्रथम ३२ हाथ के विस्तारवाले ब्राह्मण के घर में से चार २ हाथ सोलह हाथ तक घटाओ तो क्रमशः क्षत्रिय वैश्य, शूद्र और अत्यज के घर का विस्तार होता है। अर्थात् ब्राह्मण के घर का विस्तार ३२ हाथ, क्षत्रिय जाति के घर का

विस्तार २८ हाथ, वैश्य जाति के घर का विस्तार २४ हाथ, शूद्र जाति के घर का विस्तार २० हाथ और अन्त्यज के घर का विस्तार १६ हाथ है। इन वर्णों के घरों के विस्तार का दशवां आठवां, छट्ठा और चौथा भाग क्रम से विस्तार में जोड़ देवें तो सब घरों की लंबाई हो जाती है। अर्थात् ब्राह्मण के घर के विस्तार का दशवां भाग ३ हाथ और ४।।। अंगुल जोड़ देवें तो ३५ हाथ और ४।।। अंगुल ब्राह्मण के घर की लंबाई हुई। इसी प्रकार सब समझ लेना चाहिये। विशेष यंत्र से जानना ॥४४—४५॥

चारों वर्णों के घरों का मान यंत्र—

	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	अन्त्यज
विस्तार	३२	२८	२४	२०	१६
लंबाई	३५ ४।।।	३१ १२	२८	२५	२०

घर के उदय का प्रमाण समरांगण में कहा है कि—

"विस्तारात् षोडशो भागश्चतुर्हस्तसमन्वितः।
तलोच्छ्रयः प्रशस्तोऽयं भवेद् विदितवेश्मनाम् ॥
सप्तहस्तो भवेज्ज्येष्ठे मध्यमे षट् करोन्मितः।
पञ्चहस्तः कनिष्ठे तु विधातव्यस्तथोदयः ॥"

घर के विस्तार के सोलहवें भाग में चार हाथ जोड़ देने से जो संख्या हो, उतनी प्रथम तल की ऊंचाई करना अच्छा है। अथवा घर का उदय सात हाथ हो तो ज्येष्ठ मान का, छह हाथ हो तो मध्यम मान का और पांच हाथ हो तो कनिष्ठ मान का उदय जानना।

मुख्य घर और अलिंद की पहिचान—

> जं दीहवित्थराई भणियं तं सयल मूलगिहमाणं ।
> सेसमलिंदं जाणह जहत्थियं जं वहीकम्मं ॥४६॥
> ओवरयसालकक्खो-वराइयं मूलगिहमिणं सव्वं ।
> अह मूलसालमज्झे जं वट्टइ तं च मूलगिहं ॥४७॥

मकान की जो लंबाई और विस्तार कहा है, वह सब मुख्य घर का माप समझना चाहिये । बाकी जो द्वार के बाहर भाग में दालान आदि हो वह सब अलिंद समझना चाहिये । दीवार के भीतर पट्टशाला (मुख्य शाला) और कक्षा शाला (मुख्य शाला के बगल की शाला) आदि सब मूल घर जानना अर्थात् मूलशाला के मध्य में जो हों वे सब मूल घर ही जानना चाहिये ॥४६—४७॥

अलिंद का प्रमाण—

> अंगुलसत्तहियसयं उदए गब्भे य हवइ पणासीई ।
> गणियाणुसारिदीहं इक्किक्कगईइ इअ परिमाणं ॥४८॥

उदय (ऊंचाई) में एक सौ सात अंगुल, गर्भ में पिचासी अंगुल और शेष जितना ही लंबाई में यह प्रत्येक अलिंद का माप समझना चाहिये ॥४८॥

शाला और अलिंद का प्रमाण राजवल्लभ में कहा है कि—

> "व्यासे सप्ततिहस्तसंयुक्ते, शालामानमिदं मनुमतं ।
> पञ्चत्रिंशत्युतेऽपि तस्मिन्, मानमुक्तानि लघोरिति वृद्धा ॥"

घर का विस्तार जितने हाथ का हो, उसमें ७० हाथ जोड़ कर चौदह भाग दो, जो लब्धि आवे उतने हाथ का शाला का विस्तार करना चाहिये । शाला का विस्तार जितने हाथ का हो, उसमें ३५ जोड़ कर चौदह भाग दो, जो लब्धि आवे उतने हाथ का अलिंद का विस्तार करना ।

समरांगण सूत्रधार में कहा है कि—

"शालाव्यासार्द्धतोऽलिन्दः सर्वेषामपि वेश्मनाम् ।"

शाला के विस्तार से आधा अलिंद का विस्तार समस्त घरों में समझना चाहिये ।

गज (हाथ) का स्वरूप—

पव्वंगुलि चउवीसहि छत्तीसि करंगुलेहि कंबिआ ।
अट्ठहिं जवमज्झेहि पव्वंगुलु इक्कु जाणेह ॥४९॥

चौवीस पर्व अंगुलियों से या छत्तीस कर अंगुलियों से एक कंबिया (गज=२४ इंच) होता है । आठ यवोदर से एक पर्व्व अंगुल होता है ॥ ४९ ॥

पासाय-रायमंदिर-तडाग-पायार-वत्थभूमी य ।
इअ कंबीहि गणिज्जइ गिहसामिकरेहि गिहवत्थू ॥५०॥

देवमंदिर, राजमहल, तालाव, प्राकार (किला) और वस्त्र इनकी भूमि आदि का मान कंबिया (गज) से करें । तथा सामान्य लोग अपने मकान का नाप अपने हाथ से करें ॥ ५० ॥

अन्य समरांगण सूत्रधार आदि ग्रन्थों में गज तीन प्रकार के माने हैं— आठ यवोदर का एक अंगुल, ऐसे चौवीस अंगुल का एक गज, यह ज्येष्ठ गज १ । सात यवोदर का एक अंगुल, ऐसे चौवीस अंगुल का एक गज, यह मध्यम गज २ । छह यवोदर का एक अंगुल, ऐसे चौवीस अंगुल का एक गज, यह कनिष्ठ गज ३ । इसमें तीन २ अंगुल पर एक २ पर्वरेखा करने से आठ पर्वरेखा होती हैं । चौथी पर्व-रेखा पर आधा गज होता है । प्रत्येक पर्वरेखा पर फूल का चिन्ह करना चाहिये । गज के मध्य भाग से आगे की पांचवीं अंगुल का दो भाग, आठवीं अंगुल का तीन भाग और बारहवीं अंगुल का चार भाग करना चाहिये । गज के नव देवता के नाम—

"रुद्रो वायुर्विश्वकर्मा हुताशो, ब्रह्मा कालस्तोयपः सोमविष्णू ।"

गज के अग्र भाग का देवता रुद्र, प्रथम फूल का देव वायु, दूसरे फूल का देव विश्वकर्मा, तीसरे फूल का देव अग्नि, चौथे फूल का देव ब्रह्मा, पांचवें फूल का

देव यम, छट्ठे फूल का देव वरुण, सातवें फूल का देव सोम* और आठवें फूल का
विष्णु है। इनको गज के अग्र भाग से लेकर प्रत्येक पर्वरेखा पर स्थापन क
इनमें से कोई भी एक देव शिल्पी के हाथ में गज उठाते समय दब जाय तो
प्रकार के अशुभ फल को देनेवाला होता है। इसलिये नवीन घर आदि का
करते समय सूत्रधार को गज के दो फूलों के मध्य भाग से ही उठाना चाहिये
उठाते समय यदि हाथ से गिर जाय तो कार्य में विघ्न होता है।

गज को प्रथम ब्रह्मा और अग्नि देव के मध्य भाग से उठावे तो पुत्र क
और कार्य की सिद्धि हो। ब्रह्मा और यम देव के मध्य भाग से उठावे तो शि
का विनाश हो। विश्वकर्मा और अग्नि देव के मध्य भाग से उठावे तो कार्य
तरह पूर्ण हो। यम और वरुण देव के मध्य भाग से उठावे तो मध्यम फल
है। वायु और विश्वकर्मा देव के मध्य भाग से उठावे तो सब तरह इच्छि
दायक हो। वरुण और सोम देव के मध्य भाग से धारण करे तो मध्यम फल दा
रुद्र और वायुदेव के मध्यम भाग से उठावे तो धन की प्राप्ति और कार्य की
हो इसमें संदेह नहीं। विष्णु और सोमदेव के मध्य भाग से उठावे तो अनेक
की सुख समृद्धि प्राप्त हो।

शिल्पी के योग्य आठ प्रकार के सूत्र—

"सूत्राष्टकं दृष्टिनृहस्तमौञ्जं, कार्पासकं स्यादवलम्बसञ्ज्ञम्।
काष्ठं च सृष्ट्याख्यमतो विलेख्यं मित्यष्टसूत्राणि वदन्ति तज्ज्ञाः ॥"

सूत्र को जाननेवालों ने आठ प्रकार के सूत्र माने हैं—प्रथम दृष्टिसूत्र १
(हाथ) २, तीसरा मुञ्ज की डोरी ३, चौथा सूत का डोरा ४, पाँचवाँ अ
५, छट्ठा गुनिया (काटकोना) ६, सातवाँ साधणी (लेवल)७ और आठवाँ वि
(प्रकार) ८ ये आठ प्रकार के सूत्र शिल्पी के हैं।

भाय का ज्ञान—

गिहसामिणो करणा भित्तिविणा मिणसु वित्थर दीह।
गुणि अट्ठहि विहत्तं सेसं धयाइ भवे आया ॥४१॥

* कनर बुल, का कथन है

आठ प्रकार के दृष्टिसूत्र–
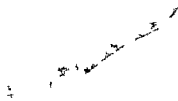
चारों तरफ खात (नीम) की भूमि को अर्थात् दीवार करने की भूमि को छोड़कर मध्य में जो लंबी और चौड़ी भूमि हो, उसको अपने घर के स्वामी के हाथ से नाप कर जो लंबाई चौड़ाई आवे, उन दोनों का परस्पर गुणा करने से भूमि का क्षेत्रफल हो जाता है। पीछे इस क्षेत्रफल को आठ से भाग देना, जो शेष बचे वह ध्वज आदि आय जानना। राजवल्लभ में कहा है कि—

"मध्ये पर्यंकासने मंदिरे च, देवागारे मण्डपे भित्तिमध्ये ॥"

अर्थात् पलंग आसन और घर इनमें मध्य भूमि को नाप कर आय लाना। किन्तु देवमंदिर और मंडप में दीवार करने की भूमि सहित नाप कर आय लाना ॥ ५१ ॥

आठ आय के नाम—

धय धूम-सीह-साणा विस-खर-गय धंख अट्ठ आय इमे ।
पुव्वाइ धयाइ-ठिई फलं च नामाणुसारेण ॥५२॥

ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और ध्वांक्ष ये आठ आय हैं। ये पूर्वादि दिशा में सृष्टि क्रम से अर्थात् पूर्व में ध्वज, अग्निकोण में धूम्र, दक्षिण में सिंह इत्यादि क्रम से रहते हैं। ये उनके नाम के सदृश फलदायक हैं। अर्थात् विषम आय-ध्वज सिंह, वृष और गज ये श्रेष्ठ हैं और समआय-धूम्र, श्वान, खर और ध्वांक्ष ये अशुभ हैं ॥ ५२ ॥

आय चक्र—

संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८
आय	ध्वज	धूम्र	सिंह	श्वान	वृष	खर	गज	ध्वांक्ष
दिशा	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान

आय परसे द्वार की समझ पीयूषधारा टीका में कहा है कि—

"सर्वद्वार इह ध्वजो वरुणदिग्द्वार च हित्वा हरिः ।
प्राग्द्वारो वृषभो गजो यमसुरे शाशासुरः स्यात्तुम. ॥"

ध्वज आय आवे तो पूर्वादि चारों दिशा में द्वार रख सकते हैं । सिंह आय आवे तो पश्चिम दिशा को छोड़ कर पूर्व दक्षिण और उत्तर इन तीन दिशा में द्वार रक्खें । वृषभ आय आवे तो पूर्व दिशा में द्वार रक्खें और गज आय आवे तो पूर्व और दक्षिण दिशा में द्वार रखें ।

एक आय के ठिकाने दूसरा कोई आय आ सकता है या नहीं ? इसका खुलासा आरंभसिद्धि में इस प्रकार किया है—

"ध्वज' पदे तु सिंहस्य तौ गजस्य वृषस्य ते ।
एवं निवेशमर्हन्ति स्वतोऽन्यत्र वृषस्तु न ॥"

समस्त आय के स्थानों में ध्वज आय दे सकते हैं । तथा सिंह आय के स्थान में ध्वज आय, गज आय के स्थान में ध्वज, और सिंह ये दोनों में से कोई आय और वृष आय के स्थान में ध्वज, सिंह और गज ये तीनों में से कोई आय आ सकता है । अर्थात् सिंह आय जिस स्थान में देने का है उसी स्थान में सिंह आय के अभाव में ध्वज आय भी दे सकते हैं, इसी प्रकार एक के अभाव में दूसरे आय स्थापन कर सकते हैं । किन्तु वृष आय अपने स्थान से दूसरे आय के स्थान में नहीं देना चाहिये । अर्थात् वृष आय वृष आय के स्थान में ही देना चाहिये ।

कौन २ ठिकाने कौन २ आय देना यह बतलाते हैं—

विप्पे धयाउ दिज्जा खित्ते सीहाउ वइसि वसहाओ ।
सुद्दे अ कुंजराओ धंखाउ मुणीण नायव्वं ॥५३॥

ब्राह्मण के घर में ध्वज आय, क्षत्रिय के घर में सिंह आय, वैश्य के घर में वृषभ आय, शूद्र के घर में गज आय और मुनि (सन्यासी) के आश्रम में ध्वांक्ष आय लेना चाहिये ॥५३॥

धय-गय-सीह दिज्जा मते ठाणे धओ अ सव्वत्थ ।
गय-पचाणण-वसहा खेडय तह कव्वडाईसु ॥५४॥

ध्वज, गज और सिंह ये तीनों आय उत्तम स्थानों में, ध्वज आय सब जगह, गज सिंह और वृष ये तीनों आय गांव किला आदि स्थानों में देना चाहिए ॥५४॥

वावी-कूव-तडागे सयणे अ गओ अ आसणे सीहो ।
वसहो भोअणपत्ते छत्तालने धओ सिट्ठो ॥५५॥

बावड़ी, कूआं, तालाब, और शयन (शय्या) इन स्थानों में गज आय श्रेष्ठ है । सिंहासनादि आसन में सिंह आय श्रेष्ठ है। भोजन के पात्र में वृष आय और छत्र तोरण आदि में ध्वज आय श्रेष्ठ है।

विस-कुंजर-सीहाया नयरे पासाय-सव्वगेहेसु ।
साण मिच्छाईसु धंख कारु अगिहाईसु ॥५६॥

वृष गज और सिंह ये तीनों आय नगर, प्रासाद (देवमंदिर या राजमहल) और सब प्रकार के घर इन स्थानों में देना चाहिये। श्वान आय म्लेच्छ आदि के घरों में और ध्वांक्ष-आय अगृहादि (तपस्वियों के स्थान उपाश्रय मठ झोंपड़ी आदि) में देना चाहिये ॥५६॥

धूम रसोइठाणे तहेव गेहेसु वग्हिजीवाण ।
रासहु विसाणगिहे धय गय-सीहाउ रायहरे ॥५७॥

भोजन पकाने के स्थान में तथा अग्नि से आजीविका करनेवाले के घरों में धूम्र आय देना चाहिये। वेश्या क घर में खर आय दना चाहिये। राजमहल में ध्वज गज और सिंह आय देना अच्छा है ॥५७॥

घर के नक्षत्र का ज्ञान—

दीह वित्थरगुणिय जं जायइ मूलरासि तं नेय ।
अट्ठगुणं उडुभत्तं गिहनक्खत्तं हवइ सेसं ॥५८॥

घर बनाने की भूमि की लंबाई और चौड़ाई का गुणाकार करें, जो गुणनफल आवे उसको घर का मूलराशि (क्षेत्रफल) मानना । पीछे इस क्षेत्रफल को आठ से गुणा करके सत्ताईस से भाग दें, जो शेष बचे वह घर का नक्षत्र होता है ॥५०॥

घर के राशि का ज्ञान—

> गिहरिक्ख चउगुणिअ नवभत्त लद्ध भुत्तरासीओ ।
> गिहरासि सामिरासी सडट्ठ दु दुवालस असुहं ॥५१॥

घर के नक्षत्र को चार से गुणा कर नौ से भाग दो, जो लब्धि आवे वह घर की भुक्तराशि समझना चाहिये । यह घर की भुक्तराशि और घर के स्वामी की राशि परस्पर छट्ठी और आठवीं हो या दूसरी और बारहवीं हो तो अशुभ है ॥५१॥

वास्तुशास्त्र में राशि का ज्ञान इस प्रकार कहा है—

> "अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम् ।
> मूलादित्रितयं चापे शेषभेषु द्वयं द्वयम् ॥"

अश्विनी आदि तीन नक्षत्र मेषराशि के, मघा आदि तीन नक्षत्र सिंह राशि के और मूल आदि तीन नक्षत्र धनराशि के हैं । अन्य नौ राशियों के दो दो नक्षत्र हैं । वास्तुशास्त्र में नक्षत्र के चरण भेद से राशि नहीं मानी है । विशेष नीचे के गृहराशि यंत्र में देखो ।

गृह राशि यंत्र—

मेष १	वृष २	मिथुन ३	कर्क ४	सिं० ५	कन्या ६	तुला ७	वृश्चिक ८	धन ९	मकर १०	कुंभ ११	मीन १२
अश्विनी	रोहिणी	आर्द्रा	पुष्य	मघा	हस्त	स्वाति	अनुराधा	मूल	श्रवण	शतभिषा	उत्तराभाद्र०
भरणी	मृगशिर	पुनर्वसु	आश्लेषा	पूर्वाफा०	चित्रा	विशाखा	ज्येष्ठा	पूर्वाषाढ़ा	धनिष्ठा	पूर्वाभा०	रेवती
कृत्तिका	०	०		उत्तराफा०	०	०	०	उत्तराषाढ़ा	०	०	०

व्यय का ज्ञान—

वसुभत्तरिक्खसेस वय तिहा जक्ख रक्खस-पिसाया ।
आउयंकाउ कमसो हीणाहियसम मुणेयव्व ॥६०॥

घर के नक्षत्र की संख्या को आठ से भाग देना, जो शेष बचे वह व्यय जानना । यह व्यय यक्ष राक्षस और पिशाच ये तीन प्रकार के हैं। आय की संख्या से व्यय की संख्या कम हो तो यक्ष व्यय, अधिक हो तो राक्षस व्यय और बराबर हो तो पिशाच व्यय समझना ॥६०॥

व्यय का फल—

जक्खवओ विद्धिकरो धणनास कुणइ रक्खसवओ अ ।
मज्झिमवओ पिसाओ तह य जमस च वज्जिज्जा ॥६१॥

यदि घर का यक्ष व्यय हो तो धन धान्यादि की वृद्धि करनेवाला है। राक्षस व्यय हो तो धन धान्यादि का नाश करनेवाला है और पिशाच व्यय हो तो मध्यम है। तथा नीचे बतलाये हुए तीन अंशों में से यमअंश को छोड़ देना चाहिये ॥६१॥

अंश का ज्ञान—

मूलरासिस्स अंक गिहनामक्खरवयंकसजुत्त ।
तिविहुत्तु सेस अंसा [1]इंदस-जमंस-रायंसा ॥६२॥

घर की मूलराशि (क्षेत्र फल) की संख्या, ध्रुवादि घर के नामाक्षर अंक और व्यय संख्या इन तीनों को मिला कर तीन से भाग देना, जो शेष रहे वह अंश जानना। यदि एक शेष रहे तो इन्द्रांश, दो शेष रहे तो यमांश और शून्य शेष रहे तो राजांश जानना चाहिये ॥६२॥

घर के तारे का ज्ञान—

गहभमामिभपिंड नवभत्त सेस छ चउ नव सुहया ।
मज्झिम दुग इग अट्ठ ति पंच सत्तहमा तारा ॥६३॥

[1] 'इद जमा तह य रायसो' इति पाठान्तरे ।

घर के नक्षत्र से घर के स्वामी के नक्षत्र तक गिने, जो संख्या आवे उसको नौ से भाग दे, जो शेष रहे वह तारा समझना। इन ताराओं में छट्ठी, चौथी और नवमा तारा शुभ है। दूसरी, पहली और आठवीं तारा मध्यम है। तीसरी पांचवीं और सातवीं तारा अधम है ॥६३॥

आयादि जानने के लिए उदाहरण—

जैसे घर बनाने की भूमि ७ हाथ और ९ अंगुल लंबी तथा ५ हाथ और ७ अंगुल चौड़ी है। इन दोनों के अंगुल बनाने के लिये हाथ को २४ से गुणा कर अंगुल मिला दो तो ७×२४=१६८+९=१७७ अंगुल की लंबाई और ५×२४=१२०+७=१२७ अंगुल की चौड़ाई हुई। इन दोनों अंगुलात्मक लंबाई चौड़ाई को गुणा किया तो १७७×१२७=२२४७९ यह क्षेत्रफल हुआ। इसको आठ से भाग दिया तो २२४७९—८ तो शेष सात रहेंगे। यह सातवां गज आय हुआ।

अब घर का नक्षत्र जानने के लिये क्षेत्रफल को आठ से गुणा किया तो २२४७९×८=१७९८३२ गुणनफल हुआ, इसको २७ से भाग दिया १७९८३२ – २७ तो शेष बारह बचे, यह अश्विनी आदि से गिनने से बारहवां उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र हुआ।

अब घर की ध्रुव राशि जानने के लिये—नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी बारहवां है तो १२ को ४ से गुणा किया तो ४८ हुए, इनको ९ से भाग दिया तो लब्धि ५ आई, यह पांचवीं सिंह राशि हुई। यह नियम सर्वत्र लागु नहीं होता, इसलिये गृहराशि यंत्र में कहे अनुसार राशि समझना चाहिये।

व्यय जानने के लिये—घर का नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी बारहवां है, इसलिये १२ को आठ से भाग दिया १२–८ तो शेष ४ बचे। यह आय ७ वें से कम है, इसलिये यह व्यय हुआ अच्छा है।

अंश जानने के लिये—घरका क्षेत्रफल २२४७९ में जिस जाति का घर हो उस वर्ण के अक्षर जोड़ दो, मान लो कि क्षत्रिय जाति का घर है तो इसके अक्षर के अंक ३ हुए, यह और व्यय के अंक ४ मिला दिये तो २२४८६ हुए, इसको तीन से भाग दिया तो शेष १ बचता है, इसलिये घर का अंश इन्द्रांश हुआ।

परिभाषा—

थोवरय [1]नाम साला जेयोग दुमालु भगणए गेह ।
गइनाम च अलिदो इग दु तिऽलिदोइ पटमालो ॥६५॥
पटमालबार[2]दुहु दिसि जालियभित्तीहिं मडवो हवइ ।
पिट्ठी दाहिणवामे थलिंदनामेहिं गुजारी ॥६६॥
जालियनाम मूसा थभयनाम च हवइ खडदारं ।
भारपट्टो य तिरिओ पीढ कडी धरण एगट्ठा ॥६७॥
थोवरय पट्टसाला पज्जत मूलगेह नायव्व ।
एयस्स चेव गणिय रधणगेहाइ गिहभूसा ॥६८॥

ओरडे (कमरे) का नाम शाला है । जिसमें एक दो शालायें हों उसको घर कहते हैं । गइ नाम अलिंद (गृहद्वार के आग का दालान) का है । जहां एक दो या तीन अलिंद हों उसको पटशाला कहते हैं ॥६५॥

पटशाला के द्वार क दोनों तरफ खिड़की (झरोखा) युक्त दीवार और मंडप होता है । पिछले भाग में तथा दाहिनी और बायीं तरफ जो अलिन्द हो उसको गुजारी कहते हैं ॥६६॥

जालिय नाम मूषा (छोटा दरवाजा) का है । खभे का नाम पद्दारु है । खम के उपर तीच्छी जो मोटा काष्ट रहता है उसको मारवट कहते है । पीठ कडी और धरण ये तीनों एक अर्थवाची नाम हैं ॥६७॥

ओरडे से पटशाला तक मुख्य घर जानना चाहिए और बाकी जो रसोई घर आदि हैं वे सब मुख्य घर के आभूषण हैं ॥६८॥

घरों के भेदों का प्रकार—

थोवरय-थलिद गई गुजारि-भित्तीण-पट्ट-थभाण ।
जालियमडवाणाय भेएण गिहा उवज्जति ॥६९॥

---

१ 'माइ' । २ 'भिहु' । इति पाठान्तरे ।

शाला, अलिन्द (गति), गुजारी, दीवार, पट्टे, स्तम, भरोसे और मंडप आदि के भेदों से अनेक प्रकार के घर बनते हैं ॥६९॥

चउदस गुरुपत्थारे लहुगुरुभेएहिं सालमाईणि ।
जायंति सव्वगेहा सोलसहस्स-तिसय-चुलसीआ ॥७०॥

जिस प्रकार लघु गुरु के भेदों से चौदह गुरु अक्षरों का प्रस्तार बनता है, उसी प्रकार शाला अलिंद आदि के भेदों से सोलह हजार तीन सौ चोरासी (१६३८४) प्रकार के घर बनते हैं ॥ ७० ॥

तत्तो य जिंकिंचि सपइ वट्टंति धुवाइ-संतणाईणि ।
ताण चिय नामाइं लक्खणचिण्हाइं वुच्छामि ॥७१॥

इसलिये आधुनिक समय में जो कुछ भी ध्रुवादि और शांतनादि घर हैं, उनके नाम आदि को इकट्ठे करके उनके लक्षण और चिह्नों का मैं (ठक्कुर 'फेरु') कहता हूं ॥ ७१ ॥

ध्रुवादि घरों के नाम—

धुव धन्न-जया नंद-खर-कंत-मणोरमा सुमुह-दुमुहा ।
कूर-सुपक्ख धणद-खय आक्कंद विउल विजया गिहा॥७२॥

ध्रुव, धान्य, जय, नंद, खर, कान्त, मनोरम, सुमुख, दुर्मुख, क्रूर, सुपक्ष*, धनद, क्षय, आक्रंद, विपुल और विजय ये सोलह घरों के नाम हैं ॥ ७२ ॥

प्रस्तार विधि—

चत्तारि गुरू ठविउं लहुओ गुरुहिट्ठि सेस उवरिसमा ।
ऊणेहिं गुरू एवं पुणो पुणो जाव सव्व लहू ॥७३॥

चार गुरु अक्षरों का प्रस्तार बनाना प्रथम पंक्ति में चारों अक्षर गुरु लिखना ।

* दूसरे ग्रन्थ में विपक्ष नाम दिया है

पीछे नीचे की दूसरी पंक्ति में प्रथम गुरु के स्थान के नीचे एक लघु अक्षर लिखकर बाकी ऊपर के बराबर लिखना चाहिये, पीछे नीचे की तीसरी पंक्ति में ऊपर के लघु अक्षर के नीचे गुरु और गुरु अक्षर के नीचे एक लघु अक्षर लिखकर बाकी ऊपर के समान लिखना चाहिये। इसी प्रकार सब लघु अक्षर हो जाय वहां तक क्रिया करें। लघु गुरु जानने के लिये लघु अक्षर का (।) ऐसा और गुरु अक्षर का (ऽ) ऐसा चिह्न करें। विशेष देखो नीचे की प्रस्तार स्थापना—

१	ऽ ऽ ऽ ऽ	९	ऽ ऽ ऽ ।
२	। ऽ ऽ ऽ	१०	। ऽ ऽ ।
३	ऽ । ऽ ऽ	११	ऽ । ऽ ।
४	। । ऽ ऽ	१२	। । ऽ ।
५	ऽ ऽ । ऽ	१३	ऽ ऽ । ।
६	। ऽ । ऽ	१४	। ऽ । ।
७	ऽ । । ऽ	१५	ऽ । । ।
८	। । । ऽ	१६	। । । ।

ध्रुवादि सोलह घरों का प्रस्तार—

त धुव धन्नाईणं पुव्वाइ-लहुहिं सालनायव्वा ।
गुरुठाणि मुणह भित्ती नाम समं हवइ फलमेसिं ॥७४॥

इस चार गुरु अक्षरवाले छंद के सोलह भेद होते हैं, उसी प्रकार घर के प्रदक्षिण क्रम से लघुरूप शाला द्वारा ध्रुव धान्य आदि सोलह प्रकार के घर बनते हैं। लघु के स्थान में शाला और गुरु के स्थान में दीवार जानना चाहिये। जैसे प्रथम चारों ही गुरु अक्षर हैं तो इसी तरह घर के चारों ही दिशा में दीवार है अर्थात् घर की कोई दिशा में शाला नहीं है। प्रस्तार के दूसरे भेद में प्रथम लघु है, तो यहां दूसरा धान्य नाम के घर की पूर्व दिशा में शाला समझना चाहिये। तीसरे भेद में दूसरा लघु है, सो तीसरे जय नाम के घर के दक्षिण में शाला और चौथे भेद में प्रथम दो लघु हैं सो चौथा नंद नामक घर के पूर्व और दक्षिण में एक २ शाला है,

इसी प्रकार सब समझना चाहिये। इन ध्रुवादि गृहों का फल नाम सदृश जानना चाहिये। विशेष सोलह घरों का प्रस्तार देखो।

ध्रुवादिक घरों का फल समरांगण में कहा है कि—

"ध्रुवे जयमाप्नोति धन्ये धान्यागमो भवेत्।
जये सपत्नाञ्जयति नन्दे सर्वाः समृद्धयः॥

खरमायासद वेश्म कान्ते च लभते श्रियम् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं तथा वित्तस्य सम्पदः ॥
मनोरमे मनस्तुष्टि-र्गृहभर्त्तुः प्रकीर्त्तिता ।
सुमुखे राजसन्मान दुर्मुखे कलह सदा ॥
क्रूरव्याधिभयं क्रूरे सुपक्ष गोत्रवृद्धिकृत् ।
धनदे हेमरत्नादि गाश्चैव लभते पुमान् ॥
क्षय सर्वक्षय गेह माक्रन्द ज्ञातिमृत्युदम् ।
आरोग्य विपुले ख्याति विजये सर्वसम्पदः ॥"

ध्रुव नाम का प्रथम घर जयकारक है । धन्य नाम का घर धान्यवृद्धि कारक है जय नाम का घर शत्रु को जीतनेवाला है । नद नाम का घर सब प्रकार की समृद्धि दायक है । खर नाम का घर क्लेश कारक है । कान्त नाम के घर में लक्ष्मी की प्राप्ति तथा आयुष, आरोग्य, ऐश्वर्य और सम्पदा की वृद्धि होती है । मनोरम नाम का घर घर के स्वामी के मन को सतुष्ट करता है । सुमुख नाम का घर राजसन्मान देने वाला है । दुर्मुख नाम का घर सदा क्लेशदायक है क्रूर नाम का घर भयकर व्याधि और भय को करनेवाला है । सुपक्ष नाम का घर कुटुम्ब की वृद्धि करता है । धनद नाम के घर में सोना रत्न गौ इनकी प्राप्ति होती है । क्षय नाम का घर सब क्षय करनेवाला है । आक्रद नाम का घर ज्ञातिजन की मृत्यु करनेवाला है । विपुल नाम का घर आरोग्य और कीर्त्तिदायक है । विजय नाम का घर सब प्रकार की सम्पदा देनेवाला है ।

शान्तनादि चौसठ द्विशाल घरों के नाम—

सतण सतिद वड्ढमाण कुक्कुडा सत्थिय च हस च ।
वद्धण कब्बुर सता हरिसण विउला कराल च ॥७५॥
वित चित्त धन्न कालदड तहेव बधुद ।
पुत्तद सव्वगा तह वीसइम कालचक्क (च) ॥७६॥

A सतद इति पाठान्तर ।

तिपुर सुंदर नीला कुडिल सासय य सव्वदा मीलं ।
कुट्टर सोम सुभद्दा तह भद्दमाण च कूरक्क ॥७७॥
सीहिर य सव्वकामय पुट्टिद तह कित्तिनामगणा नामा ।
सिणगार सिरीतामा सिरीसोभ तह कित्तिसोहणगा ॥७८॥
जुगमीदर बहुलाहा लच्छिनिवास च कुसिय उज्जाग ।
बहुतेय च सुतेय कलहांसद तह विलासा य ॥७९॥
बहुनिवास पुट्टिद फोहनसिंह भदंत महिता य ।
दुक्ख च कुलच्छेय पयावबद्धण य दिव्वा य ॥८०॥
बहुदुक्ख कठच्छेयणा जगम तह सीहनाय इत्थीजं ।
घटंक इह नामाइं लक्खण भेय अथो कुन्ते ॥८१॥

शान्तवन (शांवन) १, शाल्हिद २, वर्द्धमान ३, [illegible] ४, [illegible] ५, [illegible] ६, वर्द्धन ७, कर्पूर ८, शान्त ९, दर्पण १०, विपुल ११ कमल १२, [illegible] १३ [illegible] (चित्र) १४, घन १५, कालदह १६, कंपुर १७, पुष्कर १८, गदंग १९, कालधम २०, त्रिपुर २१, सुन्दर २२, नील २३, कुटिल २४, शाश्वत २५, [illegible] २६, शील २७, कोटर २८ सौम्य २९ सुभद्र ३०, भद्रमान ३१, कूर ३२, [illegible] ३३, सर्वकामद ३४, पुष्टिद ३५, कीर्तिनामक ३६, शृंगार ३७, श्रीराम ३८, श्रीशोभ ३९, कीर्तिशोभन ४०, युगमशिखर (युगमर्प) ४१ [illegible] ४२ लक्ष्मीनिवास ४३, कुशिल ४४, उद्योत ४५, बहुतेज ४६ सुतेज ४७ [illegible] ४८ विलास ४९, बहुनिवास ५०, पुष्टिद ५१, कामवल्लिम ५२ भदन्त ५३ [illegible] ५४ दुःख ५५, कुलच्छेद ५६, प्रतापवर्द्धन ५७, दिव्य ५८ बहुदुःख ५९, बहुदक्ष ६०,

---

१ [illegible]

अनेक तरह के घर बनते हैं, विशेष जानने के लिये समरांगण और राजवल्लभ आदि ग्रंथ देखना चाहिये।

शान्तनादि घरों के लक्षण—

केवल ध्रोवरयदुग सतणनाम मुणोह त गेह ।
तस्सेव मज्झि पट्ट मुहेगऽलिंद च सत्थियग ॥८२॥

फक्त दो शालावाले घर को 'शान्तन' नाम का घर कहते हैं। अर्थात् जिस घर में उत्तर दिशा के मुखवाली दो शाला (हस्तिनी) हो वह 'शान्तन' नाम का घर जानना चाहिये। पूर्व दिशा के मुखवाली दो शाला (महिषी) हो वह 'शान्तिद' नाम का घर है। दक्षिण मुखवाली दो शाला (गावी) हो वह 'वर्द्धमान' घर है। पश्चिम मुखवाली दो शाला (छागी) हो यह 'कुक्कुट' घर है।

इसी प्रकार शान्तनादि चार द्विशाल वाले घरों के मध्य में पीढ़ा (पट्टदारु दो पीढे और चार स्तंभ) हो और द्वार के आगे एक २ अलिन्द हो तो स्वस्तिकादि चार प्रकार के घर बनते हैं। जैसे—शान्तन नामके द्विशाल घर के मध्य में पटदारु और मुख के आगे एक अलिन्द हो तो यह 'स्वस्तिक' नाम का घर कहा जाता है। शान्तिद नाम के द्विशाल घर के मध्य में पटदारु और मुख के आगे एक अलिन्द हो तो यह 'हंस' नाम का घर कहा जाता है। वर्द्धमान नाम के द्विशाल घर के मध्य में पटदारु और मुख के आगे एक अलिन्द हो तो यह 'वर्द्धन' नाम का घर कहा जाता है। कुक्कुट नाम के द्विशाल घर के मध्य में पटदारु और मुख के आगे एक अलिन्द हो तो यह 'कर्पूर' नाम का घर कहा जाता है ॥८२॥

सत्थियगेहस्सग्गे अलिंदु बीओ अ त भवे संत ।
संते गुंजारिदाहिणा थंभसहिय त हवइ वित्त ॥८३॥

स्वस्तिक घर के आगे दूसरा एक अलिन्द हो तो यह 'शान्त' नाम का घर कहा जाता है। हंस घर के आगे दूसरा अलिन्द हो तो यह 'हर्षण' घर कहा जाता है। वर्द्धन घर के आगे दूसरा अलिन्द हो तो यह 'विपुल' घर कहा जाता है। कर्पूर घर के आगे दूसरा अलिन्द हो तो यह 'कराल' घर कहा जाता है।

शान्त घर के दक्षिण तरफ स्तंभवाला एक अलिन्द हो तो यह 'वित्त'

घर कहा जाता है । दर्पण घर के दक्षिण तरफ स्तमवाला अलिन्द हो तो यह 'चित्त' (चित्र) घर कहा जाता है । विपुल घर के दक्षिण ओर स्तमवाला एक अलिन्द हो तो यह 'घन' घर कहा जाता है । कराल घर के दक्षिण ओर स्तमवाला अलिन्द हो तो यह 'कालदंड' घर कहा जाता है ।

विसगिह गामदिसि जइ हवइ गुजारि ताव चधृद ।
गुजारि पिट्टि दाहिण पुरयो दु अलिंद त तिपुर ॥८४॥
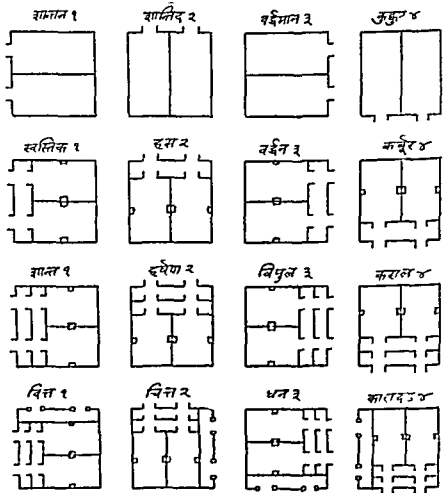
विच घर के बांयी ओर यदि एक अलिन्द हो तो यह 'बपुद' घर कहा जाता है। चित्त घर के बांयी ओर एक अलिन्द हो तो यह 'पुत्रद' घर कहा जाता है। धन घर के बांयी ओर एक अलिन्द हो तो यह 'सर्वांग' घर कहा जाता है। कालदंड घर के बांयी ओर एक अलिंद हो तो यह 'कालचक्र' घर कहा जाता है।

शान्तन घर के पिछले भाग में और दाहिनी तरफ एक २ अलिंद तथा आगे दो अलिन्द हो तो यह 'त्रिपुर' घर कहा जाता है। शान्तिद घर के पिछले भाग में और दाहिनी तरफ एक २ अलिन्द तथा आगे दो अलिन्द हो तो यह 'सुंदर' घर कहा जाता है। वर्द्धमान घर के पीछे और दाहिनी तरफ एक २ अलिन्द तथा आगे दो अलिन्द हो तो यह 'नील' घर कहा जाता है। कुक्कुट घर के पीछे और दाहिनी तरफ एक २ अलिन्द तथा आगे दो अलिन्द हो तो यह 'कुटिल' घर कहा जाता है ॥८४॥

पिट्ठी दाहिणवामे इगेग गुजारि पुरउ दु अलिंदा ।
त सामय आवास मव्वाण् जणाण् संतिकर ॥८५॥

शान्तन घर के पीछे दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हो तथा आगे की तरफ दो अलिन्द हो तो यह 'शाश्वत' घर कहा जाता है, यह घर समस्त मनुष्यों को शान्तिकारक है। शान्तिद घर के पीछे दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हो तथा आगे दो अलिन्द हो तो यह 'शास्त्रद' घर कहा जाता है। वर्द्धमान घर के पीछे दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हो तथा आगे दो अलिन्द हो तो यह 'शील' नामक घर कहा जाता है। कुक्कुट घर के पीछे दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हो तथा आगे की तरफ दो अलिन्द हो तो यह 'कोटर' घर कहा जाता है ॥८५॥

दाहिणवाम इगेग अलिंद जुअलस्स मडव पुरओ ।
*ओवरयमज्झि थभो तस्स य नाम हवइ सोम ॥८६॥

शान्तन घर के दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द तथा आगे दो अलिन्द मंडप सहित हो, एव शाला के मध्य में स्तंभ हो तो यह 'सौम्य' घर

* 'उवरयमज्झे थमय' इति पाठान्तरे ।

कहा जाता है। शान्तिद घर के दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द और आगे दो अलिन्द मंडप सहित हो तथा शाला के मध्यमें स्तम हो तो यह 'सुभद्र' घर कहा जाता है। वर्द्धमान घर के दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हो तथा आगे दो अलिन्द मडप सहित हो और शाला के मध्य में स्तम हो तो यह 'भद्रमान' घर कहा जाता है। कुक्कुट घर के दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हो तथा आगे दो अलिन्द मडप सहित हो साथ ही शाला के मध्य में स्तम हो तो यह 'क्रूर' घर कहा जाता है ॥८६॥

पुरश्रो श्रलिंदतियग तिदिसि इविग हवइ गुजारी ।
थभयपट्टसमेय सीधरनाम च त गेह ॥ ८७ ॥

सवत घर के मुख आगे तीन अलिन्द और बाकी की तीनों दिशाओं में
क २ गुंजारी (अलिन्द) हो, तथा शाला में पट्टदारु (स्तभ और पीढे) भी
तो यह 'श्रीधर' घर कहा जाता है। शातिद घर के मुख आगे तीन अलिन्द
ौर तीनों दिशाओं में एक २ गुजारी, स्तभ और पीढे सहित हो ऐसे घर का नाम
सर्वकामद' कहा जाता है। वर्द्धमान घर के मुख आगे तीन अलिन्द और तीनों
दिशाओं में एक २ अलिन्द, स्तभ और पीढे सहित हो तो यह 'पुष्टिद' घर कहा जाता
है। कुक्कुट घर के मुख आगे तीन अलिन्द और तीनों दिशाओं में एक २ अलिन्द
पट्टदारु समेत हो तो यह 'कीर्तिविनाश' घर कहा जाता है ॥८७॥

गुजारिजुअल तिहु दिसि दुलिंद मुहे य थभपरिकलिय ।
मडवजालियसहिया सिरिसिगार तय निति ॥ ८८ ॥

जिस द्विशाल घर की तीनों दिशाओं में दो २ गुजारी और मुख के आगे दो
अलिन्द, मध्य में पट्टदारु और अलिन्द के आगे खिड़की युक्त मडप हो ऐसे घर का
मुख यदि उत्तर दिशा में हो तो यह 'श्रीशृगार', पूर्व दिशा में मुख हो तो यह
'श्रीनिवास', दक्षिण दिशा में मुख हो तो यह 'श्रीशोभ' और पश्चिम दिशा में
मुख हो तो यह 'कीर्तिशोभन' घर कहा जाता है ॥८८॥

तिन्नि अलिंदा पुरश्रो तस्सग्गे भद्दु सेसपुव्व ।
त नाम जुगसीधर बहुमगलरिद्धि-आवास ॥ ८९ ॥

जिस द्विशाल घर के मुख आगे तीन अलिन्द हों और इनके आगे भद्र हो
बाकी सब पूर्ववत् अर्थात तीनों दिशा में दो २ गुजारी, बीच में पट्टदारु (स्तभ पीढे)
और अलिन्द के आगे खिड़की युक्त मडप हो ऐसे घर का मुख यदि उत्तर दिशा
में हो तो यह 'युगश्रीधर' घर कहा जाता है, यह घर बहुत मगलदायक और ऋद्धियों
का स्थान है। इसी घर का मुख यदि पूर्व दिशा में हो तो 'बहुलाभ,' दक्षिण दिशा में
हो तो 'लक्ष्मीनिवास' और पश्चिम में मुख हो तो 'कुपित' घर कहा जाता है ॥८९॥

दु अलिंद-मडव तह जालिय पिट्ठग दाहिणो दु गई ।
भित्तितरिथभजुआ उज्जोय नाम धणनिलय ॥ ९० ॥

जिस द्विशाल घर के मुख आगे दो अलिन्द और खिड़की युक्त मण्डप हो तथा पीछे एक अलिन्द और दाहिनी तरफ दो अलिन्द हों, एवं स्तम्भयुक्त दीवार भी हो ऐसे घर का मुख यदि उत्तर दिशा में हो तो यह 'उद्योत' घर कहा जाता है। यह घर धन का स्थान रूप है। इसी घर का मुख यदि पूर्व दिशा में हो तो 'बहुतेज' दक्षिण दिशा में हो, तो 'सुतेज' और पश्चिम में मुख हो तो 'कलहावह' घर कहा जाता है॥६०॥
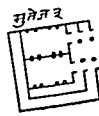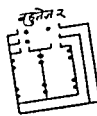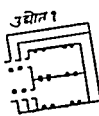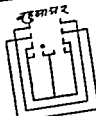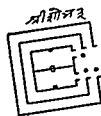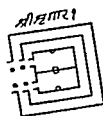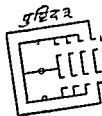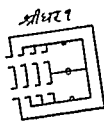
उज्जोअगेहपच्छइ दाहिणए दु गइ भित्तिअंतरए।
जह हुंति दो भमती विलासनाम हवइ गेहं ॥ ९१ ॥

उद्योत घर के पीछे और दाहिनी तरफ दो २ अलिन्द दीवार के भीतर हो जैसे घर के चारों ओर घूम सके ऐसे दो प्रदक्षिणा मार्ग हो ऐसे घर का मुख यदि उत्तर में हो तो वह 'विलास' नाम का घर कहा जाता है। इसी घर का मुख यदि पूर्व दिशा में हो तो 'बहुनिवास,' दक्षिण दिशा में हो तो 'पुष्टिद' और पश्चिम में मुख हो तो 'मोघसक्मिम' घर कहा जाता है ॥९१॥

ति अलिंद मुहस्सग्गे मंडवय सेस विलासुव्व।
तं गेह च महंत कुणइ महड्ढिं वसताणं ॥ ९२ ॥

विलास घर के मुख आगे तीन अलिन्द और मंडप हो तो यह 'महान्त' घर कहा जाता है। इसमें रहनेवाले को यह घर महा ऋद्धि करनेवाला है। इसी घर का मुख यदि पूर्व दिशा में हो तो 'महित', दक्षिण दिशा में हो तो 'दुःख' और पश्चिम दिशा में हो तो 'कुलच्छेद' घर कहा जाता है ॥९२॥

मुहि ति अलिंद समंडव जालिय तिदिसेहि दु दु य गुंजारी।
मज्झि वलयगयभित्ती जालिय य पयाववद्धणय ॥ ९३ ॥

जिस द्विशाल घर के मुख आगे तीन अलिन्द, मंडप और खिड़की हों तथा तीनों दिशाओं में दो २ गुंजारी (अलिन्द) हों तथा मध्य वलय के दीवार में खिड़की हो, ऐसे घर का मुख यदि उत्तर दिशा में हो तो 'प्रतापवर्द्धन', पूर्व दिशा में हो तो 'दिव्य', दक्षिण दिशा में हो तो 'बहुदुःख' और पश्चिम दिशा में मुख हो तो 'कंठछेदन' घर कहा जाता है ॥९३॥

पयाववद्धणो जइ थंभय ता हवइ जगमं[1] सुजसं।
इअ सोलसगेहाइं सव्वाइं उत्तरमुहाइं ॥ ९४ ॥

---

[1] 'अंगमं'। इति पाठान्तरे।

प्रतापवर्द्धन घर में यदि पट्टाल (स्तम-पीढा) हो तो यह 'जगम' नाम का घर कहा जाता है, यह अच्छा यश फैलानेवाला है। इसी घर का मुख यदि पूर्व दिशा में हो तो 'सिंहनाद', दक्षिण दिशा में हो तो 'हस्तिन' और पश्चिम दिशा में हो तो 'कटक' घर कहा जाता है। इसी तरह शतनादि ये सोलह घर सब उत्तर मुखवाले हैं ॥६४॥
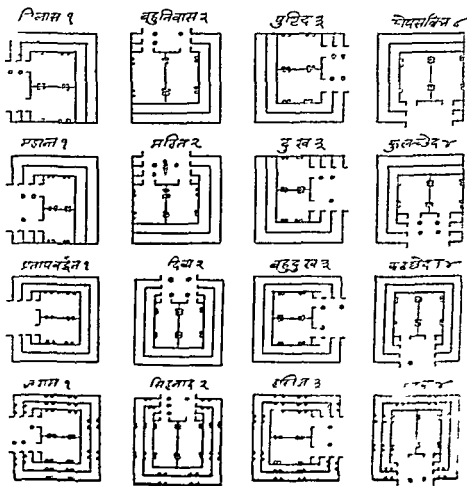
एयाइ चिय पुव्वा दाहिणपच्छिममुहेण वारेण ।
नामतरेण अन्नाइ तिन्नि मिलियाणि चउसट्ठी ॥ १५ ॥

उपर जो शांतनादि क्रमसे सोलह घर कहे हैं, उन प्रत्येक के पूर्व दक्षिण और पश्चिम मुख के द्वार भेदों को दूसरे तीन २ घरों के नाम क्रमशः इनमें मिलाने से प्रत्येक के चार २ रूप होते हैं। इस तरह इन सब को जोड़ लेने से कुल चौसठ नाम घर के होते हैं ॥६५॥

दिशाओं के भेदों से द्वार को स्पष्ट बतलाते हैं—

यथाहि—सतणमुत्तरवार त चिय पुव्वमुहु सतद भणिअ ।
जम्ममुहवड्ढमाणं अवरमुह कुक्कुड तहन्नेसु ॥ १६ ॥

जैसे—शांतन नाम के घर का मुख उत्तर दिशा में, शान्तिद घर का मुख पूर्व दिशा में, वर्द्धमान घर का मुख दक्षिण दिशा में और कुक्कुट घर का मुख पश्चिम दिशा में है। इसी तरह दूसरे भी चार २ घरों के मुख समझ लेना चाहिये। ये मैंने पहिले से ही खुलासा पूर्वक लिख दिये हैं ॥६६॥

अब सूर्य आदि आठ घरों का स्वरूप—

यथा—अग्गे* अलिदतियग इविव वामदाहिणोवरय ।
थभजुअ च दुसाल तस्स य नाम हवइ सूर ॥ १७ ॥

जिस द्विशाल घर के आगे तीन अलिन्द हो, तथा बांयी और दाहिनी तरफ एक २ शाला स्तम्भयुक्त हो तो यह 'सूर्य' नाम का घर कहा जाता है ॥६७॥

वयणे य चउ अलिंदा उभयदिसे इक्कु इक्कु ओवरओ ।
नामेण वासव त जुगअत जाव वसइ धुव ॥ १८ ॥

जिस द्विशाल घर के आगे चार अलिन्द हो, तथा बांयी और दाहि[ऩी] तरफ एक २ शाला हो तो यह 'वासव' नाम का घर कहा जाता है। इस में [रहने] वाले युगान्त तक स्थिर रहते हैं ॥६८॥

* 'आप' इति पाठान्तरे।

मुहि ति अलिंद दुपच्छइ दाहिणवामे अ हवइ इक्किक्क ।
त गिहनाम वीय हियच्छिय चउसु वन्नाण ॥ ९९ ॥

जिस द्विशाल घर के आगे तीन अलिन्द, पीछे की तरफ दो अलिन्द तथा दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हों तो उस घर का नाम 'वीर्य' कहा जाता है। यह चारों वर्णों का हितचिन्तक है ॥९९॥

दो पच्छइ दो पुरओ अलिंद तह दाहिणे हवइ इक्को ।
कालक्ख त गेह अकालिदड कुणइ नूणं ॥ १०० ॥

जिस द्विशाल घर के आगे और पीछे दो २ अलिन्द तथा दाहिनी में एक अलिन्द हो तो यह 'काल' नाम का घर कहा जाता है। यह निश्चय से अकाल दंड (दुर्भिक्षता) करता है ॥१००॥

अलिंद तिन्नि वयणे जुअल जुअल च वामदाहिणए ।
एग पिट्ठि दिसाए बुद्धी मनुद्धिवड्ढणाय ॥ १०१ ॥

जिस द्विशाल घर के आगे तीन अलिन्द तथा बांयी और दक्षिण तरफ दो २ अलिंद और पीछे की तरफ एक अलिन्द हो ऐसे घर को 'बुद्धि' नाम का घर कहा जाता है। यह सद्बुद्धि को बढानेवाला है ॥१०१॥

दु अलिंद चउदिसिहिं सुव्वयनाम च सव्वसिद्धिकरं ।
पुरओ तिन्नि अलिंदा तिदिसि दुग त च पासाय ॥ १०२ ॥

जिस द्विशाल घर के चारों तरफ दो दो अलिन्द हों तो यह 'सुव्रत' नाम का घर कहा जाता है, यह सब तरह से सिद्धिकारक है। जिस द्विशाल घर के आगे तीन अलिन्द और तीनों दिशाओं में दो २ अलिन्द हों तो यह 'प्रासाद' नाम का घर कहा जाता है ॥१०२॥

चउरि अलिंदा पुरओ पिट्ठि तिग त गिह दुवेहस्स ।
इह सुगई गेहा अह वि नियनामसरिसफला ॥ १०३ ॥

जिस द्विशाल घर के आगे चार अलिन्द और पीछे की तरफ तीन अलिन्द हों उसको 'द्विवेध' नाम का घर कहा जाता है। ये पूर्व आदि आठ घर कहे हैं वे उनके नाम सदृश फलदायक हैं ॥१०३॥
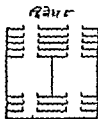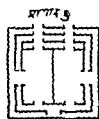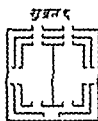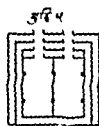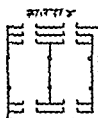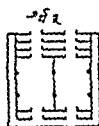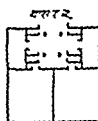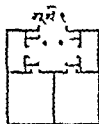
विमलाइ सुदराई हसाइ अलकियाइ पभनाई ।
पम्मोय सिरिभवाई चूडामणि कलसमाई य ॥ १०४ ॥
एमाइआसु मज्झे सोलस सोलस हवंति गिहतत्तो ।
इक्किक्काओ चउ चउ दिसिभेय-अलिंदभेएहिं ॥ १०५ ॥
तिअलोयसुदराई चउसट्ठि गिहाइ हुंति रायाणो ।
ते पुण अवट्ट सपइ मिच्छा ण य रज्जभवेण ॥ १०६ ॥

विमलादि, सुदरादि, हंसादि, अलकृतादि, प्रभवादि, प्रमोदादि, सिरिभवादि चूड़ामणि और कलश आदि ये सब सूर्यादि घर के एक मे चार चार दिशाओं के और अलिन्द के भेदों से सोलह २ भेद होते हैं । त्रैलोक्यसुन्दर आदि चौसठ घर राजाओं के लिए हैं। इस समय गोल घर बनाने का रिवाज नहीं है, किन्तु राज्यभाव से मना नहीं है अर्थात् राजा लोग गोल मकान भी बना सकते हैं ॥१०४ से १०६॥

घर में कहां २ किस २ का स्थान करना चाहिये यह बतलाते हैं—

पुव्वे सीहदुवार अग्गीइ रसोइ दाहिणे सयण ।
नेरइ नीहारठिंइ भोयणठिइ पच्छिमे भणियं ॥ १०७ ॥
वायव्वे सव्वाउह कोसुत्तर धम्मठाणु ईसाणे ।
पुव्वाइ विणिद्देसो मूलगिहदारविसएण ॥ १०८ ॥

मकान की पूर्व दिशा में सिंह द्वार बनाना चाहिये, अग्निकोण में रसोई बनाने का स्थान, दक्षिण में शयन (निद्रा) करने का स्थान, नैऋत्य कोण में निहार (पाखाने) का स्थान, पश्चिम में भोजन करने का स्थान, वायव्य कोण में सब प्रकार के आयुध का स्थान, उत्तर में धन का स्थान और ईशान में धर्म का स्थान बनाना चाहिये। इन सब का घर के मूलद्वार की अपेक्षा से पूर्वादिक दिशा का विभाग करना चाहिये अर्थात् जिस दिशा में घर का मुख्य द्वार हो उसी ही दिशा को पूर्व दिशा मान कर उपरोक्त विभाग करना चाहिये ॥१०७ से १०८॥

द्वार विषय—

पुव्वाइ विजयबार जमबार दाहिणाइ नायव्व ।
अवरेण मयरबार कुबेरबार उईचीए ॥१०९॥
नामसम फलमेसिं बार न कयावि दाहिणे कुज्जा ।
जइ होइ कारणेण ताउ चउदिसि अट्ठ भाग कायव्वा ॥११०॥
सुहबारु अस मज्झे चउसु पि दिसासु अट्ठभागासु ।
चउ तिय दुन्नि छ पण तिय पण तिय पुव्वाइ सुकम्मेण ॥१११॥

पूर्व दिशा के द्वार को विजय द्वार, दक्षिण द्वार को यमद्वार, पश्चिम द्वार को मगर द्वार और उत्तर के द्वार को कुबेर द्वार कहते हैं। ये सब द्वार अपने नाम के अनुसार फल देनेवाले हैं। इसलिये दक्षिण दिशा में कभी भी द्वार नहीं बनाना चाहिये। कारणवश दक्षिण में द्वार बनाना ही पड़े तो मध्य भाग में नहीं बना कर नीचे बतलाये हुये भाग के अनुसार बनाना सुखदायक होता है। जैसे मकान बनाये जानेवाली भूमि की चारों दिशाओं में आठ २ भाग बनाना चाहिये। पीछे पूर्व दिशा के आठों भागों में से चौथे या तीसरे भाग में, दक्षिण दिशा के आठों भागों में से दूसरे या छट्ठे भाग में, पश्चिम दिशा के आठों भागों में से तीसरे या पांचवें भाग में तथा उत्तर दिशा के आठों भागों में से तीसरे या पांचवें भाग में द्वार बनाना अच्छा होता है ॥ १०९ से १११ ॥

वाराउ गिहपवेस सोवाण करिज्ज सिट्ठिमग्गेण ।
* पयठाण सुरमुह जलकुंभ रसोइ आसन्न ॥११२॥

द्वार से घर में जाने के लिये सृष्टिमार्ग से अर्थात् दाहिनी ओर से प्रवेश हो, उसी प्रकार सीढ़ियें बनवाना चाहिये ॥ ११२ ॥

समरांगण में शुभाशुभ गृहप्रवेश इस प्रकार कहा है कि—

"उत्सङ्गो हीनबाहुश्च पूर्णबाहुस्तथापरः ।
प्रत्यक्षायश्चतुर्थश्च निवेशः परिकीर्तितः ॥"

* उत्तरार्द्ध गाथा विद्वानों को विचारणीय है ।

गृहद्वार में प्रवेश करने के लिये प्रथम 'उत्संग' प्रवेश, दूसरा 'हीनबाहु' अर्थात् 'सव्य' प्रवेश, तीसरा 'पूर्णबाहु' अर्थात् 'अपसव्य' प्रवेश और चौथा 'प्रत्यच' अर्थात् 'पृष्ठभग' प्रवेश ये चार प्रकार के प्रवेश माने हैं। इनका शुभाशुभ फल क्रमशः अब कहते हैं।

"उत्संग एकदिक्काभ्यां द्वाराभ्यां वास्तुवेश्मनोः।
स सौभाग्यप्रजावृद्धि-धनधान्यजयप्रदः ॥"

वास्तुद्वार अर्थात् मुख्य घर का द्वार और प्रवेश द्वार एक ही दिशा में हो अर्थात् घर के सम्मुख प्रवेश हो, उसको 'उत्संग' प्रवेश कहते हैं। ऐसा प्रवेश द्वार सौभाग्य कारक, संतान वृद्धि कारक, धनधान्य देनेवाला और विजय करनेवाला है।

"यत्र प्रवेशतो वास्तु गृहं भवति वामतः।
तद्धीनबाहुकं वास्तु निन्दितं वास्तुचिन्तकैः ॥
तस्मिन् वसन्नल्पवित्तः स्वल्पमित्रोऽल्पबांधवः।
स्त्रीजितश्च भवेन्नित्यं विविधव्याधिपीडितः ॥"

यदि मुख्य घर का द्वार प्रवेश करते समय बांयी ओर हो अर्थात् प्रथम प्रवेश करने के बाद बांयी ओर जाकर मुख्य घर में प्रवेश हो, उसको 'हीनबाहु' प्रवेश कहते हैं। ऐसे प्रवेश को वास्तुशास्त्र जाननेवाले विद्वानों ने निन्दित माना है। ऐसे प्रवेश वाले घर में रहने वाला मनुष्य अल्प धनवाला तथा थोड़े मित्र बांधव वाला और स्त्रीजित होता है तथा अनेक प्रकार की व्याधियों से पीड़ित होता है।

"वास्तुप्रवेशतो यत्र तु गृहं दक्षिणतो भवेत्।
प्रदक्षिणप्रवेशत्वात् तद् विद्यात् पूर्णबाहुकम् ॥
तत्र पुत्राश्च पौत्राश्च धनधान्यसुखानि च।
प्राप्नुवन्ति नरा नित्यं वसन्तो वास्तुनि ध्रुवम् ॥"

यदि मुख्य घर का द्वार प्रवेश करते समय दाहिनी ओर हो, अर्थात् प्रथम प्रवेश करने के बाद दाहिनी ओर जाकर मुख्य घर में प्रवेश हो तो उसको 'पूर्णबाहु' प्रवेश कहते हैं। ऐसे प्रवेश वाले घर में रहनेवाला मनुष्य पुत्र, पौत्र, धन, धान्य और सुख को निरंतर प्राप्त करता है।

"गृहपृष्ठं समाश्रित्य वास्तुद्वारं यदा भवेत् ।
प्रत्यच्चायस्त्वसौ निन्द्यो वामावर्तप्रवेशवत् ॥"

यदि मुख्य घर की दीवार घूमकर मुख्य घर के द्वार में प्रवेश होता हो तो 'प्रत्यच्च' अर्थात् 'पृष्ठ भंग' प्रवेश कहा जाता है । ऐसे प्रवेशवाला घर हीनबाहु प्रवेश की तरह निंदनीय है ।

घर और दुकान कैसे बनाना चाहिये—

सगडमुहा वरगेहा कायव्वा तह य हट्ट वग्घमुहा ।
बाराउ गिहकमुच्चा हट्टुच्चा पुरउ मज्झ समा ॥११३॥

गाड़ी के अग्र भाग के समान घर हो तो अच्छा है, जैसे गाड़ी के आगे का हिस्सा सकड़ा और पीछे चौड़ा होता है, उसी प्रकार घर द्वार के आगे का भाग सकड़ा और पीछे चौड़ा बनाना चाहिये । तथा दुकान के आगे का भाग सिंह के मुख जैसे चौड़ा बनाना अच्छा है । घर के द्वार भाग से पीछे का भाग ऊंचा होना अच्छा है । तथा दुकान के आगे का भाग ऊंचा और मध्य में समान होना अच्छा है ॥११३॥

द्वार के उदय (ऊंचाई) और विस्तार (चौड़ाई) का मान राजवल्लभ में इस प्रकार कहा है—

पष्ट्या चाथ शतार्द्धसप्ततियुते-र्व्यासस्य हस्ताङ्गुलै-
र्द्वारस्योदयको भवेच्च भवने मध्यः कनिष्ठोत्तमौ ।
दैर्घ्यार्द्धेन च विस्तरः शशिकला-भागोधिकः शस्यते,
दैर्घ्यात् ष्पशविहीनमर्द्धरहितं मध्यं कनिष्ठं क्रमात् ॥"

घर की चौड़ाई जितने हाथ की हो, उतने ही अंगुल मानकर उसमें साठ अंगुल और मिला देना चाहिये । ये कुल मिलकर जितने अंगुल हों उतनी ही द्वार की ऊंचाई बनाना चाहिये, यह ऊंचाई मध्यम नाप की है । यदि उसी संख्या में पचास अंगुल मिला दिये जांय और उतने द्वार की उंचाई हो तो यह कनिष्ठ मान की ऊंचाई जानना चाहिये । यदि उसी संख्या में सत्तर ७० अंगुल मिला देने से जो संख्या होती है उतनी दरवाजे की ऊंचाई हो तो वह ज्येष्ठ मान का उदय जानना चाहिये ।

दरवाजे की ऊंचाई जितने अंगुल की हो उसके आधे भाग में ऊंचाई के सोलहवें भाग की संख्या को मिला देने से जो कुल नाप होती है, उतनी ही दरवाजे की चौड़ाई की जाय तो वह श्रेष्ठ है। दरवाजे की कुल ऊंचाई के तीन भाग बराबर करके उसमें से एक भाग अलग कर देना चाहिये। बाकी के दो भाग जितनी दरवाजे की चौड़ाई की जाय तो वह मध्यम द्वार कहा जाता है। यदि दरवाजे की ऊंचाई के आधे भाग जितनी चौड़ाई की जाय तो वह कनिष्ठ मानवाला द्वार जानना चाहिये।

द्वार के उदय का दूसरा प्रकार—

"गृहोत्सेधेन वा त्र्यंशहीनेन स्यात् समुच्छ्रितिः।
तदर्द्धेन तु विस्तारो द्वारस्येत्यपरो विधिः॥"

घर की ऊंचाई के तीन भाग करना, उसमें से एक भाग अलग करके बाकी दो भाग जितनी द्वार की ऊंचाई करना चाहिये। और ऊंचाई से आधे द्वार का विस्तार करना चाहिये। यह द्वार के उदय और विस्तार का दूसरा प्रकार है।

घर की ऊंचाई का फल—

पुव्वुच्च अत्थहर दाहिण उच्चघर धणसमिद्ध।
अवरुच्च विद्धिकर उव्वसिय उत्तराउच्च॥११४॥

*पूर्व दिशा में घर ऊंचा हो तो लक्ष्मी का नाश, दक्षिण दिशा में घर ऊंचा हो तो धन समृद्धियों से पूर्ण, पश्चिम दिशा में घर ऊंचा हो तो धन धान्यादि की वृद्धि करने वाला और उत्तर तरफ घर ऊंचा हो तो उजाड़ (वस्ती रहित) होता है॥११४॥

घर का आरम्भ प्रथम कहाँ से करना चाहिये यह बतलाते हैं—

मूलाओ आरंभो कीरइ पच्छा कमे कमे कुज्जा।
सव्व गणिय-विसुद्ध वेहो सव्वत्थ वज्जिज्जा॥११५॥

सब प्रकार के भूमि आदि के दोषों को शुद्ध करके जो मुख्य शाला (घर) है, वहाँ से प्रथम काम का आरम्भ करना चाहिये। पश्चात् क्रम से दूसरी दूसरी

---

* यहाँ पूर्वादि दिशा घर के द्वार की अपेक्षा से समझना चाहिये अर्थात् घर के द्वार को पूर्व दिशा कल्पकर सब दिशा समझ लेना चाहिये।

जगह कार्य शुरू करना चाहिये। किसी जगह आय व्यय आदि के क्षेत्रफल में दोष नहीं आना चाहिये, एवं वेध तो सर्वथा छोड़ना ही चाहिये ॥११५॥

सात प्रकार के वेध—

तलवेह–कोणवेह तालुयवेह कवालवेह च ।
तह थंभ–तुलावेह दुवारवेह च सत्तमयं ॥११६॥

तलवेध, कोणवेध, तालुवेध, कपालवेध, स्तंभवेध, तुलावेध और द्वारवेध, ये सात प्रकार के वेध हैं ॥११६॥

समविसमभूमि कुंभि अ जलपुर परगिहस्स तलवेहो ।
कूणसम जइ कूणं न हवइ ता कूणवेहो अ ॥११७॥

घर की भूमि कहीं सम कहीं विषम हो, द्वार के सामने कुंभी (तैल निकालने की घानी, पानी का अरहट या ईख पीसने का कोल्हू) हो, कूए या दूसरे के घर का रास्ता हो तो 'तलवेध' जानना चाहिये। तथा घर के कोने बराबर न हों तो 'कोण वेध' समझना। ११७॥

इक्कखणे नीचुच्च पीढं तं मुणह तालुयावेहं ।
बारस्सुवरिमपट्टे गब्भे पीढं च सिरवेहं ॥११८॥

एक ही खंड में पीढे नीचे ऊंचे हों तो उसको 'तालुवेध' समझना चाहिए। द्वार के ऊपर की पटरी पर गर्भ (मध्य) भाग में पीढा आवे तो 'शिरवेध' जानना चाहिये ॥११८॥

गेहस्स मज्झि भाए थंभेगं तं मुणेह उरसल्लं ।
अह अनलो विनलाइ हविज्ज जा थंभवेहो सो ॥११९॥

घर के मध्य भाग में एक खंभा हो अथवा अग्नि या जल का स्थान हो तो यह हृदय शल्य अर्थात् स्तंभवेध जानना चाहिये ॥११९।

[illegible]—

"रथ्याविद्धं द्वार नाशाय कुमारदोषद तरुणा।
पङ्कद्वारे शोको व्ययोऽम्बुनि स्राविणि प्रोक्तः॥
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे।
स्तम्भेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्रह्मणाभिमुखे॥"

दूसरे के घर का रास्ता अपने द्वार मे जाता हो ऐसे रास्ते का वेध विनाश कारक होता है। वृक्ष का वेध हो तो बालकों के लिये दोषकारक है। कादव कीचड़ का हमेशा वेध रहता हो तो शोककारक है। पानी निकलने के नाले का वेध हो तो धन का विनाश होता है। कूए का वेध हो तो अपस्मार का रोग (वायु विकार) होता है। महादेव सूर्य आदि देवों का वध हो तो गृहस्वामी का विनाश करने वाला है। स्तम का वेध हो तो स्त्री को दोष रूप है और ब्रह्मा के सामने द्वार हो तो कुल का नाश करनेवाला है।

इगवेहेण य कलहो कमेण हाणि च जत्थ दो हुंति।
तिहु भूयाणनिवासो चउहिं खओ पचहिं मारी॥१२४॥

एक वेध से कलह, दो वेध से क्रमशः हानि, तीन वेध हो तो घर में भूतों का वास, चार वेध हो तो घर का क्षय और पांच वेध हो तो महामारी का रोग होता है॥ १२४॥

वास्तुपुरुष चक्र—

अट्ठुत्तरसउ भाया पडिमारूवुव्व करिवि भूमितले।
सिरि हियइ नाहि सिहिणो थंभ वज्जेह जत्तेण॥१२५॥

घर बनाने की भूमि के तलभाग का एक सौ आठ* भाग कर के इसमें एक मूर्ति के आकार जैसा वास्तुपुरुष का आकार बनाना, जहां जहां इस वास्तुपुरुष के मस्तक, हृदय, नाभि और शिखा का भाग आवे, उसी स्थान पर स्तंभ नहीं रखना चाहिये॥१२५॥

---

* एकसौ आठ भाग की कल्पना की गई है इनमें से ८१ भाग वास्तुमंडल के [illegible]
वास्तुमंडल के बाहर कोने में चरकी आदि आठ राक्षसों के [illegible] है।

वास्तु नर का अंग विभाग इस प्रकार है—

"ईशो मूर्ध्नि समाश्रितः श्रवणयोः पर्जन्यनामादिति—
रापस्तस्य गले वदंशयुगले प्रोक्तो जयश्चादितिः।
उक्तावर्यमभूधरौ स्तनयुगे स्यादापवत्सो हृदि,
पञ्चेन्द्रादिसुराश्च दक्षिणभुजे वामे च नागादयः॥
सावित्रः सविता च दक्षिणकरे वामे द्वय रुद्रतो,
मृत्युर्मैत्रगणस्तयोरनिपये स्यान्नाभिपृष्ठे विधिः।
मेढ्रे शक्रजयौ च जानुयुगले तौ वह्निरोगौ स्मृतौ,
पूषानन्दिगणाश्च सप्तविबुधा नल्योः पदोः पैतृकाः॥"

ईशानकोने में वास्तुपुरुष का सिर है, इसके ऊपर ईशदेव को स्थापित करना चाहिये। दोनों कान के ऊपर पर्जन्य और दिति देव को, गले के ऊपर आपदेव को, दोनों कंधे पर जय और अदिति देव को, दोनों स्तनों पर क्रम से अर्यमा और पृथ्वीधर को, हृदय के ऊपर आपवत्स को, दाहिनी भुजा के ऊपर इंद्रादि पांच (इंद्र, सूर्य,
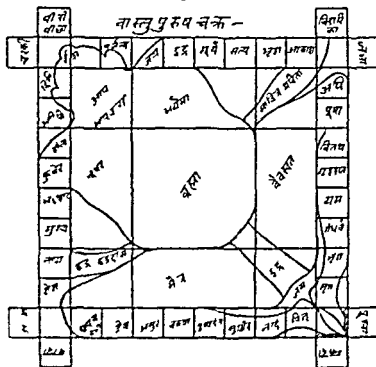
ईसत्य, भृश और आकाश) देवों को, बायीं भुजा के ऊपर नागादि पांच (नाग,

(पुच्छ, भल्लाट, कुबेर और शैल) देवों को, दाहिने हाथ पर सावित्र और सावित्री को,
बांये हाथ पर रुद्र और रुद्रदास को, जघा के ऊपर मृत्यु और मैत्र देव को, नाभि के *पृष्ठ भाग पर ब्रह्मा को, गुह्येन्द्रिय स्थान पर इद्र और जय को, दोनों घुटनों पर क्रम से अग्नि और रोग देव को, दाहिने पग की नली पर पूषादि सात (पूषा, वितथ गृहक्षत, यम, गधर्व, भृग और मृग) देवों को, बांये पग की नली पर नदी आदि सात (नदी, सुग्रीव, पुष्पदंत, वरुण असुर, शेष और पापयक्ष्मा) देवों को और पांव पर पितृदेव को स्थापित करना चाहिये।

इस वास्तु पुरुष के मुख, हृदय, नाभि, मस्तक, स्तन इत्यादि मर्मस्थान के ऊपर दीवार स्तम या द्वार आदि नहीं बनाना चाहिये। यदि बनाया जाय तो घर के स्वामी की हानि करनेवाला होता है।

वास्तुपद के ४५ देवों के नाम और उनके स्थान—

> "ईशस्तु पर्जन्यजयेन्द्रसूर्याः, सत्यो भृशाकाशक एव पूर्वे।
> वह्निश्च पूषा वितथाभिधानो, गृहक्षतः प्रेतपतिः क्रमेण ॥
> गन्धर्वभृङ्गौ मृगपितृसंज्ञौ, द्वारस्थसुग्रीवकपुष्पदन्ताः।
> जलाधिनाथोऽप्यसुरश्च शेष सपापयक्ष्मापि च रोगनागौ ॥
> मुख्यश्च भल्लाटकुबेरशैला-स्तथैव बाह्ये ह्यदितिर्दितिश्च।
> द्वात्रिंशदेवं क्रमतोऽर्चनीया-स्त्रयोदशैव त्रिदशाश्च मध्ये ॥"

ईशान कोने में ईश देव को, पूर्व दिशा के कोठे में क्रमशः पर्जन्य, जय, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश और आकाश इन सात देवों को, अग्निकोण में अग्निदेव को, दक्षिण दिशा के कोठे में क्रमशः पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गधर्व, भृगराज और मृग इन सात देवों को; नैऋत्य कोण में पितृदेव को; पश्चिम दिशा के कोठे में क्रमशः नदी, सुग्रीव, पुष्पदंत, वरुण, असुर, शेष और पापयक्ष्मा इन सात देवों को; वायु कोण में रोगदेव को; उत्तर दिशा के कोठे में अनुक्रम से नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर, शैल, अदिति और दिति इन सात देवों को स्थापन करना चाहिये। इस

---

* नाभि के पृष्ठ भाग पर इसका मतलब यह है कि वास्तुपुरुष की आकृति, औंधे सोये हुए पुरुष की आकृति के समान है।

प्रकार बत्तीस देव ऊपर के कोठे में पूजना चाहिये। और मध्य के कोठे में तेरह देव पूजना चाहिये।

"प्रागर्यमा दक्षिणतो विवस्वान्, मैत्रोऽपरे सौम्यदिशो विभागे।
पृथ्वीधरोऽर्च्यस्त्वथ मध्यतोऽपि, ब्रह्मार्चनीय सकलेषु नूनम्॥"

ऊपर के कोठे के नीचे पूर्व दिशा के कोठे में अर्यमा, दक्षिण दिशा के कोठे में विवस्वान्, पश्चिम दिशा के कोठे में मैत्र और उत्तर दिशा के कोठे में पृथ्वीधर देव को स्थापित कर पूजन करना चाहिये और सब कोठे के मध्य में ब्रह्मा को स्थापित कर पूजन करना चाहिये।

"आपापवत्सौ शिवकोणमध्ये, सावित्रकोऽग्नौ सविता तथैव।
कोणे महेन्द्रोऽथ जयस्तृतीये, रुद्रोऽनिलेऽर्च्योऽप्यथ रुद्रदासः॥"

ऊपर के कोने के कोठे के नीचे ईशान कोण में आप और आपवत्स को, अग्नि कोण में सावित्र और सविता को, नैऋत्य कोण में इन्द्र और जय को, वायु कोण में रुद्र और रुद्रदास को स्थापन करके पूजन करना चाहिये।

"ईशानबाह्ये चरकी द्वितीये, विदारिका पूतनिका तृतीये।
पापाभिधा मारुतकोणके तु, पूज्या' सुरा उक्तनिधानकैस्तु॥"

वास्तुमडल के बाहर ईशान कोण में चरकी, अग्निकोण में विदारिका, नैऋत्य कोण में पूतना और वायुकोण में पापा इन चार राक्षसनियों की पूजन करना चाहिये।

प्रासाद मडन में वास्तुमडल के बाहर कोणे में आठ प्रकार के देव बतलाये हैं। जैसे—

"ऐशान्ये चरकी बाह्ये पीलीपीछा च पूर्ववत्।
विदारिकाग्नी कोणे च जमा याम्यदिशाश्रिता॥
नैर्ऋत्ये पूतना स्कन्दा पश्चिमे वायुकोणके।
पापा राक्षसिका सौम्येऽर्यमैव सर्वतोऽर्चयेत्॥"

ईशान कोने के बाहर उत्तर में चरकी और पूर्व में पीली पीछा, अग्नि कोण के बाहर पूर्व में विदारिका और दक्षिण में जमा, नैऋत्य कोण के बाहर दक्षिण में पूतना और पश्चिम में स्कदा, वायु कोण के बाहर पश्चिम में पापा और उत्तर में अर्यमा की पूजन करना चाहिये।

कौनसे वास्तु की किस जगह पूजन करना चाहिये यह बतलाते हैं—

"ग्रामे भूपतिमंदिरे च नगरे पूज्यश्चतुःषष्टिकै—
रेकाशीतिपदैः समस्तभवने जीर्णे नवाब्ध्यंशकैः।
प्रासादे तु शतांशकैस्तु सकले पूज्यस्तथा मण्डपे,
कूपे षण्णवचन्द्रभागसहितै-र्वाप्यां तडागे वने॥"

गाँव, राजमहल और नगर में चौसठ पद का वास्तु, सब प्रकार के घरों में इक्यासी पद का वास्तु, जीर्णोद्धार में उनपचास पद का वास्तु, समस्त देवप्रासाद में और मंडप में सौ पद का वास्तु, कूए बावड़ी, तालाब और वन में एकसौ छिआनवे पद के वास्तु की पूजन करना चाहिए।

चौसठ पद के वास्तु का स्वरूप—

चतुःषष्टिपदैर्वास्तु-र्मध्ये ब्रह्मा चतुष्पदः।
अर्यमाद्याश्चतुर्भागा द्विद्विपदा मध्यकोणगाः॥
बहिष्कोणेष्वर्द्धभागाः शेषा एकपदाः सुराः।"

चौसठ पद के वास्तु में चार पद का ब्रह्मा, अर्यमादि चार देव भी चार २ पद के, मध्य कोने के आप आपवत्स आदि आठ देव दो दो पद के, उपर के कोने के आठ देव आधे २ पद के और बाकी के देव एक २ पद के हैं।

६४ चौसठपदका वास्तुचक्र—

दि / ध	प	ज	इ	स	स	भृ	आ / प
अ	आप		अर्यमा		सावित्र		पू
शो	आपवत्स				सविता		वि
कु	पृथ्वीधर		ब्रह्मा		विवस्वान		गृ
भ							य
मु	रुद्र		मैत्रगण		इन्द्र		ग
ना	रुद्रदास				जय		भृ
रो / पा	शो	अ	व	पु	मु	नं	पि / रु

इक्यासी पद के वास्तु का स्वरूप—

> "एकाशीतिपदे ब्रह्मा नवार्यमाद्यास्तु षट्पदाः ॥
> द्विपदा मध्यकोणेऽष्टौ बाह्ये द्वात्रिंशदेकशः ।"

८१ इक्यासीपदका वास्तुचक्र—

चरकी								विदारि
ई	प	ज	इं	स्	स	भृ	आ	अ
दि	आप			अर्यमा			सावित्र	पू
अ	आपवत्स						सविता	वि
शे								गृ
ऊ	पृथ्वीधर			ब्रह्मा			विवस्वान	य
भ								ग
मु	रुद्र			मैत्रगण			इन्द्र	भृ
ना		रुद्रदास					जय	मृ
रो	पा	शो	अ	व	पु	सु	न	पि
पापा								पूतना

इक्यासी पद के वास्तु में नव पद का ब्रह्मा, अर्यमादि चार देव छः छः पद के मध्य कोने के आप आपवत्स आदि आठ देव दो दो पद के और ऊपर के बत्तीस देव एक २ पद के हैं।

सौपद के वास्तु का स्वरूप—

> "शते ब्रह्माष्टिसंख्यांशो बाह्यकोणेषु सार्द्धगाः ॥
> अर्यमाद्यास्तु वस्वंशाः शेषास्तु पूर्ववास्तुवत् ।"

सौ पद के वास्तु में ब्रह्मा सोलह पद का, ऊपर के कोने के आठ देव डेढ़ २ पद के, अर्यमादि चार देव आठ आठ पद के और मध्य कोने के आप आपवत्स आदि आठ देव दो २ पद के, तथा बाकी के देव एक २ पद के हैं।

१०० पद का वास्तुचक्र

उनपचास पद के वास्तु का स्वरूप—

"वेदांशो विधिरर्यमप्रभृतयस्त्र्यंशा नव स्वष्टक,
कोणेष्वष्टपदार्द्धकाः परसुराः षड्भागहीन पदं।
वास्तोर्नन्दयुगांश एवमधुनाप्यारोरयतु रविके,
सन्धेः सूत्रमितान् सुधीः परिहरेत् भित्तिं तुलां स्तम्भकान् ॥"

उनपचास पद के वास्तु में चार पद का ब्रह्मा, अर्यमादि चार देव तीन २ पद के, आप आदि आठ देव नव पद के, कोने के आठ देव आधे २ पद के और बाकी के चौबीस देव बीस पद में स्थापन करना चाहिये। बीस पद में प्रत्येक के छः २ भाग किये तो १२० पद हुए, इसको २४ से भाग दिया तो प्रत्येक देव के पांच २ भाग आते हैं। चौसठ पद में वास्तुपुरुष की कल्पना करना चाहिये। पीछे वास्तुपुरुष के संधि भाग में दिवाल तुला या स्तंभ को बुद्धिमान् नहीं रक्खें।

वसुनन्दिकृत प्रतिष्ठासार में इक्यासी पद का वास्तुपूजन इस प्रकार बतलाया है कि—

"विधाय मसृणं क्षेत्रं वास्तुपूजां विधापयेत् ॥
रेखाभिस्तिर्यगूर्ध्वाभि—र्वज्राग्राभि शुभमण्डलम् ।
चूर्णेन पञ्चवर्णेन सैकाशीतिपदं लिखेत् ॥
तेष्वष्टदलपद्मानि लिखित्वा मध्यकोष्टके ।
अनादिसिद्धमन्त्रेण पूजयेत् परमेष्ठिनं ॥
तद्बहिःस्याष्टकोष्टेषु जयाद्या देवता यजेत् ।
ततः षोडशपत्रेषु विद्यादेवीश्च संयजेत् ॥
चतुर्विंशतिकोष्टेषु यजेच्छासनदेवताः ।
द्वात्रिंशत्कोष्टपङ्क्तेषु देवेन्द्रान् क्रमशो यजेत् ॥

स्वमन्त्रोच्चारणं कृत्वा गन्धपुष्पाक्षतं वरं ।
दीपधूपफलार्घाणि दत्वा सम्यक् समर्चयेत् ॥
लोकपालांश्च यक्षांश्च समभ्यर्च्य यथाविधि ।
जिनबिम्बाभिषेकं च तथाष्टविधमर्चनम् ॥" सेठिया जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

प्रथम भूमि को पवित्र करके पीछे वास्तुपूजा करना चाहिये। अग्र भाग में वज्राकृतिवाली तिरछी और खड़ी दश २ रेखाएँ खींचना चाहिये। उसके ऊपर पचवर्ण के चूर्ण से इक्यासी पद वाला अच्छा मंडल बनाना चाहिये। मध्य के नव कोठे में आठ पांखड़ीवाला कमल बनाना चाहिये। कमल के मध्य में परमेष्ठी अरिहंतदेव को नमस्कार मंत्र पूर्वक स्थापित करके पूजन करना चाहिये। कमल की पांखड़ियों में जया आदि देवियों की पूजा करना अर्थात् कमल के कोनेवाली चार पांखड़ियों में जया, विजया, जयंता और अपराजिता इन चार देवियों को स्थापित करके चार दिशावाली पांखड़ियों में सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु को स्थापन कर पूजन करना चाहिये। कमल के उपर के सोलह कोठे में सोलह विद्या देवियों को, इनके उपर चौवीस कोठे में शासन

देवता को और इनके ऊपर बत्तीस कोठे में [1]इन्द्रों को क्रमशः स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर अपने २ देवों के मन्त्राक्षर पूर्वक गंध, पुष्प, अक्षत, दीप, धूप, फल और नैवेद्य आदि चढ़ा कर पूजन करना चाहिये। दश दिग्पाल और चौबीस यक्षों की भी यथाविधि पूजा करना चाहिये। जिनबिंब के ऊपर अभिषेक और अष्टप्रकारी पूजा करना चाहिये।

द्वार कोने स्तंभ आदि किस प्रकार रखना चाहिये यह बतलाते हैं—

वार बारस्स सम ग्रह बार बारमज्झि कायव्व।
ग्रह वज्जिऊण बार कीरइ बार तहाल च ॥१२६॥

मुख्य द्वार के बराबर दूसरे सब द्वार बनाना चाहिये अर्थात् हरएक द्वार के उत्तरंग समसूत्र में रखना या मुख्य द्वार के मध्य में आजाय ऐसा सकड़ा दरवाजा बनाना चाहिये। यदि मुख्य द्वार को छोड़ कर एक तरफ खिड़की बनाई जाय तो यह अपनी इच्छानुसार बना सकता है ॥१२६॥

कूण कूणस्स सम आलय आल च कीलए कील।
थंभे थंभ कुजा ग्रह वेह वज्जि कायव्वा ॥१२७॥

कोने के बराबर कोना, आले के बराबर आला, खूँटे के बराबर खूँटा और खंभे के बराबर खंभा ये सब वेध को छोड़ कर रखना चाहिये ॥१२७॥

आलयसिरम्मि कीला थंभो बारुवरि बारु थंभुवरे।
बारद्दिबार समखण विसमा थंभा महाअसुहा ॥१२८॥

आले के ऊपर कीला (खूँटा), द्वार के ऊपर स्तंभ, स्तंभ के ऊपर द्वार, द्वार के ऊपर दो द्वार, समान खंड और विषम स्तंभ ये सब बड़े अशुभ कारक हैं ॥१२८॥

थंभहीण न कायव्व पासाय *मठमंदिर।
कूणकक्खंतरेऽवस्स देय थंभ पयत्तओ ॥१२९॥

---

[1] दिगम्बराचार्य कृत प्रतिष्ठा पाठ में बत्तीस इन्द्रों के पूजन का अधिकार है।

* मह हरम्मारे।

प्रासाद (राजमहल या हवेली) मठ और मंदिर ये बिना स्तम के नहीं करने चाहिये। कोने के बगल में अवश्य करके स्तम रखना चाहिये ॥१२६॥

स्तम का नाप परिमाण मंजरी में कहा है कि—

"उच्छ्ये नवधा भक्ते कुंभिका भागतो भवेत्।
स्तम्भ षड्भाग उच्छ्राये भागार्द्धं भरणं स्मृतम् ॥
शार भागार्द्धतः प्रोक्तं पट्टोचभागसम्मितम्" ॥

घर की ऊंचाई का नौ भाग करना उसमें से एक भाग के प्रमाण की 'कुंभी' बनाना, छ भाग जितनी स्तम की ऊंचाई करना, आधे भाग जितना उदयवाला 'भरणा' करना, आधे भाग जितना उदयवाला 'शरु' करना और एक भाग प्रमाण जितना उदय में 'पीढ़ा' बनाना चाहिये।

कुंभी सिरम्मि सिहरं वट्टा अट्ठंस-भद्दगायारा।
रूवगपल्लवसहिया गेहे थंभा न कायव्वा ॥ १३० ॥

कुंभी के सिर पर शिखरवाला, गोल, आठ कोनेवाला, भद्राकार (चढ़त उतरते खांचेवाला), रूपवाला (मूर्तियोंवाला) और पल्लववाला (पत्तियों वाला) ऐसा स्तम सामान्य घर में नहीं करना चाहिये। किन्तु प्रासाद—देवमंदिर या राजमहल में बनाया जाय तो अच्छा है ॥ १३० ॥

खणमज्झे न कायव्वं कीलालयगवक्खमुक्खसमसुहं।
अंतरपट्टमचं करिज्ज खणा तह य पीढसमं ॥ १३१ ॥

खूंटी, आला और खिड़की इनमें से कोई खंड के मध्य भाग में आजाय इस प्रकार नहीं बनाना चाहिये। किन्तु खंड में अंतरपट और मची बनाना और पीढे सम संख्या में बनाना चाहिये ॥ १३१ ॥

गिहमज्झि अंगणे वा तिक्कोणं पंचकोणयं जत्थ।
तत्थ वसंतस्स पुणो न हवइ सुहरिद्धि कईयावि ॥ १३२ ॥

जिस घर के मध्य में या आंगन में त्रिकोण या पंचकोण भूमि हो उस घर में रहनेवाले को कभी भी सुख समृद्धि की प्राप्ति नहीं होती है ॥ १३२ ॥

मूलगिहे पच्छिममुहि जो वारइ दुन्निवारा ओवरए ।
सो त गिह न भुजइ अह भुजइ दुक्खिओ हवइ ॥ १३३ ॥

पश्चिम दिशा के द्वारवाले मुख्य घर में दो द्वार और शाला हो ऐसे घर को नहीं भोगना चाहिये अर्थात् निवास नहीं करना चाहिये, क्योंकि उसमें रहने से दुःख होता है ॥ १३३ ॥

कमलेगि ज दुवारो अहवा कमलेहि वज्जिओ हवइ ।
हिट्ठाउ उवरि पिहुलो न ठाइ थिरु लच्छि तम्मि गिहे ॥ १३४ ॥

जिस घर के द्वार एक कमलवाले हों या बिलकुल कमल से रहित हों, तथा नीचे की अपेक्षा ऊपर चौड़े हों, ऐसे द्वारवाले घर में लक्ष्मी निवास नहीं करती है ॥ १३४ ॥

वलयाकार कूणेहि सकुल अहव एग दु ति कूण ।
दाहिणवामइ दीह न वासियव्वेरिस गेह ॥ १३५ ॥

गोल कोनेवाला या एक, दो, तीन कोनेवाला तथा दक्षिण और बायीं ओर लंबा, ऐसे घर में कभी नहीं रहना चाहिये ॥ १३५ ॥

सयमेव जे किवाडा पिहियंति य उग्घडंति ते असुहा ।
चित्तकलसाइसोहा सविसेसा मूलदारि सुहा ॥ १३६ ॥

जिस घर के किवाड़ स्वयमेव बन्ध हो जांय या खुल जांय तो ये अशुभ समझना चाहिये। घर का मुख्य द्वार कलश आदि के चित्रों से सुशोभित हो तो बहुत शुभकारक है ॥ १३६ ॥

छत्तिनरि भित्तितरि मग्गतरि दोस जे न ते दोसा ।
साल ओवरय कुक्खी पिट्ठि दुवारेहिं बहुदोसा ॥ १३७ ॥

ऊपर जो वेध आदि दोष बतलाये हैं, उनमें यदि छत का, दीवार का या मार्ग का अन्तर हो तो वे दोष नहीं माने जाते हैं। शाला और ओरडा की कुक्षी (बगल भाग) यदि द्वार के पिछले भाग में हो तो बहुत दोषकारक है ॥ १३७ ॥

घर में किस प्रकार के चित्र बनाना चाहिये ?—

जोइणिनट्टारंभ भारह रामायणं च निवजुद्धं ।
रिसिचरियदेवचरियं इय चित्तं गेहि नहु जुत्तं ॥ १३८ ॥

योगिनियों का नाटारंभ, महाभारत रामायण और राजाओं का युद्ध, ऋषियों का चरित्र और देवों का चरित्र ऐसे चित्र घर में नहीं बनाना चाहिये ॥ १३८ ॥

फलियतरु कुसुमवल्ली सरस्सई नवनिहाणजुअलच्छी ।
कलसं वद्धावणयं सुमिणावलियाइ–सुहचित्तं ॥ १३९ ॥

फलवाले वृक्ष, पुष्पों की लता, सरस्वतीदेवी, नवनिधानयुक्त लक्ष्मीदेवी, कलश, स्वस्तिकादि मांगलिक चिह्न और अच्छे अच्छे स्वप्नों की पंक्ति ऐसे चित्र बनाना बहुत अच्छा है ॥ १३९ ॥

पुरिसुव्व गिहस्संगं हीणं अहियं न पावए सोहं ।
तम्हा सुद्धं कीरइ जेण गिहं हवइ रिद्धिकरं ॥ १४० ॥

पुरुष के अंग की तरह घर के अंग न्यून या अधिक हों तो वह घर शोभा के लायक नहीं है। इसलिये शिल्पशास्त्र में कहे अनुसार शुद्ध घर बनाना चाहिये जिससे घर ऋद्धिकारक हो ॥ १४० ॥

घर के द्वार के सामने देवों के निवास संबंधि शुभाशुभ फल—

वज्जिज्जइ जिणपिट्ठी रविईसरदिट्ठि विण्हुवामभुआ ।
सव्वत्थ असुह चंडी बंभाणं चउदिसिं चयह ॥ १४१ ॥

घर के सामने जिनेश्वर की पीठ, सूर्य और महादेव की दृष्टि, विष्णु की बायीं भुजा, सब जगह चंडीदेवी और ब्रह्मा की चारों दिशा, ये सब अशुभकारक हैं, इस लिये इनको अवश्य छोड़ना चाहिये ॥ १४१ ॥

[1]अरिहंतदिट्ठिदाहिण हरपुट्ठी वामएसु कल्लाणं ।
विवरीए बहुदुक्खं परं न मग्गंतरे दोसो ॥ १४२ ॥

---

1 विण्हुवामो अ' इति पाठान्तर। 2 अरहंत इति पाठान्तर।

घर के सामने अरिहंत (जिनेश्वर) की दृष्टि या दक्षिण भाग हो, तथा महादेवजी की पीठ या बायीं भुजा हो तो बहुत कल्याणकारक है। परन्तु इसमे विपरीत हो तो बहुत दुःखकारक है। यदि बीच में नगर रास्ते का अंतर हो तो दोष नहीं माना जाता है ॥ १४२ ॥

गृह सम्बन्धी गुण दोष—

पढमंत-जाम-वज्जिय धयाइ-दु-ति-पहरसंभवा छाया ।
दुहहेऊ नायव्वा तओ पयत्तेण वज्जिज्जा ॥ १४३ ॥

पहले और अंतिम चौथे प्रहर को छोड़कर दूसरे और तीसरे प्रहर में मंदिर के ध्वजा आदि की छाया घर के ऊपर गिरती हो तो दुःखकारक जानना। इसलिये इस छाया को अवश्य छोड़ना चाहिये। अर्थात् दूसरे और तीसरे प्रहर में मंदिर के ध्वजादि की छाया जिस जगह गिरे, ऐसे स्थान पर घर नहीं बनाना चाहिये ॥ १४३ ॥

समकट्ठा विसमखणा सव्वपयारेसु इगविही कुज्जा ।
पुव्वुत्तरेण पल्लव जमावरा मूलकायव्वा ॥ १४४ ॥

सम काष्ठ और विषम खंड ये सब प्रकार से एक विधि से करना चाहिये। पूर्व उत्तर दिशा में (ईशान कोण में) पल्लव और दक्षिण पश्चिम दिशा में (नैर्ऋत्य कोण में) मूल बनाना चाहिये ॥ १४४ ॥

सव्वेवि भारवट्टा मूलगिहे एगि सुत्ति कीरंति ।
पीढ पुण एगसुत्ते उवरय-गुजारि-श्रलिंदेसु ॥ १४५ ॥

मुख्य घर में सब भारवटे (जो स्तम के ऊपर लंबा काष्ठ रखा जाता है वह) बराबर समसूत्र में रखने चाहिये। तथा शाला गुजारी और अलिंद में पीढे भी समसूत्र में रखने चाहिये ॥ १४५ ॥

घर में कैसी लकड़ी काम में नहीं लाना चाहिये यह बतलाते हैं—

हल-घाणय-सगडमई अरहट्ट-जंताणि कंटई तह य ।
पंचुंबरि खीरतरू एयाण य कट्ठ वज्जिज्जा ॥ १४६ ॥

हल, घानी (कोल्हू), गाड़ी, अरहट (रेहट-कुए से पानी निकालने का चरखा), कांटेवाले वृक्ष, पांच प्रकार के उदुम्बर (गूलर, वड़ पीपल, पलाश और कठुम्बर) और क्षीरतरु अर्थात् जिस वृक्ष को काटने से दूध निकले ऐसे वृक्ष इत्यादि की लकड़ी मकान बनवाने में नहीं लाना चाहिये ॥ १४६ ॥

विज्जउरि केलि दाडिम जंभीरी दोहलिद्द अंबलिया ।
१बब्बूल-बोरमाई कणयमया तह वि नो कुज्जा ॥ १४७ ॥

बीजपूर (बीजोरा), केला, अनार, निंबू, आक, इमली, बबूल, बेर और कनकमय (पीले फूलवाले वृक्ष) इन वृक्षों की लकड़ी घर बनाने में नहीं लाना चाहिये तथा इनको घर में बोना भी नहीं चाहिये ॥ १४७ ॥

एयाण जइ वि जडा २पाडिवसा उपविस्सइ अहवा ।
छाया वा जम्मि गिहे कुलनासो हवइ तत्थेव ॥ १४८ ॥

यदि उपरोक्त वृक्षों की जड़ घर के समीप हो या घर में प्रवेश करती हो तथा जिस घर के ऊपर उनकी छाया गिरती हो तो उस घर के कुल का नाश हो जाता है ॥ १४८ ॥

सुसुक भग्ग दड्ढा मसाण खगनिलय खीर चिरदीहा ।
निंब-बहेडय रुक्खा न हु कट्टिज्जति गिहहेऊ ॥ १४९ ॥

जो वृक्ष अपने आप सूखा हुआ, टूटा हुआ जला हुआ, श्मशान के समीप का, पक्षियों के घोंसलेवाला, दूधवाला, बहुत लम्बा (खजूर आदि), नीम और बेहड़ा इत्यादि वृक्षों की लकड़ी घर बनाने के लिये नहीं काटना चाहिये ॥ १४६ ॥

वाराही संहिता में कहा है कि—

"आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदा क्षीरिणोऽर्थनाशाय ।
फलिन प्रजाक्षयकरा दारूण्यपि वर्जयेदेषाम् ॥
छिन्याद् यदि न तरूस्तान् तदन्तरे पूजितान् वपेदन्यान् ।
पुन्नागाशोकारिष्टबकुलपनसान् शमीशालौ ॥"

घर के समीप यदि कांटेवाले वृक्ष हों तो शत्रु का भय करनेवाले हैं, दूध वाले वृक्ष हों तो लक्ष्मी के नाशकारक हैं और फलवाले वृक्ष हों तो संतान के नाश कारक

१ बंबूलि इति पाठान्तर । २ पाडवसा 'पाडासा इति पाठान्तरे ।

हैं। इसलिये इन वृक्षों की लकड़ी भी घर बनाने के लिये नहीं लाना चाहिये। ये वृक्ष घर में या घर के समीप हों तो काट देना चाहिये, यदि उन वृक्षों को नहीं काटें तो उनके पास पुन्नाग (नागकेसर), अशोक, अरीठा, बकुल (केसर), पनस, शमी और शाली इत्यादि सुगंधित पूज्य वृक्षों को बोने से तो उन दोषित वृक्षों का दोष नहीं रहता है।

पाहाणमय थंभ पीढ पट्ट च वारउत्ताणं ।
एए गेहि निरुद्धा सुहावहा धम्मठाणेसु ॥ १५० ॥

यदि पत्थर के स्तंभ, पीढे, छत पर के तख्ते और द्वारशाख ये सामान्य गृहस्थ के घर में हों तो विरुद्ध (अशुभ) हैं। परन्तु धर्मस्थान, देवमंदिर आदि में हों तो शुभकारक हैं ॥ १५० ॥

पाहाणमये कट्ठं कट्ठमए पाहणस्स थंभाइ ।
पासाए य गिहे वा वज्जेयव्वा पयत्तेणं ॥ १५१ ॥

जो प्रासाद या घर पत्थर के हों, वहां लकड़ी के और काष्ठ के हों वहां पत्थर के स्तंभ पीढे आदि नहीं बनाने चाहिये। अर्थात् घर आदि पत्थर के हों तो स्तंभ आदि भी पत्थर के और लकड़ी के हों तो स्तंभ आदि भी लकड़ी के बनाने चाहिये ॥१५१॥

दूसरे मकान की लकडी आदि वास्तुद्रव्य नहीं लेना चाहिये, यह बतलाते हैं—

पासाय-कूव-वावी मसाण मठ-रायमंदिराणं च ।
पाहाण-इट्ट कट्ठा सरिसवमत्ता वि वज्जिज्जा ॥ १५२ ॥

देवमंदिर, कूए, बावड़ी, श्मशान, मठ और राजमहल इनके पत्थर ईंट या लकड़ी आदि एक तिल मात्र भी अपने घर के काम में नहीं लाना चाहिये ॥ १५२ ॥

पुनः समरांगण सूत्रधार में भी कहा है कि—

"अन्यवास्तुच्युतं द्रव्य--मन्यवास्तौ न योजयेत् ।
प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे च न वसेद् गृही ॥"

दूसरे वास्तु (मकान आदि) की गिरी हुई लकड़ी पाषाण ईंट चूना आदि द्रव्य (चीजें) दूसरे वास्तु (मकान) में काम नहीं लाना चाहिये। यदि दूसरे का वास्तु द्रव्य मंदिर में लगाया जाय तो पूजा प्रतिष्ठा नहीं होती है, और घर में लगाया जाय तो उस घर में स्वामी रहने नहीं पाता है।

गुगिहजालो उवरिमथो खिविज्ज नियमज्झिम नन्नगेहस्स ।
पच्छा कहवि न खिप्पइ जह भणिय पुव्वसत्थम्मि ॥ १५३ ॥

अपने मकान के ऊपर की मंजिल में सुन्दर खिड़की रखना अच्छा है, परन्तु दूसरे के मकान की जो खिड़की हो उसके नीचे के भाग में आजाय ऐसी नहीं रखना चाहिये। इसी प्रकार पिछली दिवाल में कभी भी गवाक्ष (खिड़की) आदि नहीं रखना चाहिये, ऐसा प्राचीन शास्त्रों में कहा है ॥ १५३ ॥

शिल्पदीपक में कहा है कि—

"सूचीमुखं भवेच्छिद्रं पृष्ठे यदा करोति च ।
प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे क्रीडन्ति राक्षसाः ॥"

घर के पीछे की दिवाल में सूई के मुख जितना भी छिद्र नहीं रक्खे। यदि रक्खे तो प्रासाद (मंदिर) में देव की पूजा नहीं होती है और घर में राक्षस क्रीड़ा करते हैं अर्थात् मंदिर या घर के पीछे की दिवाल में बीच के भाग में प्रकाश के लिये गवाक्ष खिड़की आदि हो तो अच्छा नहीं है ।

ईसाणाई कोणे नयरे गामे न कीरए गेहं ।
सतलोआणमसुहं अतिमजाईण विद्धिकरं ॥ १५४ ॥

नगर या गाँव के ईशान आदि कोने में घर नहीं बनाना चाहिये। यह उत्तम जनों के लिये अशुभ है, परतु अत्यन्त जातिवाले को वृद्धिकारक है ॥ १५४ ॥

शयन किस तरह करना चाहिये ?—

देवगुरु-वण्हि गोधण-संमुह चरणो न कीरए सयणं ।
उत्तरसिर न कुज्जा न नग्गदेहा न अल्लपया ॥ १५५ ॥

देव, गुरु अग्नि गौ और धन इनके सामने पैर रख कर, उत्तर में मस्तक रख कर, नंगे होकर और गीले पैर कभी शयन नहीं करना चाहिये ॥ १५५ ।

धुत्तामच्चासन्ने परवत्थुदले चउप्पहे न गिहं ।
गिहदेवलपुव्विल्लं मूलदुवारं न चालिज्जा ॥ १५६ ॥

धूर्त और मंत्री के समीप, दूसरे की वास्तु की हुई भूमि में और चौक में घर नहीं बनाना चाहिये । विवेकविलास में कहा है कि—

"दुःखं देवकुलासन्ने गृहे हानिश्चतुष्पथे ।
धूर्तामात्यगृहाभ्याशे स्यातां सुतधनक्षयौ ॥"

घर देवमंदिर के पास हो तो दुःख, चौक में हो तो हानि, धूर्त और मंत्री के घर के पास हो तो पुत्र और धन का विनाश होता है ।

घर या देवमंदिर का जीर्णोद्धार कराने की आवश्यकता हो तब इनके मुख्य द्वार को चलायमान नहीं कराना चाहिये। अर्थात् प्रथम का मुख्य द्वार जिस दिशा में जिस स्थान पर जिस माप का हो, उसी प्रकार उसी दिशा में उस स्थान पर उसी माप का रखना चाहिये ॥ १५६ ॥

गौ बैल और घोड़े बांधने का स्थान—

गो-वसह-सगडठाणं दाहिणए वामए तुरगाणं ।
गिहबाहिरभूमीए सलग्गा सालए ठाणं ॥ १५७ ॥

गौ, बैल और गाड़ी इनको रखने का स्थान दक्षिण ओर, तथा घोड़े का स्थान बायीं ओर घर के बाहर भूमि में बनवायी हुई शाला में रखना चाहिये ॥१५७॥

गेहाउ वामदाहिण-अग्गिमभूमी गहिज्ज जइ कज्जं ।
पच्छा कहवि न लिज्जइ इय भणियं पुव्वनाणीहिं ॥ १५८ ॥

इति श्रीपरमजैनचन्द्राङ्गज-ठक्कुर 'फेरु' विरचिते गृहवास्तुसारे
गृहलक्षणनाम प्रथमप्रकरणम् ।

यदि कोई कार्य विशेष से अधिक भूमि लेना पड़े तो घर के बायीं या दक्षिण तरफ की या आगे की भूमि लेना चाहिये । किन्तु घर के पीछे की भूमि कभी भी नहीं लेना चाहिये, ऐसा पूर्व के ज्ञानी प्राचीन आचार्यों ने कहा है ॥ १५८ ॥

बिम्बपरीक्षा प्रकरणं द्वितीयम् ।

द्वारगाथा—

इय गिहलक्खणभावं भणियं भणामित्थ बिंबपरिमाणं ।
गुणदोसलक्खणाइं सुहासुहं जेण जाणिज्जा[1] ॥ १ ॥

प्रथम गृहलक्षण भाव को मैंने कहा । अब बिम्ब (प्रतिमा) के परिमाण को तथा इसके गुणदोष आदि लक्षणों को मैं (फेरु) कहता हूं कि जिससे शुभाशुभ जाना जाय ॥ १ ॥

मूर्त्ति के स्वरूप में वस्तु स्थिति—

छत्तत्तयउत्तारं भालकवोलाओ सवणनासाओ ।
सुहयं जिणचरणग्गे नवग्गहा जक्खजक्खिणिया ॥ २ ॥

जिनमूर्त्ति के मस्तक, कपाल, कान और नाक के उपर बाहर निकले हुए तीन छत्र का विस्तार होता है, तथा चरण के आगे नवग्रह और यक्ष यक्षिणी होना सुखदायक है ॥ २ ॥

मूर्त्ति के पत्थर में दाग और जोड़ का फल—

बिंबपरिवारमज्झे सेलस्स य वण्णसंकर न सुहं ।
समअंगुलप्पमाणं न सुंदरं हवइ कइयावि ॥ ३ ॥

प्रतिमा का या इसके परिकर का पाषाण वर्णसंकर अर्थात् दागवाला हो तो अच्छा नहीं । इसलिये पाषाण की परीक्षा करके बिना दाग का पत्थर मूर्त्ति बनाने के लिये लाना चाहिये ।

---

१ 'जाणइ' । २ कयावि इति पाठान्तरे ।

प्रतिमा यदि सम अंगुल—दो चार छः आठ दस बारह इत्यादि बेकी अंगुल वाली बनावें तो कभी भी अच्छी नहीं होती, इसलिये प्रतिमा विषम अंगुल—एक तीन पांच सात नव ग्यारह इत्यादि एकी अंगुलवाली बनाना चाहिये ॥ ३ ॥

आचारदिनकर में गृहबिंब लक्षण में कहा है कि—

"अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहबिम्बस्य लक्षणम् ।
एकाङ्गुले भवेच्छ्रेष्ठ द्व्यङ्गुल धननाशनम् ॥ १ ॥
त्र्यङ्गुले जायते सिद्धिः पीडा स्याच्चतुरङ्गुले ।
पञ्चाङ्गुले तु वृद्धिः स्याद् उद्वेगस्तु षडङ्गुले ॥ २ ॥
सप्ताङ्गुले गवां वृद्धि हानिरष्टाङ्गुले मता ।
नवाङ्गुले पुत्रवृद्धि धननाशो दशाङ्गुले ॥ ३ ॥
एकादशाङ्गुल बिम्ब सर्वकामार्थसाधनम् ।
एतत्प्रमाणमाख्यात मत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥ ४ ॥"

अब घर में पूजने योग्य प्रतिमा का लक्षण कहता हूँ। एक अंगुल की प्रतिमा श्रेष्ठ, दो अंगुल की धन का नाश करनेवाली, तीन अंगुल की सिद्धि करनेवाली, चार अंगुल की दुःख देनेवाली, पांच अंगुल की धन धान्य और यश की वृद्धि करनेवाली, छः अंगुल की उद्वेग करनेवाली सात अंगुल की गौ आदि पशुओं की वृद्धि करनेवाली, आठ अंगुल की हानि कारक, नव अंगुल की पुत्र आदि की वृद्धि करनेवाली, दश अंगुल की धन का नाश करनेवाली और ग्यारह अंगुल की प्रतिमा सब इच्छित कार्य की सिद्धि करनेवाली है। जो यह प्रमाण कहा है इससे अधिक अंगुलवाली प्रतिमा घर में पूजने के लिये नहीं रखना चाहिये।

पत्थर और लकड़ी की परीक्षा विवेकविलास में इस प्रकार है—

"निर्मलेनारनालेन पिष्टया श्रीफलत्वचा ।
विलिप्तेऽश्मनि काष्ठे वा प्रकटं मण्डलं भवेत् ॥"

निर्मल कांजी के साथ बेलवृक्ष के फल की छाल पीसकर पत्थर पर या लकड़ी

"मधुभस्मगुडव्योम कपोतसदृशप्रभैः ।
माञ्जिष्ठरक्तैः पीतैः कपिलैः श्यामलैरपि ॥
चित्रैश्च मण्डलैरेभि रन्तर्ज्ञेया यथाक्रमम् ।
खद्योतो वालुका रक्त भेकोऽम्बुगृहगोधिका ॥
दर्दुरः कृकलासश्च गोधाखुसर्पवृश्चिकाः ।
सन्तानविभवप्राण राज्योच्छेदश्च तत्फलम् ॥"

जिस पत्थर या काष्ठ की प्रतिमा बनाना हो, उसी पत्थर या काष्ठ के ऊपर पूर्वोक्त लेप करने से या स्वाभाविक यदि मधु के जैसा मंडल देखने में आवे तो भीतर खद्योत मानना। भस्म के जैसा मंडल देखने में आवे तो रेत, गुड़ के जैसा मंडल देखने में आवे तो भीतर लाल मेंढक, आकाशवर्ण का मंडल देखने में आवे तो पानी, कपोत (कबूतर) वर्ण का मंडल देखने में आवे तो छिपकली, मँजीठ जैसा देखने में आवे तो मेंढक, रक्त वर्ण का देखने में आवे तो शरट (गिरगिट), पीले वर्ण का देखने में आवे तो गोह, कपिलवर्ण का मंडल देखने में आवे तो उंदर, काले वर्ण का देखने में आवे तो सर्प और चित्रवर्ण का मंडल देखने में आवे तो भीतर बिच्छू है, ऐसा समझना। इस प्रकार के दागवाले पत्थर या लकड़ी हो तो संतान, लक्ष्मी, प्राण और राज्य का विनाश कारक है।

"कीलिकाछिद्रसुषिर-त्रसजालकसन्धयः ।
मण्डलानि च गारश्च महादूषणहेतवे ॥"

पाषाण या लकड़ी में कीला, छिद्र, पोलापन, जीवों के जाले, सांध, मंडलाकार रेखा या कीचड़ हो तो बड़ा दोष माना है।

"प्रतिमायां दवरका भवेयुश्च कथञ्चन ।
सदृग्वर्णा न दुष्यन्ति वर्णान्यत्वेऽतिदूषिता ॥"

प्रतिमा के काष्ठ में या पाषाण में किसी भी प्रकार की रेखा (दाग) देखने में आवे, वह यदि अपने मूल वस्तु के रंग के जैसी हो तो दोष नहीं है, किन्तु मूल वस्तु के रंग से अन्य वर्ण की हो तो बहुत दोषवाली समझना।

चन्द्रकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि आदि सब रत्नमणि के जाति की प्रतिमा समस्त गुणवाली है।

"स्वर्णरूप्यताम्रमय वाच्य धातुमय परम् ।
कांस्यसीसवङ्गमय कदाचिन्नैव कारयेत् ॥
तत्र धातुमये रीति मयमाद्रियते क्वचित् ।
निषिद्धो मिश्रधातुः स्याद् रीतिः कैश्चिच गृह्यते ॥"

सुवर्ण, चांदी और तांबा इन धातुओं की प्रतिमा श्रेष्ठ है। किन्तु कांसी, सीसा और कलई इन धातुओं की प्रतिमा कभी भी नहीं बनवानी चाहिये। धातुओं में पीतल की भी प्रतिमा बनाने को कहा है, किन्तु मिश्रधातु (कांसी आदि) की बनाने का निषेध किया है। किसी आचार्य ने पीतल की प्रतिमा बनवाने का कहा है।

"कार्यं दारुमय चैत्ये श्रीपर्ण्या चन्दनेन वा ।
बिल्वेन वा कदम्बेन रक्तचन्दनदारुणा ॥
पियालोदुम्बराभ्यां वा क्वचिच्छिशिमयापि वा ।
अन्यदारूणि सर्वाणि बिम्बकार्ये विवर्जयेत् ॥
तन्मध्ये च शलाकायां बिम्बयोग्य च यद्भवत् ।
तदेव दारु पूर्वोक्त निवेश्य पूतभूमिजम् ॥"

चैत्यालय में काष्ठ की प्रतिमा बनवाना हो तो श्रीपर्णी, चंदन, बेल, कदंब, रक्तचंदन, पियाल, उदुम्बर (गूलर) और क्वचित् शीशम इन वृक्षों की लकड़ी प्रतिमा बनवाने के लिए उत्तम मानी है। बाकी दूसरे वृक्षों की लकड़ी वर्जनीय है। ऊपर कहे हुए वृक्षों में जो प्रतिमा बनने योग्य शाखा हो, वह दागों से रहित और वृक्ष पवित्र भूमि में ऊगा हुआ होना चाहिये।

"अशुभस्थाननिष्पन्न सत्रास मशकान्वितम् ।
सशिर चैव पाषाण बिम्बार्थं न समानयत् ॥
नीरोग सुदृढं शुभ्र हारिद्र रक्तमेव वा ।
कृष्णं हरिं च पाषाण बिम्बकार्ये नियोजयेत् ॥"

अपवित्र स्थान में उत्पन्न होनेवाले, चीरा, मसा या नस आदि दोषवाले, ऐसे पत्थर प्रतिमा के लिये नहीं लाने चाहिये। किन्तु दोषों से रहित मजबूत सफेद, पीला, लाल, कृष्ण या हरे वर्णवाले पत्थर प्रतिमा के लिये लाने चाहिये।

समचतुरस्र पद्मासन युक्त मूर्ति का स्वरूप—

अन्नुन्नजाणुकंधे तिरिए केमंत-अंचलंते य।
सुत्तेग चउरंसं पज्जंकासणसुहं बिंबं ॥ ४ ॥

दाहिने घुटने से बाँये कंधे तक एक सूत्र, बाँये घुटने से दाहिने कंधे तक दूसरा सूत्र, एक घुटने से दूसरे घुटने तक तिरछा तीसरा सूत्र, और नीचे वस्त्र की किनार से कपाल के केश तक चौथा सूत्र। इस प्रकार इन चारों सूत्रों का प्रमाण बराबर हो तो यह प्रतिमा समचतुरस्र संस्थानवाली कही जाती है। ऐसी पर्यंकासन (पद्मासन) वाली प्रतिमा शुभ कारक है ॥ ४ ॥

पर्यंकासन का स्वरूप विवेकविलास में इस प्रकार है—

"वामो दक्षिणजङ्घोर्वोरुपर्यंघ्रिः करोऽपि च।
दक्षिणो वामजङ्घोर्वा-स्तत्पर्यङ्कासनं मतम् ॥"

बैठी हुई प्रतिमा के दाहिनी जंघा और पिण्डी के ऊपर बाँया हाथ और बाँया चरण रखना चाहिए। तथा बाँयी जंघा और पिण्डी के ऊपर दाहिना चरण और दाहिना हाथ रखना चाहिये। ऐसे आसन को पर्यंकासन कहते हैं।

प्रतिमा की ऊंचाई का प्रमाण—

नवताल हवइ रूवं रूवस्स य बारसंगुलो तालो।
अंगुलअट्ठहियसयं उड्ढं बासीण छप्पन्नं ॥ ५ ॥

प्रतिमा की ऊंचाई नव ताल की है। प्रतिमा के ही बारह अंगुल को एक ताल कहते हैं। प्रतिमा के अंगुल के प्रमाण से कायोत्सर्ग ध्यान में खड़ी प्रतिमा नव ताल अर्थात् एक सौ आठ अंगुल मानी है और पद्मासन से बैठी प्रतिमा छप्पन अंगुल मानी है ॥ ५ ॥

खड़ी प्रतिमा के अंग विभाग—

भाल नासा वयण गीव हियय नाहि गुज्झ जघाइ ।
जाणु अ पिंडि अ चरणा [1]इक्कारस ठाण नायव्वा ॥ ६ ॥

ललाट, नासिका, मुख, गर्दन, हृदय, नाभि, गुह्य, जंघा, घुटना, पिंडी और चरण ये ग्यारह स्थान अंगविभाग के हैं ॥ ६ ॥

अंग विभाग का मान—

चउ पंच वेय रामा रवि दिणयर सूर तह य जिण वेया ।
जिण वेय [2]भायसखा कमेण इय उड्ढरूवेण ॥ ७ ॥

ऊपर जो ग्यारह अंग विभाग बतलाये हैं, इनके क्रमशः चार पांच, चार, तीन, बारह, बारह, बारह, चौवीस, चार, चौवीस और चार अंगुल का मान खड़ी प्रतिमा के है। अर्थात् ललाट चार अंगुल नासिका पांच अंगुल, मुख चार अंगुल, गरदन तीन अंगुल, गले से हृदय तक बारह अंगुल, हृदय से नाभि तक बारह अंगुल, नाभि से गुह्य भाग तक बारह अंगुल, गुह्य भाग से जानु (घुटना) तक चौवीस अंगुल, घुटना चार अंगुल, घुटने से पैर की गांठ तक चौवीस अंगुल, इससे पैर के तल तक चार अंगुल, एवं कुल एक सौ आठ अंगुल प्रमाण खड़ी प्रतिमा का मान है ॥ ७ ॥

पद्मासन से बैठी मूर्ति के अंग विभाग—

भाल नासा वयण गीव हियय नाहि गुज्झ जाणू अ ।
आसीण-बिंबमान पुव्वविही अंकसखाई ॥ ८ ॥

कपाल, नासिका, मुख, गर्दन, हृदय, नाभि, गुह्य और जानु ये आठ अंग बैठी प्रतिमा के हैं, इनका मान पहले कहा है उसी तरह समझना। अर्थात् कपाल

---

[1] पाठान्तर— भाल नासा वयण थणसुत्त नाहि गुज्झ ऊरू अ ।
जाणु अ जंघा चरणा इय दह ठाणाणि जाणिज्जा ॥

[2] पाठान्तर—"चउ पंच वेय तेरस चउदस दिणनाह तह य जिण वेया ।
जिण वेया भायसखा कमेण इय उड्ढरूवेण ॥

चार, नासिका पांच, मुख चार, गला तीन, गले से हृदय तक बारह, हृदय से नाभि तक बारह, नाभि से गुह्य (इन्द्रिय) तक बारह और जानु (घुटना) भाग चार अंगुल, इसी प्रकार कुल छप्पन अंगुल बैठी प्रतिमा[1] का मान है ॥ ८ ॥

दिगम्बराचार्य श्री वसुनंदि कृत प्रतिष्ठासार में दिगम्बर जिनमूर्ति का स्वरूप इस प्रकार है—

"तालमात्रं मुखं तत्र ग्रीवाधश्चतुरङ्गुलम् ।
कण्ठतो हृदयं यावद् अन्तरं द्वादशाङ्गुलम् ॥
तालमात्रं ततो नाभि-र्नाभिर्मेढ्रान्तरं मुखम् ।
मेढ्रजान्वन्तरं तज्ज्ञैर्हस्तमात्रं प्रकीर्तितम् ॥
वेदाङ्गुलं भवेज्जानु जानुगुल्फान्तरं करः ।
वेदाङ्गुलं समाख्यातं गुल्फपादतलान्तरम् ॥"

मुख की ऊंचाई बारह अंगुल, गला की उंचाई चार अंगुल, गले से हृदय तक का अन्तर बारह अंगुल, हृदय से, नाभी तक का अन्तर बारह अंगुल, नाभि से लिंग तक अन्तर बारह अंगुल, लिंग से जानु तक अन्तर चौवीस अंगुल, जानु (घुटना) की ऊंचाई चार अंगुल, जानु से गुल्फ (पैर की गांठ) तक अंतर चौवीस अंगुल और गुल्फ से पैर के तल तक अंतर चार अंगुल, इस प्रकार कायोत्सर्ग खड़ी प्रतिमा की ऊंचाई कुल एक सौ आठ[2] (१०८) अंगुल है ।

"द्वादशाङ्गुलविस्तीर्ण-मायतं द्वादशाङ्गुलम् ।
मुखं कुर्यात् स्वकेशान्तं त्रिधा तच्च यथाक्रमम् ॥
वेदाङ्गुलमायतं कुर्याद् ललाटं नासिकां मुखम् ।"

---

१ भाषा जगन्नाथ अम्बाराम सोमपुरा ने अपना बृहद् शिल्पशास्त्र भाग १ में जो जिन प्रतिमा का स्वरूप बिना विचार पूर्वक लिखा है वह बिल्कुल प्रामाणिक नहीं है । ऐसे अन्य मूर्तियों के लिये भी जानना।

२ जिन संहिता और रूपमंडन में जिन प्रतिमा का मान दश ताल अर्थात् एक सौ बीस (१२०) अंगुल का भी माना है ।

समचतुरस्र पद्मासनस्थ श्वेताम्बर जिनमूर्ति का मान

चार, नासिका पांच, मुख चार, गला तीन, गले से हृदय तक बारह, हृदय से नाभि तक बारह, नाभि से गुह्य (इन्द्रिय) तक बारह और जानु (घुटना) भाग चार अंगुल, इसी प्रकार कुल छप्पन अंगुल बैठी प्रतिमा[1] का मान है ॥ ८ ॥

दिगम्बराचार्य श्री वसुनंदि कृत प्रतिष्ठासार में दिगम्बर जिनमूर्ति का स्वरूप इस प्रकार है—

"तालमात्रं मुखं तत्र ग्रीवाधश्चतुरङ्गुलम् ।
कण्ठतो हृदयं यावद् अन्तरं द्वादशाङ्गुलम् ॥
तालमात्रं ततो नाभि नाभिर्मेढ्रान्तरं मुखम् ।
मेढ्रजान्वन्तरं तज्ज्ञै र्हस्तमात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥
वेदाङ्गुलं भवेज्जानु जानुगुल्फान्तरं करः ।
वेदाङ्गुलं समाख्यातं गुल्फपादतलान्तरम् ॥"

मुख की ऊंचाई बारह अंगुल, गला की ऊंचाई चार अंगुल, गले से हृदय तक का अन्तर बारह अंगुल, हृदय से, नाभी तक का अन्तर बारह अंगुल, नाभि से लिंग तक अन्तर बारह अंगुल, लिंग से जानु तक अन्तर चौबीस अंगुल, जानु (घुटना) की ऊंचाई चार अंगुल, जानु से गुल्फ (पैर की गांठ) तक अंतर चौबीस अंगुल और गुल्फ से पैर के तल तक अंतर चार अंगुल, इस प्रकार कायोत्सर्ग खड़ी प्रतिमा की ऊंचाई कुल एक सौ आठ[2] (१०८) अंगुल है ।

"द्वादशाङ्गुलविस्तीर्ण-मायतं द्वादशाङ्गुलम् ।
मुखं कुर्यात् स्वकेशान्तं त्रिधा तच्च यथाक्रमम् ॥
वेदाङ्गुलमायतं कुर्याद् ललाटं नासिकां मुखम् ।"

---

१ श्रीमान् आचार्य प्रभाशंकर सोमपुरा ने अपना बृहद् शिल्पशास्त्र भाग २ में जो जिन प्रतिमा का स्वरूप बिना विचार पूर्वक लिखा है वह बिलकुल अप्रामाणिक नहीं है । ऐसे अन्य मूर्तियों के लिये भी जानना ।

२ जिन संहिता और रूपमंडन में जिन प्रतिमा का मान दश ताल अर्थात् एक सौ बीस (१२०) अंगुल का भी माना है ।

बारह अंगुल विस्तार में और बारह अंगुल लंबाई में केशांत भाग तक मुख करना चाहिये। उसमें चार अंगुल लंबा ललाट, चार अंगुल लंबी नासिका और चार अंगुल मुख दाढी तक बनाना।

"केशस्थान जिनेन्द्रस्य प्रोक्तं पञ्चाङ्गुलायतम्।
उष्णीषं च ततो ज्ञेयं मङ्गुलद्वयमुन्नतम्॥"

जिनेश्वर का केश स्थान पांच अंगुल लंबा करना। उसमें उष्णीष (शिखा) दो अंगुल ऊंची और तीन अंगुल केश स्थान उन्नत बनाना चाहिये।

पद्मासन से बैठी प्रतिमा का स्वरूप—

"ऊर्ध्वस्थितस्य मानार्द्धं मुत्सेधं परिकल्पयेत्।
पर्यङ्कमपि तावत्तु तिर्यगायामसंस्थितम्॥"

कायोत्सर्ग खड़ी प्रतिमा के मान से पद्मासन से बैठी प्रतिमा का मान आधा अर्थात् चौवन (५४) अंगुल जानना। पद्मासन से बैठी प्रतिमा के दोनों घुटने तक सूत्र का मान, दाहिने घुटने से बाँये कंधे तक और बांये घुटने से दाहिने कंधे तक इन दोनों तिरछे सूत्रों का मान, तथा गद्दी के ऊपर से केशांत भाग तक लंबे सूत्र का मान, इन चारों सूत्रों का मान बराबर २ होना चाहिये।

मूर्त्ति के प्रत्येक अंग विभाग का मान—

मुहकमलु चउदसंगुलु कन्नंतरि वित्थरे दहग्गीवा।
छत्तीस-उरपएसो सोलहकडि सोलतणुपिंड॥ ९॥

दोनों कानों के अंतराल में मुख कमल का विस्तार चौदह अंगुल है। गले का विस्तार दस अंगुल, छाती प्रदेश छत्तीस अंगुल, कमर का विस्तार सोलह अंगुल और तनुपिंड (शरीर की मोटाई) सोलह अंगुल है॥ ९॥

कन्नु दह तिन्नि वित्थरि अड्ढाई हिट्ठि इक्कु आधारे।
केसंतवड्ढु समुसिरु सोय पुण नयणरेहसमं॥ १०॥

कान का उदय दश भाग और विस्तार तीन भाग, कान की लोलक अढाई भाग नीची और एक भाग कान का आधार है। केशान्त भाग तक मस्तक के बराबर अर्थात् नयन की रेखा के समानान्तर तक ऊंचा कान बनाना चाहिये॥ १०॥

नक्कसिहागब्भाओ एगंतरि चक्खु चउरदीहत्ते।
दिवड्ढुदइ इक्कु डोलइ दुभाइ भउ हड्डु छद्दीहे॥ ११॥

नासिका की शिखा के मध्य गर्भसूत्र से एक २ भाग दूर आँख रखना चाहिये। आँख चार भाग लंबी और डेढ़ भाग चौड़ी, आँख की काली कीकी एक भाग, दो भाग की भृकुटी और आँख के नीचे का (कपोल) भाग छः अंगुल लंबा रखना चाहिये॥ ११॥

नक्कु तिवित्थरि दुदए पिंडे नासग्गि इक्कु अद्धु सिहा।
पण भाय अहर दीहे वित्थरि एगंगुल जाण॥ १२॥

नासिका विस्तार में तीन भाग, दो भाग उदय में, नासिका का अग्र भाग एक भाग मोटा और अर्द्ध भाग की नाक की शिखा रखना चाहिये। होंठ की लंबाई पांच भाग और विस्तार एक अंगुल का मानना॥ १२॥

पण-उदइ चउ-वित्थरि सिरिवच्छ थणसुत्तमज्झम्मि।
दिवड्ढंगुलु थणवट्ट वित्थर उंडत्ति नाहेग॥ १३॥

स्तनसूत्र के मध्य भाग में छाती में पांच भाग के उदयवाला और चार भाग के विस्तारवाला श्रीवत्स करना। डेढ़ अंगुल के विस्तार वाला गोल स्तन करना और एक भाग विस्तार में गहरी नाभि करना चाहिये॥ १३॥

सिरिवच्छ सिहिणंतरम्मि तह भुमलु छ पण अट्ठ कमे।
मुट्ठि-चउ-रवि-अंगुलेया कुहिणी मणिबंधु जव जाणु पय॥ १४॥

श्रीवत्स और स्तन का अन्तर छः भाग, स्तन और काँख का अन्तर पांच भाग, हृदय (स्कंध) आठ भाग, कुहनी चार अंगुल, मणिबंध चार अंगुल, जंघा बारह भाग, जानु आठ भाग और पैर की चौड़ाई चार भाग इस प्रकार सब का विस्तार करना॥ १४॥

थणसुत्तअहोभाए भुयसाहमज्झम्मि उयरि छदि रेह।
नाहीइ तिन्नि कट्ठि कराओ कमसुत्ताओ॥ १५॥

स्तनसूत्र से नीचे के भाग में भुजा का प्रमाण बारह भाग और स्तनसूत्र से ऊपर स्कंध छः भाग समझना। नाभि स्कंध और केशांत भाग गोल बनाना चाहिये ॥ १५ ॥

कर-उयर अंतरेग चउ वित्थरि नददीहि उच्छंग।
जलवहु दुदय तिवित्थरि कुहुणी कुच्छितरे तिन्नि ॥ १६ ॥

हाथ और पेट का अंतर एक अंगुल, चार अंगुल के विस्तारवाला और नव अंगुल लंबा ऐसा उत्संग (गोद) बनाना। पलांठी से जल निकलने के मार्ग का उदय दो अंगुल और विस्तार तीन अंगुल करना चाहिये। कुहनी और कुची का अंतर तीन अंगुल रखना चाहिये ॥ १६ ॥

बंभसुत्ताउ पिंडिय छ गीव दह-कन्नु दु-सिहण दु-भाल।
दुचिबुक सत्त भुजोवरि भुयसंधी अट्ठपयसारा ॥ १७ ॥

ब्रह्मसूत्र (मध्यगर्भसूत्र) से पिंडी तक अवयवों के अर्द्ध भाग—छः भाग गला, दश भाग कान, दो भाग शिखा, दो भाग कपाल, दो भाग दाढ़ी, सात भाग भुजा के उपर की भुजसंधि और आठ भाग पैर जानना ॥ १७ ॥

जाणुअमुहसुत्ताओ चउदस सोलस अठारपइसार।
समसुत्त-जाव-नाही पयकंकण-जाव छब्भाय ॥ १८ ॥

दोनों घुटनों के बीच में एक तिरछा सूत्र रखना और नाभि से पैर के कंकण के छः भाग तक एक सीधा समसूत्र तिरछे सूत्र तक रखना। इस समसूत्र का प्रमाण पैरों के कंकण तक चौदह, पिंडी तक सोलह और जानु तक अठारह भाग होता है। अर्थात् दोनों परस्पर घुटने तक एक तिरछा सूत्र रखा जाय तो यह नाभि से सीधे अठारह भाग दूर रहता है ॥ १८ ॥

पइसारगब्भरेहा पनरसभाएहिं चरणअंगुट्ठ।
दीहंगुलीय सोलस चउदसि भाए कणिट्ठिया ॥ १९ ॥

चरण के मध्य भाग की रेखा पन्द्रह भाग अर्थात् एड़ी से मध्य अंगुली तक पन्द्रह अंगुल लंबा, अंगूठे तक सोलह अंगुल और कनिष्ठ (छोटी) अंगुली तक चौदह अंगुल इस प्रकार चरण बनाना चाहिये ॥ १६ ॥

करयलगब्भाउ कमे दीहंगुलि नदे अट्ठ पक्खिसमिया ।
छच्च कणिट्ठिय भणिया गीवुदए तिन्नि नायव्वा ॥ २० ॥

करतल (हथेली) के मध्य भाग से मध्य की लंबी अंगुली तक नव अंगुल, मध्य अंगुली के दोनों तरफ की तर्जनी और अनामिका अंगुली तक आठ २ अंगुल और कनिष्ठ अंगुली तक छः अंगुल, यह हथेली का प्रमाण जानना । गले का उदय तीन भाग जानना ॥ २० ॥

मज्झिम महत्थगुलिया पणदीहे पक्खिमी अ चउ चउरो ।
लहु-अगुलि-भायतिय नह-इक्कि ति-अगुट्ठ ॥ २१ ॥

मध्य की बड़ी अंगुली पांच भाग लंबी, बगल की दोनों (तर्जनी और अनामिका) अंगुली चार २ भाग लंबी, छोटी अंगुली तीन भाग लंबी और अंगूठा तीन भाग लंबा करना चाहिये। सब अंगुलियों के नख एक एक भाग करना चाहिये ॥ २१ ॥

अगुट्ठसहियकरयलवट्ट सत्तगुलस्स वित्थारो ।
चरण सोलसदीहे तयद्धि वित्थिन्न चउरुदए ॥ २२ ॥

अंगूठे के साथ करतलपट का विस्तार सात अंगुल करना । चरण सोलह अंगुल लंबा, आठ अंगुल चौड़ा और चार अंगुल ऊंचा (एड़ी से पैर की गांठ तक) करना ॥ २२ ॥

गीव तह कन्न अतारे सणे य वित्थारि दिवड्ढ उदइ तिग ।
अवलिय अट्ठ वित्थरि गद्दिय मुह जाव दीहेण ॥ २३ ॥

गला तथा कान के अंतराल भाग का विस्तार डेढ़ अंगुल और उदय तीन अंगुल करना। अंचलिका (लंगोट) आठ भाग विस्तार में और लंबाई में गादी के मुख तक लंबा करना ॥ २३ ॥

केसतसिहा गद्दिय पचट्ठ कमेण अंगुल जाण।
पउमुड्ढरेहचक्क करचरण विहूसिय निच्चं ॥ २४ ॥

केशांत भाग से शिखा के उदय तक पांच भाग और गादी का उदय आठ भाग जानना। पद्म (कमल) ऊर्ध्व रेखा और चक्र इत्यादि शुभ चिन्हों से हाथ और पैर दोनों सुशोभित बनाना चाहिये ॥ २४ ॥

ब्रह्मसूत्र का स्वरूप—

नक्क सिरिवच्छ नाही समगब्भे बंभसुत्तु जाणेह।
तत्तो अ सयलमाणं परिगरबिंबस्स नायव्वं ॥ २५ ॥

जो सूत्र प्रतिमा के मध्य-गर्भ भाग से लिया जाय, वह शिखा, नाक, श्रीवत्स और नाभि के बराबर मध्य में आता है, इसको ब्रह्मसूत्र कहते हैं। अब इसके बाद परिकरवाले बिंब का समस्त प्रमाण जानना ॥ २५ ॥

परिकर का स्वरूप—

सिंहासणु बिंबाओ दिवड्ढओ दीहि वित्थरे अद्धो।
पिंडेण पाउ घडिओ रूवग नव अहव सत्त जुओ ॥ २६ ॥

सिंहासन लंबाई में मूर्ति से डेढ़ा, विस्तार में आधा और मोटाई में पाव भाग होना चाहिये। तथा गज सिंह आदि रूपक नव या सात युक्त बनाना चाहिये ॥ २६ ॥

उभयदिसि जक्खजक्खिणि केसरि गय चमर मज्झि-चक्कधरी।
चउदस बारस दस तिय छ भाय कमि इअ भवे दीहं ॥ २७ ॥

सिंहासन में दो तरफ यक्ष और यक्षिणी अर्थात् प्रतिमा के दाहिनी ओर यक्ष और बाँयी ओर यक्षिणी, दो सिंह, दो हाथी, दो चामर धारण करनेवाले और

मध्य में चक्र को धारण करनेवाली चक्रेश्वरी देवी बनाना। इनमें इस प्रकार है—चौदह २ भाग के प्रत्येक यक्ष और यक्षिणी, बारह सिंह, दश २ भाग के दो हाथी, तीन २ भाग के दो चँवर करने भाग की मध्य में चक्रेश्वरी देवी, एवं कुल ८४ भाग लम्बा सिंहासन

> चक्कधरी गरुडका तस्साहे धम्मचक्क-उभयदिसं।
> हरिणजुअ रमणीय गद्दियमज्झम्मि जिणचिन्ह।

सिंहासन के मध्य में जो चक्रेश्वरी देवी है वह गरुड की सवारी है, उनकी चार भुजाओं में ऊपर की दोनों भुजाओं में चक्र, तथा नीचे भुजा में वरदान और बाँयी भुजा में बिजोरा रखना चाहिये। इस चक्रे नीचे एक धर्मचक्र बनाना, इस धर्मचक्र के दोनों तरफ सुन्दर एक २ और गादी के मध्य भाग में जिनेश्वर भगवान् का चिन्ह करना चाहिये

> चउ कणइ दुन्नि छज्जइ बारस हत्थिहिं दुन्नि थह
> अड अक्खरवट्टीए एय सीहासणस्सुदय ॥ २९ ॥

चार भाग का कणपीठ (कणी), दो भाग का छज्जा, बारह आदि रूपक, दो भाग की कणी और आठ भाग अचर पट्टी, एवं कुल २ सन का उदय जानना ॥ २९ ॥

परिकर के पखवाड़े (बगल के भाग) का स्वरूप—

> गद्दियसम-वसु भाया तत्तो इगतीस-चमरधारी य।
> तोरणसिर दुवालस इय उदय पक्खवायाण॥ ३

प्रतिमा की गद्दी के बराबर आठ भाग चँवरधारी या काउ गादी करना, इसके ऊपर इकतीस भाग के चामर धारण करनेवाले देव ध्यान में खड़ी प्रतिमा करना और इसके ऊपर तोरण के सिर तक बारह एवं कुल इक्कावन भाग पखवाड़े का उदयमान समझना ॥ ३० ॥

इअ वित्थरि वावीस सोलसपिंडेण पखवाय ॥ ३१ ॥

सोलह भाग थमली समेत रूप का अर्थात् दो २ भाग की दो थमली और बारह भाग का रूप, तथा छह भाग का वरालिका (वरालक के मुख आदि की आकृति), एव कुल पखवाड़े का विस्तार बाईस भाग और मोटाई सोलह भाग है। यह पखवाड़े का मान हुआ ॥ ३१ ॥

परिकर के उपर के डउला (छत्रवटा) का स्वरूप—

छत्तद्ध दसभाय पकयनालेग तेरमालधरा।
दो भाए थभुलिए तहट्ट वंसधर-वीणधरा ॥ ३२ ॥
तिलयमज्झम्मि घंटा दुभाय थभुलिय छच्चि मगरमुहा।
इअ उभयदिसे चुलसी-दीह डउलस्स जाणेह ॥ ३३ ॥

आधे छत्र का भाग दश, कमलनाल एक भाग, माला धारण करनेवाले भाग तेरह, थमली दो भाग, वंसी और वीणा को धारण करनेवाले या बैठी प्रतिमा का भाग आठ, तिलक के मध्य में घंटा (घूमटी), दो भाग थमली और छ भाग मगरमुख एव एक तरफ के ४२ भाग और दूसरी तरफ के ४२ भाग, ये दोनों मिलकर कुल चौरासी भाग डउला का विस्तार जानना ॥ ३२।३३ ॥

चउवीसि भाइ छत्तो बारस तस्सुदइ अट्ठि सग्खधरो।
छहि वेणुपत्तवल्ली एव डउलुदये पन्नास ॥ ३४ ॥

चौवीस भाग का छत्र, इसके उपर छत्रत्रय का उदय बारह भाग इसके ऊपर आठ भाग का शंख धारण करनेवाला और इसके उपर छ भाग का वंशपत्र और लता, एव कुल पचास भाग डउला का उदय जानना ॥ ३४ ॥

छत्तत्तयवित्थार वीसंगुल निग्गमेण दह भाय।
भामंडलवित्थार बावीस अट्ठ पइसार ॥ ३५ ॥

प्रतिमा के मस्तक पर के छत्रत्रय का विस्तार बीस अगुल और निर्गम दश भाग करना। भामडल का विस्तार बाईस भाग और मोटाई आठ भाग करना ॥ ३५ ॥

मालधर सोलसमे गइंद अट्ठारसम्मि ताणुवरे।
हरिणिंदा उभयदिसं तयो अ दुंदुहिअ सखीय ॥ ३६ ॥

दोनों तरफ माला धारण करनेवाले इन्द्र सोलह २ भाग के और उनके ऊपर दोनों तरफ अठारह २ भाग के एक २ हाथी, उन हाथियों के ऊपर बैठे हुए हरिण गमेषीदेव बनाना, उनके सामने दुदुभी बजानेवाले और मध्य में छत्र के ऊपर शंख बजानेवाला बनाना चाहिये ॥ ३६ ॥

बिंबद्धि डउलपिंड छत्तसमेय हवइ नायव्व।
थणसुतसमादिट्ठी चामरधारीण कायव्वा ॥ ३७ ॥

छत्रत्रय समेत डउला की मोटाई प्रतिमा से आधी जानना। पखवाड़े में चामर धारण करनेवाले की या काउस्सग ध्यानस्थ प्रतिमा की दृष्टि मूलनायक प्रतिमा के बराबर स्तनसूत्र में करना ॥ ३७ ॥

जइ हुंति पंच तित्था इमेहिं भाएहिं तेवि पुण कुज्जा।
उस्सग्गियस्स जुअलं बिंबजुगं मूलबिंबेग ॥ ३८ ॥

पखवाड़े में जहां दो चामर धारण करनेवाले हैं, उस ही स्थान पर दो काउस्सग ध्यानस्थ प्रतिमा तथा डउला में जहां वंश और वीणा धारण करनेवाले हैं, वहीं पर पद्मासनस्थ बैठी हुई दो प्रतिमा और एक मूलनायक, इसी प्रकार पचतीर्थी यदि परिकर में करना हो तो पूर्वोक्त जो भाग चामर वंश और वीणा धारण करने वाले के कहे हैं, उसी भाग प्रमाण से पचतीर्थी भी करना चाहिये ॥ ३८ ॥

प्रतिमा के शुभाशुभ लक्षण—

वरिसमयाओ उड्ढं जं बिंबं उत्तमेहिं संठविय।
विअलंगु वि पूइज्जइ तं बिंबं निष्फलं न जओ ॥ ३९ ॥

पार्श्वनाथ भगवान की खड़ी मूर्ति आबू

अर्द्ध पद्मासन वाली प्राचीन पाषाण

कायोत्सर्गस्थ दिगम्बर जिन मूर्ति

मैंगा पुरातत्त्वालय में चतुर्मुख जिन मूर्ति
लिखा है परन्तु आठ मुख मालूम
होते हैं
(लखनऊ म्युजियम)

जो प्रतिमा एक सौ वर्ष के पहले उत्तम पुरुषों ने स्थापित की हुई हो, वह यदि विकलांग (बेडोल) हो या खंडित हो तो भी उस प्रतिमा को पूजना चाहिये। पूजन का फल निष्फल नहीं जाता ॥ ३६ ॥

मुह-नक्क-नयण-नाही-कडिभंगे मूलनायगं चयह ।
आहरण-वत्थ परिगर चिराहायुहभंगि पूइज्जा ॥ ४० ॥

मुख, नाक, नयन, नाभि और कमर इन अंगों में से कोई अंग खंडित हो जाय तो मूलनायक रूप में स्थापित की हुई प्रतिमा का त्याग करना चाहिये। किन्तु आभरण, वस्त्र, परिकर, चिन्ह, और आयुध इनमें से किसी का भंग हो जाय तो पूजन कर सकते हैं ॥ ४० ॥

धाउलेवाइबिंबं विअलंग पुणो वि कीरए सज्ज ।
कट्ठरयणसेलमयं न पुणो सज्ज च कईयावि ॥ ४१ ॥

धातु (सोना, चांदी, पित्तल आदि) और लेप (चूना, ईंट, माटी आदि) की प्रतिमा यदि अंग हीन हो जाय तो उसी को दूसरी बार बना सकते हैं। किन्तु काष्ठ, रत्न और पत्थर की प्रतिमा यदि खंडित हो जाय तो उसी को कभी भी दूसरी बार नहीं बनानी चाहिये ॥ ४१ ॥

आचारदिनकर में कहा है कि—

"धातुलेप्यमयं सर्वं व्यङ्गं संस्कारमर्हति ।
काष्ठपाषाणनिष्पन्नं संस्कारार्हं पुनर्नहि ॥
प्रतिष्ठिते पुनर्बिम्बे संस्कारः स्यान्न कर्हिचित् ।
संस्कारे च कृते कार्या प्रतिष्ठा तादृशी पुनः ॥
संस्कृते तुलिते चैव दुष्टस्पृष्टे परीक्षिते ।
हृते बिम्बे च लिङ्गे च प्रतिष्ठा पुनरेव हि ॥"

धातु की प्रतिमा और ईंट, चूना, मट्टी आदि की लेपमय प्रतिमा यदि विकलांग हो जाय अर्थात् खंडित हो जाय तो वह फिर संस्कार के योग्य है। अर्थात् उस ही का

कायोत्सर्गस्थ दिगम्बर जिन मूर्ति

गंगा पुरातत्त्वांक में चतुर्मुख जिन मूर्ति लिखा है परन्तु आठ मुख मालूम होते हैं
(लखनऊ म्यूजियम)

जो प्रतिमा एक सौ वर्ष के पहले उत्तम पुरुषों ने स्थापित की हुई हो, वह यदि विकलांग (बेडोल) हो या खंडित हो तो भी उस प्रतिमा को पूजना चाहिये। पूजन का फल निष्फल नहीं जाता ॥ ३९ ॥

मुह-नक्क-नयण-नाही-कडिभंगे मूलनायगं चयह।
आहरण-वत्थ-परिगर चिण्हायुहभंगि पूइज्जा ॥ ४० ॥

मुख, नाक, नयन, नाभि और कमर इन अंगों में से कोई अंग खंडित हो जाय तो मूलनायक रूप में स्थापित की हुई प्रतिमा का त्याग करना चाहिये। किन्तु आभरण, वस्त्र, परिकर, चिन्ह, और आयुध इनमें से किसी का भंग हो जाय तो पूजन कर सकते हैं ॥ ४० ॥

धाउलेवाइबिंबं विअलंग पुण वि कीरए सज्जं।
कट्ठरयणसेलमयं न पुणो सज्जं च कईयावि ॥ ४१ ॥

धातु (सोना, चांदी, पितल आदि) और लेप (चूना, ईंट, माटी आदि) की प्रतिमा यदि अंग हीन हो जाय तो उसी को दूसरी बार बना सकते हैं। किन्तु काष्ठ, रत्न और पत्थर की प्रतिमा यदि खंडित हो जाय तो उसी को कभी भी दूसरी बार नहीं बनानी चाहिये ॥ ४१ ॥

आचारदिनकर में कहा है कि—

"धातुलेप्यमयं सर्वं व्यङ्गं संस्कारमर्हति।
काष्ठपाषाणनिष्पन्नं संस्कारार्हं पुनर्नहि ॥
प्रतिष्ठिते पुनर्बिम्बे संस्कारः स्यान्न कर्हिचित्।
संस्कारे च कृते कार्या प्रतिष्ठा तादृशी पुनः ॥
संस्कृते तुलिते चैव दुष्टस्पृष्टे परीक्षिते।
हृते बिम्बे च लिङ्गे च प्रतिष्ठा पुनरेव हि ॥"

धातु की प्रतिमा और ईंट, चूना, मट्टी आदि की लेपमय प्रतिमा यदि विकलांग हो जाय अर्थात् खंडित हो जाय तो वह फिर संस्कार के योग्य है। अर्थात् उस को

फिर बनवा सकते हैं। परन्तु लकड़ी या पत्थर की प्रतिमा खंडित हो जाय तो फिर संस्कार के योग्य नहीं है। एक प्रतिष्ठा होने बाद कोई भी प्रतिमा का कभी संस्कार नहीं होता है, यदि कारणवश कुछ संस्कार करना पड़ा तो फिर पूर्ववत् ही प्रतिष्ठा करानी चाहिये। कहा है कि—प्रतिष्ठा होने बाद जिस मूर्ति का संस्कार करना पड़े, तोलना पड़े, दुष्ट मनुष्य का स्पर्श हो जाय, परीक्षा करनी पड़े या चोर चोरी कर ले जाय तो फिर वही मूर्ति की पूर्ववत् ही प्रतिष्ठा करानी चाहिये।

घरमंदिर में पूजने लायक मूर्ति का स्वरूप—

पाहाणलेवकट्ठा दंतमया चित्तलिहिय जा पडिमा।
अप्परिगरमाणाहिय न सुंदरा पूयमाणगिहे॥ ४२॥

पाषाण, लेप, काष्ठ, दांत और चित्राम की जो प्रतिमा है, वह यदि परिकर से रहित हो और ग्यारह अंगुल के मान से अधिक हो तो पूजन करनेवाले के घर में अच्छा नहीं॥ ४२॥

परिकरवाली प्रतिमा अरिहंत की और बिना परिकर की प्रतिमा सिद्ध की है। सिद्ध की प्रतिमा घरमंदिर में धातु के सिवाय पत्थर, लेप, लकड़ी, दांत या चित्राम की बनी हुई हो तो नहीं रखना चाहिये। अरिहंत की मूर्ति के लिये भी श्रीसकलचन्द्रोपाध्यायकृत प्रतिष्ठाकल्प में कहा है कि—

"मल्ली नेमी वीरो गिहभवणे सावए ण पूइज्जइ।
इगवीसं तित्थयरा संतिगरा पूइया वंदे॥"

मल्लिनाथ, नेमनाथ और महावीर स्वामी ये तीन तीर्थंकरों की प्रतिमा श्रावक को घरमंदिर में न पूजना चाहिये। किंतु इक्कीस तीर्थंकरों की प्रतिमा घरमंदिर में शांतिकारक पूजनीय और वंदनीय हैं।

कहा है कि—

"नेमिनाथो वीरमल्लीनाथौ वैराग्यकारकाः।
त्रयो वै भवने स्थाप्या न गृहे शुभदायकाः॥"

नेमनाथ स्वामी, महावीर स्वामी और मल्लीनाथ स्वामी ये तीनों तीर्थंकर वैराग्यकारक हैं, इसलिये इन तीनों को प्रासाद (मंदिर) में स्थापित करना शुभकारक हैं, किन्तु घरमंदिर में स्थापित करना शुभकारक नहीं है।

इक्कंगुलाइ पडिमा इक्कारस जाव गेहि पूइज्जा।
उड्ढ पासाइ पुणो इअ भणियं पुव्वसूरीहिं ॥ ४३ ॥

घरमंदिर में एक अंगुल से ग्यारह अंगुल तक की प्रतिमा पूजना चाहिए, इससे अर्थात् ग्यारह अंगुल से अधिक बड़ी प्रतिमा प्रासाद में (मंदिर में) पूजना चाहिए ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है ॥ ४३ ॥

नह अंगुलीअ-बाहा-नासा-पय भंगिणु कमेण फलं।
सत्तुभय देसभंग बंधण कुलनास-दव्वक्खय ॥ ४४ ॥

प्रतिमा के नख, अंगुली, बाहु, नासिका और चरण इनमें से कोई अंग खंडित हो जाय तो शत्रु का भय, देश का विनाश, बंधनकारक, कुल का नाश और द्रव्य का क्षय, ये क्रमशः फल होते हैं ॥ ४४ ॥

पयपीढचिण्हपरिगर भंगे जनजाणभिच्चहाणिकमे।
छत्तसिरिवच्छसवणे लच्छी सुह बंधवाण खय ॥ ४५ ॥

पादपीठ चिन्ह और परिकर इनमें से किसी का भंग हो जाय तो क्रमशः स्वजन, वाहन और सेवक की हानि हो। छत्र, श्रीवत्स और कान इनमें से किसी का खंडन हो जाय तो लक्ष्मी, सुख और बंधन का क्षय हो ॥ ४५ ॥

बहुदुक्ख वंकनासा हस्संगा खयकरी य नायव्वा।
नयणनासा कुनयणा अप्पमुहा भोगहाणिकरा ॥ ४६ ॥

यदि प्रतिमा वक्र (टेढी) नाकवाली हो तो बहुत दुःखकारक है। ह्रस्व (छोटे) अवयववाली हो तो क्षय करनेवाली जानना। खराब नेत्रवाली हो तो नेत्र का विनाशकारक जानना और छोटे मुखवाली हो तो भोग की हानिकारक जानना ॥ ४६ ॥

कडिहीणायरियहया सुयनधन हणइ हीणजघा य ।
हीणासण रिद्धिहया धणक्खया हीणकरचरणा ॥ ४७ ॥

प्रतिमा यदि कटि हीन हो तो आचार्य का नाशकारक है। हीन जघावाली हो तो पुत्र और मित्र का क्षय करे। हीन आसनवाली हो तो रिद्धि का विनाशकारक है। हाथ और चरण से हीन हो तो धन का क्षय करनेवाली जानना ॥ ४७ ॥

उत्ताणा अत्थहरा वक्कगीवा सदेसभगकरा ।
अहोमुहा य सचिंता विदेसगा हवइ नीचुच्चा ॥ ४८ ॥

प्रतिमा यदि ऊर्ध्व मुखवाली हो तो धन का नाशकारक है, टेढी गरदनवाली हो तो स्वदेश का विनाश करनेवाली है। अधोमुखवाली हो तो चिन्ता उत्पन्न करनेवाली और ऊंच नीच मुखवाली हो तो विदेशगमन करानेवाली जानना ॥ ४८ ॥

विसमासण-वाहिकरा रोरकरण्णायदव्वनिप्पन्ना ।
हीणाहियंगपडिमा सपक्खपरपक्खकट्ठकरा ॥ ४९ ॥

प्रतिमा यदि विषम आसनवाली हो तो व्याधि करनेवाली है। अन्याय से पैदा किये हुए धन से बनवाई गई हो तो वह प्रतिमा दुष्काल करनेवाली जानना। न्यूनाधिक अंगवाली हो तो स्वपक्ष को और परपक्ष को कष्ट देनेवाली है ॥ ४९ ॥

पडिमा रउद्द जा सा करावय हंति सिप्पि अहियंगा ।
दुब्बलदव्वविणासा किसोअरा कुणइ दुब्भिक्खं ॥ ५० ॥

प्रतिमा यदि रौद्र (भयानक) हो तो करानेवाले का और अधिक अंगवाली हो तो शिल्पी का विनाश करे। दुर्बल अंगवाली हो तो द्रव्य का विनाश करे और पतली कमरवाली हो तो दुर्भिक्ष करे ॥ ५० ॥

उड्ढमुही धणनासा अप्पूया तिरिअदिट्ठि विन्नेया ।
अइघट्टदिट्ठि असुहा हवइ अहोदिट्ठि विग्घकरा ॥ ५१ ॥

प्रतिमा यदि ऊर्ध्व मुखवाली हो तो धन का नाश करनेवाली है। तिरछी दृष्टिवाली हो तो अपूजनीय रहे। अति गाढ दृष्टिवाली हो तो अशुभ करने वाली है और अधोदृष्टि हो तो विघ्नकारक जानना ॥ ५१ ॥

चउभवसुराण आयुह हवंति केसंत उप्परे जइ ता।
करणकरावणथप्पणहाराण प्पाणदेसहया ॥ ५२ ॥

चार निकाय के (भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक ये चार योनि में उत्पन्न होने वाले) देवों की मूर्ति के शस्त्र यदि केश के ऊपर तक चले गये हों तो ऐसी मूर्ति करने वाले, कराने वाले और स्थापन करने वाले के प्राण का और देश का विनाशकारक होती है ॥ ५२ ॥

यह सामान्यरूप से देवों के शस्त्रों के विषय में कहा है, किन्तु यह नियम सब देवों के लिये हो ऐसा मालूम नहीं पड़ता, कारण कि भैरव, भवानी, दुर्गा, काली आदि देवों के शस्त्र माथे के ऊपर तक चले गये हैं, ऐसा प्राचीन मूर्त्तियों में देखने में आता है, इसीसे मालूम होता है कि ऊपर का नियम शांत वदनवाले देवों के विषय में होगा। रौद्र प्रकृतिवाले देवों के हाथों में लोहू का खप्पर या मस्तक प्रायः करके रहते हैं, ये असुरों का संहार करते हुए देख पड़ते हैं, इसलिये शस्त्र उठायें रहने से माथे के ऊपर आ सकते हैं तो यह दोष नहीं माना होगा, परन्तु ये देव भी शान्तचित्त होकर बैठे हों ऐसी स्थिति की मूर्ति बनवाई जाय तो इनके शस्त्र उठायें न रहने से माथे ऊपर नहीं आ सकते, इसलिये उपरोक्त दोष बतलाया मालूम होता है।

चउवीसजिण नवग्गह जोइणि-चउसट्ठि वीर बावन्ना।
चउवीसजक्खजक्खिणि दह दिहवइ सोलस विज्जुसुरी ॥५३॥
नवनाह सिद्ध-चुलसी हरिहर बंभिंद दाणवाईणं।
वण्णंकनामआयुह वित्थरगंथाउ जाणिज्जा ॥ ५४ ॥

इति परमजैनश्रीचन्द्राङ्गज ठक्कुर 'फेरु' विरचिते वास्तुसारे बिम्बपरीक्षाप्रकरणं द्वितीयम्।

चौवीस जिन, नवग्रह, चौंसठ योगिनी, बावन वीर, चौवीस यक्ष, चौवीस यक्षिणी, दश दिक्पाल, सोलह विद्यादेवी, नव नाथ, चौरासी सिद्ध, विष्णु, महादेव, ब्रह्मा, इन्द्र और दानव इत्यादिक देवों के वर्ण, चिह्न, नाम और आयुध आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन अन्य * ग्रंथों से जानना चाहिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अथ प्रासाद-प्रकरणं तृतीयम् ।

भणिय गिहलक्खणाइं-बिंबपरिक्खाइ सयलगुणदोस ।
सपइ पासायविही सखेवेण णिसामेह ॥ १ ॥

समस्त गुण और दोष युक्त घर के लक्षण और प्रतिमा के लक्षण मैंने पहले कहा है । अब प्रासाद (मंदिर) बनाने की विधि को संक्षेप से कहता हूँ, इसको सुनो ॥ १ ॥

पढम गड्डाविवर[1] जलंत अह कक्करंत कुणह[2] ।
कुम्मनिवेस अट्ठ खुरसिला तयणु सुत्तविही ॥ २ ॥

प्रासाद करने की भूमि में इतना गहरा खात खोदना कि जल आजाय या कंकरवाली कठिन भूमि आ जाय । पीछे उस गहरे खोदे हुए खात में प्रथम मध्य में कूर्मशिला स्थापित करना, पीछे आठों दिशा में आठ खुरशिला स्थापित करना । इसके बाद सूत्रविधि करना चाहिये ॥ २ ॥

---

* उपरोक्त देवों में से २४ जिन ९ ग्रह, २४ यक्ष २४ यक्षिणी १६ विद्यादेवी और १० दिग्पाल का स्वरूप इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में दे दिया है, बाकी के देवों का स्वरूप मेरा अनुवादित 'रूपमंडन' ग्रन्थ जो अब छपनेवाला है उसमें देखो ।

१ 'गड्डावार' । २ 'भणिमो' 'मायव्व' इति पाठान्तरे ।

"अर्द्धाङ्गुलो भवेद् कूर्म एकहस्ते सुरालये ।
अर्द्धाङ्गुलात् ततो वृद्धिः कार्या तिथिकरावधिः ॥
एकत्रिंशत्करान्तं च तदर्द्धा वृद्धिरिष्यते ।
ततोऽर्द्धापि शतार्द्धान्तं कुर्यादङ्गुलमानतः ॥
चतुर्थांशाधिका ज्येष्ठा कनिष्ठा हीनयोगतः ।
सौवर्णरौप्यजा वापि स्थाप्या पञ्चामृतेन सा ॥"

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में आधा अंगुल की कूर्मशिला स्थापित करना। क्रमशः पन्द्रह हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद में प्रत्येक हाथ आध २ अंगुल की वृद्धि करना। अर्थात् दो हाथ के प्रासाद में एक अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद में डेढ अंगुल, इसी प्रकार प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढाते हुए पन्द्रह हाथ के प्रासाद में साढे सात अंगुल की कूर्म शिला स्थापित करें। आगे सोलह हाथ से इकतीस हाथ तक पाव २ अंगुल बढाना, अर्थात् सोलह हाथ के प्रासाद में पौने आठ अंगुल, सत्रह हाथ के प्रासाद में आठ अंगुल, अठारह हाथ के प्रासाद में सवा आठ अंगुल, इसी प्रकार प्रत्येक हाथ पाव २ अंगुल बढावें तो इकतीस हाथ के प्रासाद में साढे ग्यारह अंगुल की कूर्मशिला स्थापित करें। आगे बत्तीस हाथ से पचास हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ आध २ पाव अंगुल अर्थात् एक २ जव की कूर्मशिला बढाना। अर्थात् बत्तीस हाथ के प्रासाद में साढे ग्यारह अंगुल और एक जव, तेत्तीस हाथ के प्रासाद में पौने बारह अंगुल, इसी प्रकार पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में पौन चौदह अंगुल और एक जव की बडी कूर्मशिला स्थापित करें। जिस मान की कूर्मशिला आवे उसमें अपना चौथा भाग जितना अधिक बढावे तो ज्येष्ठमान की और अपना चौथा भाग जितना घटादे तो कनिष्ठ मान की कूर्मशिला होती है। यह कूर्मशिला सुवर्ण या चांदी की बनाकर पंचामृत से स्नान करवाकर स्थापित करना चाहिए।

कूर्मशिला और नन्दादिशिला का स्वरूप —
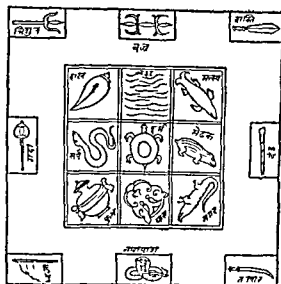
उस कूर्मशिला का स्वरूप विश्वकर्मा कृत क्षीरार्णव ग्रन्थ में बतलाया है कि कूर्मशिला के नव भाग करके प्रत्येक भाग के ऊपर पूर्वादि दिशा के सृष्टिक्रम से लहर, मच्छ, मेंडक, मगर, ग्रास, पूर्णकुंभ, सर्प और शंख ये आठ दिशाओं के भागों में और मध्य भाग में कछुआ बनाना चाहिये। कूर्मशिला को स्थापित करके पीछे उसके ऊपर एक नाली देव के सिंहासन तक रखी जाती है, उसको प्रासाद की नाभि कहते हैं।

प्रथम कूर्मशिला को मध्य में स्थापित करके पीछे ओसार में नंदा, भद्रा, जया, रिक्ता, अजिता, अपराजिता, शुक्ला, सौभागिनी और धरणी ये नव खुरशिला कूर्मशिला को प्रदक्षिणा करती हुई पूर्वादि सृष्टिक्रम से स्थापित करना चाहिये। नववीं धरणी[1] शिला को मध्य में कूर्मशिला के नीचे स्थापित करना चाहिये। इन नंदा आदि शिलाओं के ऊपर अनुक्रम से वज्र, शक्ति, दंड, तलवार, नागपाश, ध्वजा, गदा और त्रिशूल इस प्रकार दिग्पालों का शस्त्र बनाना चाहिये और धरणी शिला के उपर विष्णु का चक्र बनाना चाहिये।

शिला स्थापन करने का क्रम—

"ईशानादग्निकोणाद्या शिला स्थाप्या प्रदक्षिणा ।
मध्ये कूर्मशिला पश्चाद् गीतवादित्रमङ्गलैः ॥"

प्रथम मध्य में सोना या चांदी की कूर्मशिला स्थापित करके पीछे जो आठ खुर शिला हैं, ये ईशान पूर्व अग्नि आदि प्रदक्षिण क्रम से गीत वाजींत्र की मांगलिक ध्वनि पूर्वक स्थापित करें।

१ कितनेक आधुनिक शिल्पी लोग धरणी शिला को ही कूर्मशिला कहते हैं।

प्रासाद के पीठ का मान—

पासायाओ अद्ध तिहाय पाय च पीढ-उदओ अ।
तस्सद्धि निग्गमो होइ उववीढु जहिच्छमाण तु ॥ ३ ॥

प्रासाद से आधा, तीसरा या चौथा भाग पीठ का उदय होता है। उदय से आधा पीठ का निर्गम होता है। उपपीठ का प्रमाण अपनी इच्छानुसार करना चाहिये ॥ ३ ॥

पीठ के थरों का स्वरूप—

अड्डथर फुलिअओ जाडमुहो कणउ तह य कयवाली।
गय-अस्स-सीह-नर हंस-पचथरइ भवे पीठ ॥ ४ ॥ इति पीठ. ॥

अड्डथर, पुष्पकंठ, जाड्यमुख (जाड्यबो), कणी और केवाल ये पांच थर सामान्य पीठ में अवश्य होते हैं। इनके ऊपर गजथर, अश्वथर सिंहथर, नरथर, और हंसथर इन पांच थरों में से सब या न्यूनाधिक यथाशक्ति बनाना चाहिये।

सामान्य पीठ का स्वरूप—

१ 'कयवाली' इति पाठान्तरे।

पांच थर युक्त महापीठ का स्वरूप—
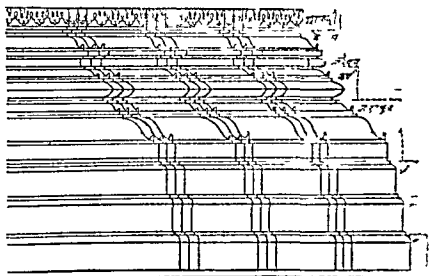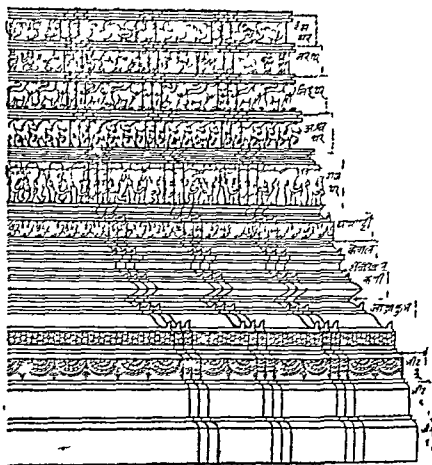
सिरीविजयो महापउमो नंदावत्तो अ लच्छितिलओ अ ।
नरवेअ कमलहंसो कुंजरपासाय सत्त जिणे ॥ ५ ॥

श्रीविजय, महापद्म, नंद्यावर्त्त, लक्ष्मीतिलक, नरवेद, कमलहंस और कुंजर ये सात प्रासाद जिन भगवान के लिये उत्तम हैं ॥ ५ ॥

बहुभेया पासाया अस्संखा विस्सकम्मणा भणिया ।
तत्तो अ केसराई पणवीस भणामि सुपसिद्धा ॥ ६ ॥

विश्वकर्मा ने अनेक प्रकार के प्रासाद के असंख्य भेद बतलाये हैं, किन्तु इनमें अति उत्तम केशरी आदि पचीस प्रकार के प्रासादों को मैं (फेरु) कहता हूँ ॥ ६ ॥

[1]*पच्चीस प्रकार के प्रासादों के नाम—*

केसरि अ सव्वभद्दो सुनंदणो नंदिसालु नंदीसो ।
तह मंदिरु सिरिवच्छो अमिअब्भवु हेमवंतो अ ॥ ७ ॥
हिमकूडु कईलासो पुहविजओ इंदनीलु महनीलो ।
भूधरु अ रयणकूडो वइडुज्जो पउमरागो अ ॥ ८ ॥
वज्जंगो मुउडुज्जलु अइरावउ रायहंसु गरुडो अ ।
वसहो य तह य मेरु एए पणवीस पासाया ॥ ९ ॥

केशरी, सर्वतोभद्र, सुनंदन, नंदिशाल, नंदीश, मंदिर, श्रीवत्स, अमृतोद्भव, हेमवत, हिमकूट, कैलाश, पृथ्वीजय, इंद्रनील, महानील, भूधर, रत्नकूट, वैडूर्य, पद्मराग, वज्रांक, मुकुटोज्ज्वल, ऐरावत, राजहंस, गरुड, वृषभ और मेरु ये पच्चीस प्रासाद के क्रमशः नाम हैं ॥ ७-८-९ ॥

पच्चीस प्रासादों के शिखरों की संख्या—

पण अंडयाइ-सिहरे कमेण चउ वुड्ढि जा हवइ मेरु ।
मेरुपासायअंडय-संखा इगहियसय जाण ॥ १० ॥

पहला केशरी प्रासाद के शिखर ऊपर पांच अंडक (शिखर के चारों तरफ जो छोटे छोटे शिखर के आकार के रखे जाते हैं उनको अंडक कहते हैं। इस प्रकार केशरी प्रासाद में एक शिखर और चार कोनों पर चार अंडक हैं।) पीछे क्रमशः चार २ अंडक मेरुप्रासाद तक बढ़ाते जावें तो पच्चीसवें मेरु प्रासाद के शिखर पर कुल एक सौ एक अंडक होते हैं ॥ १० ॥

---

१ इन पच्चीस प्रासादों का सचित्र सविस्तर वर्णन मेरा अनुवादित प्रासादमंडन [illegible] रहा है उसमें देखो।

जैसे केशरी प्रासाद में शिखर समेत पांच अंडक, सर्वतोभद्र में नव, सुनंदन प्रासाद में तेरह, नंदिशाल में सत्तरह, नंदीश में इकीस, मन्दिरप्रासाद में पचीस, श्रीवत्स में उनतीस, अमृतोद्भव में तेंतीस, हेमवत में सेंतीस, हेमकूट में इकतालीस, कैलाश में पेंतालीस, पृथ्वीजय में उनपचास, इन्द्रनील में त्रपन, महानील में सत्तावन, भूधर में इकसठ, रत्नकूड में पेंसठ, वैडूर्य में उनसत्तर (६९), पद्मराग में तिहत्तर, वज्रांक में सतहत्तर, मुकुटोज्वल में इक्यासी, ऐरावत में पचासी, राजहंस में नेयासी, गरुड में तिराणवे, वृषभ में सत्तानवे और मेरुप्रासाद के ऊपर एकसौ एक शिखर होवे हैं।

दीपार्णवादि शिल्प ग्रंथों में चतुर्विंशति जिन आदि के प्रासाद का स्वरूप तल आदि के भेदों से जो बतलाया है, उसका सारांश इस प्रकार है—

१ कमलभूषणप्रासाद (ऋषभजिनप्रासाद)—तल भाग ३२। कोण भाग ३, कोणी भाग १, प्रतिकर्ण भाग ३, कोणी भाग १, उपरथ भाग ३, नदी भाग १, भद्रार्द्ध भाग ४=१६+१६=३२।

२ कामदायक (अजितवल्लभ) प्रासाद—तलभाग १२। कोण २, प्रतिकर्ण २, भद्रार्द्ध २=६+६=१२।

३ शम्भववल्लभप्रासाद—तल भाग ९। कोण $१\frac{१}{२}$, कोणी $\frac{१}{४}$ प्रतिकर्ण १, नदी $\frac{१}{४}$, भद्रार्द्ध $१\frac{१}{२}=४\frac{१}{२}+४\frac{१}{२}=९$।

४ अमृतोद्भव (अभिनंदन) प्रासाद—तल भाग ९। कोण आदि का विभाग ऊपर मुजब।

५ क्षितिभूषण (सुमतिवल्लभ) प्रासाद—तल भाग १६ कोण २, प्रतिकर्ण २, उपरथ २, भद्रार्द्ध २=८+८=१६।

६ पद्मराग (पद्मप्रभ) प्रासाद—तल भाग १६। कोण आदि का विभाग ऊपर मुजब।

७ सुपार्श्ववल्लभप्रासाद—तल भाग १०। कोण २, प्रतिकर्ण $१\frac{१}{२}$, भद्रार्द्ध $१\frac{१}{२}=५+५=१०$।

८ चन्द्रप्रभप्रासाद—तल भाग ३२। कोण ५, कोणी १, प्रतिकर्ण ५, नदी १, भद्रार्द्ध ४=१६+१६=३२।

९ पुष्पदंत प्रासाद—तल भाग १६। कोण २, प्रतिकर्ण २, उपरथ २, भद्रार्द्ध २=८+८=१६।

१० शीतलजिन प्रासाद—तल भाग २४। कोण ४, प्रतिकर्ण ३, भद्रार्द्ध ५=१२+१२=२४।

११ श्रेयांसजिन प्रासाद—तल भाग २४। कोण आदि का विभाग ऊपर मुजब।

१२ वासुपूज्य प्रासाद—तल भाग २२। कोण ४, कोणी १, प्रतिकर्ण ३, नदी १, भद्रार्द्ध २=११+११=२२।

१३ विमलवल्लभ (विष्णुवल्लभ) प्रासाद—तल भाग २४। कोण ३, कोणी १, प्रतिकर्ण ३, नदी १, भद्रार्द्ध ४=१२+१२=२४।

१४ अनंतजिन प्रासाद—तल भाग २०। कोण ३, प्रतिकर्ण ३, नदी १, भद्रार्द्ध ३=१०+१०=२०।

१५ धर्मविवर्द्धन प्रासाद—तल भाग २८। कोण ४, कोणी १, प्रतिकर्ण ४ नदी १, भद्रार्द्ध ४=१४+१४=२८।

१६ शांतिजिन प्रासाद—तल भाग १२। कोण २, कोणी $\frac{१}{२}$, प्रतिकर्ण $१\frac{१}{२}$, नदी $\frac{१}{२}$, भद्रार्द्ध $१\frac{१}{२}$=६+६=१२।

१७ कुंथुवल्लभ प्रासाद—तल भाग ८। कोण १, प्रतिकर्ण १, नदि $\frac{१}{२}$, भद्रार्द्ध $१\frac{१}{२}$=४+४=८।

१८ अरिनाशन प्रासाद—तल भाग ८। कोण भाग २ भद्रार्द्ध २=४ ४=८

१९ मल्लीवल्लभ प्रासाद—तल भाग १२। कोण २, कोणी $\frac{१}{२}$, प्रतिकर्ण $१\frac{१}{२}$, नदी $\frac{१}{२}$, भद्रार्द्ध $१\frac{१}{२}$=६+६=१२।

२० मनसतुष्ट (मुनिसुव्रत) प्रासाद—तल भाग १४। कोण २ प्रतिरथ २, भद्रार्द्ध भाग ३=७+७=१४।

२१ नमिवल्लभ प्रासाद—तल भाग १६। कोण ३, प्रतिकर्ण २, भद्रार्द्ध भाग ३=८+८=१६।

२२ नेमिवल्लभ प्रासाद—तल भाग २२। कोण २, कोणी १, प्रतिकर्ण २, कोणी १, उपरथ २, नंदिका १, भद्रार्द्ध २=११+११=२२।

२३ पार्श्ववल्लभ प्रासाद—तल भाग २८। कोण ४, कोणी २, प्रतिकर्ण ३, नंदिका १, भद्रार्द्ध ४=१४+१४=२८।

२४ वीरविक्रम (वीरजिनवल्लभ) प्रासाद—तल भाग २४। कोण ३, कोणी १, प्रतिकर्ण ३, नंदी १, भद्रार्द्ध ४=१२+१२=२४।

प्रासाद संख्या—

> एएहि उवज्जंती पासाया विविहसिहरमाणाओ।
> नव सहस्स छ सय सत्तर वित्थारगयाउ ते नेया॥ ११॥

अनेक प्रकार के शिखरों के मान से नव हजार छः सौ सत्तर (९६७०) प्रासाद उत्पन्न होते हैं। उनका सविस्तर वर्णन अन्य ग्रन्थों से जानना॥ ११॥

प्रासादतल की भाग संख्या—

> चउरंसम्मि उ भित्ते अट्ठाइ दु वुड्ढि जाव बावीसा।
> भायविराड पर मज्झेसु वि देवभवणेसु॥ १२॥

समस्त देवमन्दिर में समचोरस मूलगम्भारे के तलभाग का आठ, दश, बारह, चौदह, सोलह, अठारह, बीस या बाईस भाग करना चाहिये॥ १२॥

कुम्भक का स्वरूप—

> चउरंसा चउभद्दा मज्झे पासाय हुंति नियमेण।
> कुंभत्थुभरडिसहिय सव्वाइ पट्टियाति भणाइं॥ १३॥
> पट्टिग्ग समिति जग्गा नेगाउसमगा वि पगा मन दव्वा।
> दसविय वगडिह घरस्स मज्झस्स दुग्दहिंसे॥ १४॥

चार कोना और चार भद्र ये समस्त प्रासादों में नियम से होते हैं। कोने के दोनों तरफ प्रतिभद्र होते हैं ॥ १३ ॥
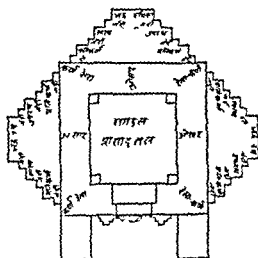
यह प्रासाद का नक्शा प्रासाद मंडन और अपराजित आदि ग्रंथों के आधार से सम्पूर्ण अवयवों के साथ दिया गया है, उसमें से इच्छानुसार बना सकते हैं।

प्रतिरथ, बोलिंजर और नंदि इनका मान क्रम से तीन, दोय और साढ़े तीन भाग समझना।

भद्र की दोनों तरफ पल्लविका और कर्णिका अवश्य करके होते हैं ॥ १४ ॥

दो भाय 'हवइ कूणो कमेण पाऊण जा भंर णंदी ।
पायं एग दुसड्ढ पल्लविय वरणिक भद्दं ॥ १५ ॥

दो भाग का कोना, पीछे क्रम से पाव २ भाग न्यून नंदी तक करना। पाव भाग, एक भाग और अढ़ाई भाग ये क्रम से पल्लव, कर्णिका और भद्र का मान समझना ॥ १५ ॥

भद्द दसभाय तम्माओ मूलनासिय एग ।
पउणाति ति य सवाति य कमेण एयपि पडिरहाइंसु ॥१६॥

भद्रार्द्ध का दस भाग करना, उनमें से एक भाग प्रमाण की मुखभद्रिका करना। पौन तीन, तीन और सवा तीन ये क्रम से प्रतिरथ आदि का मान समझना ॥ १६ ॥

---

१ 'हवको हुई' इति पाठान्तरे २ [illegible]

प्रासाद के अंग—

कूण पडिरह य रह भद्दं मुहभद्द मूलअंगाइं।
नंदी करणिक पल्लव तिलय तवंगाइ भूसणय ॥१७॥ इति विस्तरः।

कोना, प्रतिरथ, रथ, भद्र और मुखभद्र ये प्रासाद के अंग हैं। तथा नंदी, कर्णिका, पल्लव, तिलक और तवंग आदि प्रासाद के भूषण हैं ॥ १७ ॥

मण्डोवर के तेरह थर—

खुर कुंभ कलस कइवलि मच्ची जंघा य छज्जि उरजंघा।
भरणि सिरवट्टि छज्ज य वइराडु पहारु तेर थरा ॥१८॥
इग तिय दिवड्ढु तिसु कमि पणमड्ढा इग दु दिवड्ढु दिवड्ढो अ।
दो दिवड्ढु दिवड्ढु भाया पणवीस तेर थरमाणं ॥१९॥

खुर, कुंभ, कलश, केवाल मची, जंघा, छज्जि, उरजंघा, भरणी, शिरावटी, छज्जा, वेराडु और पहारू ये मण्डोवर के उदय के तेरह थर हैं ॥ १८ ॥

उपरोक्त तेरह थरों का प्रमाण क्रमशः एक, तीन, डेढ़, डेढ़, डेढ़, साढ़े पांच, एक, दो, डेढ़, डेढ़, दो, डेढ़ और डेढ़ हैं। अर्थात् पीठ के ऊपर खुरा से लेकर छाद्य के अंत तक मंडोवर के उदय का पच्चीस भाग करना उनमें नीचे से प्रथम एक भाग का खुरा, तीन भाग का कुंभ, डेढ़ भाग का कलश, डेढ़ भाग का केवाल, डेढ़ भाग की मची, साढ़े पांच भाग की जंघा, एक भाग की छाजली, दो भाग की उरजंघा, डेढ़ भाग की भरणी, डेढ़ भाग की शिरावटी, दो भाग का छज्जा, डेढ़ भाग का वेराडु और डेढ भाग का पहार इस प्रकार थर का मान है ॥ १९ ॥
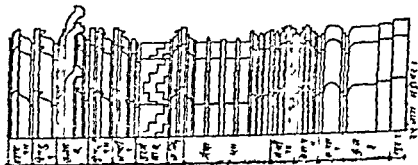
प्रासादमण्डन में नागरादि चार प्रकार के मंडोवर का स्वरूप इस प्रकार कहा है—

१—नागर जाति के मंडोवर का स्वरूप—

"वेदवेदेन्दुभक्ते तु छाद्यान्ते पीठमस्तकात् ।
खुरकः पञ्चभागः स्याद् विंशतिः कुम्भकस्तथा ॥ १ ॥
कलशोऽष्टौ द्विसार्द्धं तु कर्त्तव्यमन्तरालकम् ।
कपोतिकाष्टौ मञ्ची च कर्त्तव्या नवभागिका ॥ २ ॥
त्रिंशत्पञ्चयुता जङ्घा तिथ्यंशा उद्गमो भवेत् ।
वसुभिर्भरणी कार्या दिग्भागैश्च शिरावटी ॥ ३ ॥
अष्टांशोर्ध्वा कपोताली द्विसार्द्धमन्तरालकम् ।
छाद्यं त्रयोदशांशैश्च दशभागैर्विनिर्गमम् ॥ ४ ॥"

प्रासाद की पीठ के ऊपर से छज्जा के अन्त्य भाग तक मंडोवर के उदय का १४४ भाग करना। उनमें प्रथम नीचे से खुर पांच भाग का, कुंभ बीस भाग का, कलश आठ भाग का, अन्तराल (अन्तरपत्र या पुष्पकंठ) ढाई भाग का, कपोतिका (केवाल) आठ भाग की, मञ्ची नव भाग की, जंघा पैंतीस भाग की, उद्गम (उरुजंघा) पंद्रह भाग का, भरणी आठ भाग की, शिरावटी दश भाग की, कपोतालि (केवाल) आठ भाग की, अन्तराल (पुष्पकंठ) ढाई भाग का और छज्जा तेरह भाग का करना। छज्जा का निर्गम (निकास) दश भाग का करना।

२—मेरु जाति के मंडोवर का स्वरूप—

"मेरुमण्डोवरे मञ्ची भरणी पूर्वेऽष्टभागिका ।
पञ्चविंशतिका जंघा उद्गमश्च त्रयोदश ॥५॥
अष्टांशा भरणी शेषं पूर्ववत् कल्पयेत् सुधीः ।"

मेरु जाति के प्रासाद के मंडोवर में मञ्ची और भरणी के ऊपर शिरावटी ये दोनों आठ २ भाग की करना। जंघा पच्चीस भाग की, उद्गम (उरुजंघा) तेरह भाग की और भरणी आठ भाग की करना। बाकी के थरों का मान नागर जाति के मंडोवर की तरह समझना। कुल १२६ भाग मंडोवर का जानना।

३—सामान्य मंडोवर का स्वरूप—

"सप्तभागा भवेन्मञ्ची कूट छाद्यस्य मस्तके ॥६॥
षोडशांशाः पुनर्जङ्घा भरणी सप्तभागिका ।
शिरावटी चतुर्भागा पदः स्यात् पञ्चभागिकः ॥७॥
सूर्यांशैः कुटछाद्य च सर्वकामफलप्रदम् ।
कुम्भकस्य युगांशेन स्थावराणां प्रवेशकम् ॥८॥

'सामान्य मंडोवर में मञ्ची सात भाग की करना। छज्जा के ऊपर कूट का छाद्य करना। जंघा सोलह भाग की, भरणी सात भाग की, शिरावटी चार भाग की, केवाल पांच भाग की और छज्जा बारह भाग का करना। बाकी के थरों का मान मेरु जाति के मण्डोवर के मुआफिक समझना। यह मण्डोवर सब कार्य में फलदायक है।

४—अन्य प्रकार से मंडोवर का स्वरूप—

"पीठतश्छाद्यपर्यन्तं सप्तविंशतिभाजितम् ।
द्वादशानां खुरादीनां भागसंख्या क्रमेण च ॥
स्यादेकवेदसार्द्धार्द्ध-सार्द्धसार्द्धाष्टभिस्त्रिभिः ।
सार्द्धसार्द्धार्द्धभागैश्च द्विसार्द्धमशनिर्गमम् ॥"

पीठ के ऊपर से छज्जा के अन्त्य भाग तक मंडोवर के उदय का सत्ताईस भाग करना। उनमें खुर आदि बारह थरों की भाग संख्या क्रमशः इस प्रकार है— खुर एक भाग, कुंभ चार भाग, कलश डेढ भाग, पुष्पकंठ आधा भाग, केवाल डेढ भाग, मंची डेढ भाग, जंघा आठ भाग, उरुजंघा तीन भाग, भरणी डेढ भाग, केवाल डेढ भाग, पुष्पकंठ आधा भाग और छज्जा ढाई भाग इस प्रकार कुल २७ भाग के मंडोवर का स्वरूप है। छज्जा का निर्गम एक भाग करना।

---

१ अहमदाबाद निवासी मिस्त्री जगन्नाथ अंबाराम सोमपुरा ने बृहद् शिल्प शास्त्र नामक एक पुस्तक महा अशुद्ध और बिना विचार पूर्वक लिखी है उसके प्रथम भाग में सामान्य मंडोवर और प्रकारान्तर मंडोवर के भाग मूल श्लोक के मुआफिक नहीं हैं। जैसे— 'शिरावटी चतुर्भागा' मूल है उसका अर्थ मिस्त्रीजी ने 'शिरावटी बारह भाग की करना' लिखा है। प्रकारान्तर मंडोवर में कुंभा चार भाग का है, इसमें आप *'चार भाग का कुंभा करना किन्तु उसमें से एक भाग का खुरा करना'* लिखते हैं, पूर्व भाषान्तर में चार भाग का कुंभा लिखते हैं तो नकशे में दो भाग का कुंभा बतलाते हैं, इस प्रकार सारी पुस्तक में ही कई जगह भूल की ही है इसके समाधान के लिये पत्र द्वारा पूछा गया था तो संतोषप्रद जवाब नहीं मिला।
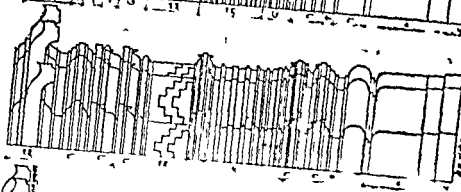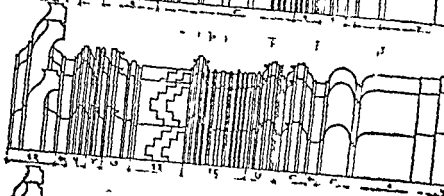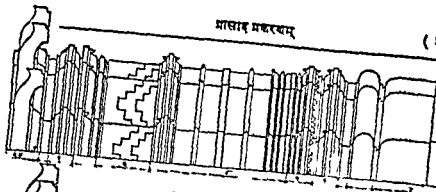
प्रासाद (देवालय) का मान—

पासायस्स पमाणं गणिज्ज सहभित्तिकुंभगथराश्रो ।
तस्स य दस भागाश्रो दो दो भित्ती हि रमगब्भे ॥२०॥

बाहर के भाग से कुंभा के थर से दीवार के सहित प्रासाद का प्रमाण गिनना चाहिये। जो मान आवे इसका दश भाग करना, इनमें दो २ भाग की दीवार और छः भाग का गर्भगृह (गभारा) करना चाहिये ॥ २० ॥

प्रासाद के उदय का प्रमाण—

इग दु ति चउ पण हत्थे पासाइ खुराउ जा पहारूथरो ।
नव सत्त पण ति एग श्रंगुलजुत्त कमेणुदय ॥२१॥

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई एक हाथ और नव अंगुल, दो हाथ के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई दो हाथ और सात अंगुल, तीन हाथ के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई तीन हाथ और पांच अंगुल, चार हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की ऊंचाई चार हाथ और तीन अंगुल, पाच हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की ऊंचाई पांच हाथ और एक अंगुल है। यह खुरा से लेकर पहारू थर तक के मंडोवर का उदयमान समझना ॥ २१ ॥

प्रासादमण्डन में भी कहा है कि—

"हस्तादिपञ्चपर्यन्तं विस्तारेणोदयः समः ।
स क्रमाद् नवसप्तेषु रामचन्द्राङ्गुलाधिकम् ॥"

एक से पांच हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई विस्तार के बराबर करना अर्थात् क्रमशः एक, दो, तीन, चार और पाच हाथ करना, परन्तु इनमें क्रम से नव, सात, पांच, तीन और एक अंगुल जितना अधिक समझना ।

इच्चाइ खबाणंते पडिहत्थे चउदसंगुलविहीणा ।
इय उदयमाण भणियं श्रश्रो य उड्ढ भवे सिहरं ॥२२॥

पांच हाथ से अधिक पचास हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद का उदय करना हो तो प्रत्येक हाथ चौदह २ अंगुल हीन करना चाहिए अर्थात् पांच हाथ से अधिक विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई करना हो तो प्रत्येक हाथ दश २ अंगुल की वृद्धि करना चाहिये। जैसे—छ हाथ के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई ५ हाथ और ११ अंगुल, सात हाथ के प्रासाद की ऊंचाई ५ हाथ और २१ अंगुल, आठ हाथ के प्रासाद की ऊंचाई ६ हाथ और ७ अंगुल, इत्यादि क्रम से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई २३ हाथ और १६ अंगुल होती है। यह प्रासाद का अर्थात् मंडोवर का उदयमान कहा। इसके ऊपर शिखर होता है ॥ २२ ॥

प्रासादमण्डन में अन्य प्रकार से कहा है—

"पञ्चादिदशपर्यन्तं त्रिंशद्यावच्छतार्द्धकम्।
हस्ते हस्ते क्रमाद् वृद्धि मनुसूर्या नवाङ्गुला ॥"

पांच से दश हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद का उदय करना हो तो प्रत्येक हाथ चौदह २ अंगुल की, ग्यारह से तीस हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद का उदय करना हो तो प्रत्येक हाथ बारह २ अंगुल की और इकतीस से पचास हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद का उदय करना हो तो प्रत्येक हाथ नव २ अंगुल की वृद्धि करना चाहिये।

शिखरों की ऊंचाई—

दुणु पाऊणु भूमजु नागरु सतिहाउ दिवड्ढु सप्पाउ ।
दाविडसिहरो दिवड्ढो सिरिवच्छो पऊण दूणो य ॥२३॥

प्रासाद के मान से भूमज जाति के शिखर का उदय पौने दुगुणा (१$\frac{३}{४}$), नागर जाति के शिखर का उदय अपना तीसरा भाग युक्त (१$\frac{१}{३}$) डेढ़ा (१$\frac{१}{२}$), या सवाया (१$\frac{१}{४}$)। द्राविड़ जाति के शिखर का उदय डेढ़ा (१$\frac{१}{२}$) और श्रीवत्स शिखर का उदय पौने दुगुना (१$\frac{३}{४}$) है ॥ २३ ॥

रेखमंदिर के शिखर का स्वरूप—
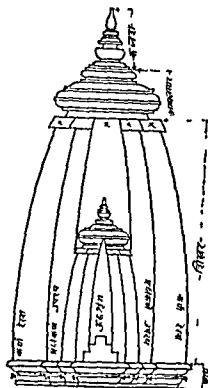
शिखर की गोलाई करने का प्रकार ऐसा है कि—दोनों कर्ण रेखा के मध्य के विस्तार से चार गुणा व्यासार्द्ध मानकर, दोनों बिन्दु से दो वृत्त खिंचा जाय तो शिखर की गोलाई कमल की पखडी जैसी अच्छी बनती है।

शिखरों की रचना—

छज्जउड उवरि तिहु दिसि रहियाजुयबिंब-उवरि-उरसिहरा ।
कूणेहिं चारि कूडा दाहिण वामग्गि ¹दो तिलया ॥२४॥

छज्जा के उपर तीनों दिशा में रथिका युक्त बिम्ब रखना और इसके उपर उरःशिखर (उरुशृंग) करना। चारों कोने के ऊपर चार कूट (शिखर प्रदक) और इसके दाहिनी तथा बांई तरफ दो तिलक बनाना चाहिये ॥ २४ ॥

उरसिहरकूडमज्झे सुसूलरेहा य उवरि चारिलया ।
अंतरकूणेहिं रिसी आमलसारो अ तस्सुवरे ॥२५॥

---

१ 'इइ' इति पाठान्तरं।

उरुशिखर और कूट के मध्य में प्रासाद की मूलरेखा के ऊपर चार लताएँ करना। लता के ऊपर चारों कौने में चार ऋषि रखना और इन ऋषियों के ऊपर आमलसार कलश रखना ॥ २५ ॥

आमलसार कलश का स्वरूप—

[1]पडिरह विक्खमज्झे आमलसारस्स वित्थरद्धुदये ।
गीवडयचडिकामलसारिय पऊण सवाउ इक्किके ॥२६॥

आमलसार कलश का स्वरूप—

दोनों कर्ण के मध्य भाग में प्रतिरथ जितने आमलसार कलश का विस्तार करना और विस्तार से आधा उदय करना। जितना उदय हो उसका चार भाग करना, उनमें पौने भाग का गला, सवा भाग का अंडक (आमलसार का गोला), एक भाग की चंद्रिका और एक भाग की आमलसारिका करना ॥ २६ ॥
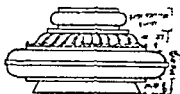
प्रासादमण्डन में कहा है कि—

"रथयोरुभयोर्मध्ये वृत्तमामलसारकम् ।
उच्छ्रयो विस्तरार्द्धेन चतुर्भागैर्विभाजित ॥
ग्रीवा चामलसारस्तु पादोना च सपादक ।
चन्द्रिका भागमानेन भागनामलसारिका ॥"

दोनों रथिका के मध्य भाग जितनी आमलसार कलश की गोलाई करना, आमलसार के विस्तार से आधी ऊँचाई करना, ऊँचाई का चार भाग करके पौन भाग का गला, सवा भाग का आमलसार, एक भाग की चंद्रिका और एक भाग की आमल सारिका करना।

[1] 'पडिरह विक्खमज्झे आमलसारस्स वित्थरं हुइ ।
तस्सद्धेण य उदओ उ मज्झे ठाय चत्तारि ॥
गीवंडयचंडिका आमलसारिय कमइ सवा सा ।
पउणु सवाइ इगा आमलसारस्स एम विंति ॥ इति पाठान्तरे ।

आमलसारयमज्झे चंदणखट्टासु सेयपट्टच्चुश्रा ।
तस्सुवरि कणयपुरिस घयपूरतश्रो य वरकलसो ॥२७॥

आमलसार कलश के मध्य भाग में सफेद रेशम के वस्त्र से ढका हुआ चंदन का पलंग रखना। इस पलंग के ऊपर ¹कनकपुरुष (सोने का प्रासाद पुरुष) रखना और इसके पास घी से भरा हुआ तांबे का कलश रखना, यह क्रिया शुभ दिन में करना चाहिये ॥ २७ ॥

पाहणकट्ठिट्टमश्रो जारिसु पासाउ तारिसो कलसो ।
जहसत्ति पइट्ठ पच्छा कणयमश्रो रयणजडिश्रो श्र ॥२८॥

पत्थर, लकड़ी या ईंट उनमें से जिसका प्रासाद बना हो, उसी का ही कलश भी बनाना चाहिये। अर्थात् पत्थर का प्रासाद बना हो तो कलश भी पत्थर का, लकड़ी का प्रासाद हो तो कलश भी लकड़ी का और ईंट का प्रासाद बना हो तो कलश भी ईंट का करना चाहिये। परन्तु प्रतिष्ठा होने के बाद अपनी शक्ति के अनुसार सोने का या रत्न जड़ित का भी करवा सकते हैं ॥ २८ ॥

शुकनास का मान—

छज्जाउ जाव कंधं इगवीस विभाग करिवि तत्तो अ ।
नवश्राइ जावतेरस दीहुदये हवइ सुउणासो ॥२९॥

छज्जा से स्कंध तक के ऊंचाई का इक्कीस भाग करना, उनमें से नव, दश, ग्यारह, बारह व तेरह भाग बराबर लंबा उदय में शुकनास करना ॥ २९ ॥

उदयद्धि विहिय पिंडो पासायनिलाडतिलउ व्व तिलउच्च ।
तस्सुवरि हवइ सीहो मंडपकलसोदयस्स समो ॥ ३० ॥

उदय से आधा शुकनास का पिंड (मोटाई) करना। यह प्रासाद के ललाट तिलक के समान माना जाता है। उसके ऊपर सिंह मंडप के कलश का उदय बराबर रखना। मंडप के उदय की ऊंचाई शुकनास के सिंह से अधिक नहीं होनी चाहिये ॥३०॥

¹ कनकपुरुष का मान आगे की ३१ वीं गाथा में कहा है।

समरांगणसूत्रधार में कहा है कि—

"शुकनासोच्छ्रितेरूर्ध्वं न कार्या मण्डपोच्छ्रितिः ।"

शुकनास की ऊंचाई से मंडप की ऊंचाई अधिक नहीं करना चाहिये, किन्तु बराबर या नीची करना चाहिये।

प्रासादमण्डन में भी कहा है कि—

"शुकनाससमा घण्टा न्यूना श्रेष्ठा न चाधिका ।"

शुकनास के बराबर मंडप का कलश करना, या नीचा करना अच्छा है, परन्तु ऊंचा रखना अच्छा नहीं।

मंदिर में लकड़ी कैसी वापरना—

सुहय इग दारुमय पासाय कलस-दंड-मक्कडिग्रं ।
सुहकट्ठ सुदिढ कीर सीसिमखयरजण महुवं ॥३१॥

प्रासाद (मन्दिर), कलश, ध्वजादंड और ध्वजादंड की पाटली ये सब एक ही जात की लकड़ी के बनाये जाय तो सुखकारक होते हैं। साग, केगर, शीसम खेर, अञ्जन और महुआ इन वृक्षों की लकड़ी प्रासादिक बनाने के लिये शुभ मानी है ॥ ३१ ॥

नीरतलदलविभत्ती भद्दविणा चउरंस च पासाय ।
फंसायार सिहर करंति जे ते न नंदंति ॥३२॥

पानी के तल तक जिस प्रासाद का खात खोदा हो, ऐसा समचौरस प्रासाद यदि भद्र रहित हो तथा फांसी के आकार के शिखरवाला हो, ऐसा मन्दिर जो मनुष्य करावे वह मनुष्य सुखपूर्वक आनन्द में नहीं रहता ॥ ३२ ॥

कनकपुरुष का मान—

श्रद्धंगुलाइ कमसो पायंगुलवुड्ढिकणयपुरिसो य ।
कीरइ धुव पासाए इगहत्थाई सुनाणंते ॥ ३३ ॥

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में कनकपुरुष आधा अंगुल का करना चाहिये । पीछे प्रत्येक हाथ पाव २ अंगुल बढ़ा बनाना चाहिये । अर्थात् दो हाथ के प्रासाद में पौना अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद में एक अंगुल, चार हाथ के प्रासाद में सवा अंगुल इत्यादिक क्रम से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में पौने तेरह अंगुल का कनकपुरुष बनाना चाहिये ॥ ३३ ॥

ध्वजादंड का प्रमाण—

इग हत्थे पासाए दंड पउणंगुल भवे पिंडं ।
अद्धंगुलवुड्ढिकमे जाकरपन्नास-कन्नुदए ॥ ३४ ॥
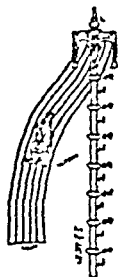
एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में ध्वजादंड पौने अंगुल का मोटा बनाना चाहिये । पीछे प्रत्येक हाथ आधे २ अंगुल क्रम से बढ़ाना चाहिये । अर्थात् दो हाथ के प्रासाद में सवा अंगुल का, तीन हाथ के प्रासाद में पौने दो अंगुल का, चार हाथ के प्रासाद में सवा दो अंगुल का, पांच हाथ के प्रासाद में पौने तीन अंगुल का, इसी क्रम से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में सवा पचीस अंगुल का मोटा ध्वजादंड करना चाहिये । तथा कर्ण के उदय जितना लंबा ध्वजादंड करना चाहिये ॥ ३४ ॥

प्रासादमण्डन में कहा है कि—

"एकहस्ते तु प्रासादे दण्डः पादोनमङ्गुलम् ।
अर्धाङ्गुला वृद्धिः स्यात् पञ्चाशद्धस्तकम्"

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में पौन अंगुल का मोटा ध्वजादंड करना, पीछे पचास हाथ तक प्रत्येक हाथ आधे २ अंगुल मोटाई में बढ़ाना चाहिए ।

ध्वजादंड की ऊँचाई इस प्रकार है—

"दण्डः कार्यस्तृतीयांशः शिलातः कलशावधिम् ।
मध्योऽष्टांशेन हीनांशो ज्येष्ठात् पादोनः कन्यसः ॥"

खुरशिला से कलश तक ऊंचाई के तीन भाग करना, उनमें से एक तीसरा भाग जितना लंबा ध्वजादंड करना, यह ज्येष्ठ मान का ध्वजादंड होता है। यदि ज्येष्ठ मान का आठवां भाग ज्येष्ठ मान में से कम करें तो मध्यम मान का और चौथा भाग कम करें तो कनिष्ठ मान का ध्वजादंड होता है।

प्रकारान्तर से ध्वजादण्ड का मान—

"प्रासादव्यासमानेन दण्डो ज्येष्ठः प्रकीर्तितः ।
मध्यो हीनो दशांशेन पञ्चमांशेन कन्यसः ॥"

प्रासाद के विस्तार जितना लंबा ध्वजादंड करें तो यह ज्येष्ठमान का होता है। यही ज्येष्ठमान के दंड का दशवां भाग ज्येष्ठमान में से घटा दें तो मध्यम मान का और पांचवां भाग घटा दें तो कनिष्ठमान का ध्वजादंड होता है।

ध्वजादण्ड का पर्व (खंड) और चूड़ी का प्रमाण—

"पर्वभिर्विषमैः कार्यः समग्रन्थी सुखावहः ।"

दंड में पर्व (खंड) विषम रखें और गांठ (चूड़ी) सम रखें तो यह सुखकारक है।

ध्वजादंड के ऊपर की पाटली का मान—

"दण्डदैर्घ्यषडंशेन मर्कट्यर्द्धेन विस्तृता ।
अर्द्धचन्द्राकृतिः पार्श्वे घण्टोर्द्ध्वे कलशस्तथा ॥"

दंड की लंबाई का छठा[1] भाग जितनी लंबी मर्कटी (पाटली) करना और लंबाई से आधा विस्तार करना। पाटली के मुख भाग में दो अर्ध चन्द्र का आकार करना। दो तरफ घंटी लगाना और उपर मध्य में कलश रखना। अर्द्ध चन्द्र के आकारवाला भाग पाटली का मुख माना है। यह पाटली का मुख और प्रासाद का मुख एक दिशा में रखना और मुख के पिछाड़ी में ध्वजा लगानी चाहिये।

[1] इसी अध्याय की ४१ वीं गाथा में मर्कटी (पाटली) का मान प्रासाद का पांचवां भाग कहा है।

ध्वजा का मान—

णिप्पन्ने वरसिहरे धयहीणसुरालयम्मि असुरठिई ।
तेण धयं धुव कीरइ दंडसमा मुक्खसुक्खकरा ॥३५॥

सम्पूर्ण बने हुए देवमन्दिर के अच्छे शिखर पर ध्वजा न हो तो उस देव मन्दिर में असुरों का निवास होता है। इसलिये मोक्ष के सुख को करनेवाली दंड के बराबर लम्बी ध्वजा अवश्य करना चाहिये ॥३५॥

प्रासादमण्डन में कहा है कि—

"ध्वजा दण्डप्रमाणेन दैर्ध्योऽष्टांशेन विस्तरा ।
नानावर्णा विचित्राद्या त्रिपञ्चाग्रा शिखोत्तमा ॥"

ध्वजा के वस्त्र दंड की लम्बाई जितना लम्बा और दंड का आठवां भाग जितना चौड़ा अनेक प्रकार के वर्णों से सुशोभित करना, तथा ध्वजा के अंतिम भाग में तीन या पांच शिखा करना, यह उत्तम ध्वजा मानी गई है।

द्वार मान—

[1]पासायस्स दुवारं [2]हत्थपइ सोलसंगुल उदए ।
[3]जा हत्थ चउक्का हुंति तिग दुग वुड्ढि कमाडपन्नासं ॥३६॥

प्रासाद के द्वार का उदय प्रत्येक हाथ सोलह अंगुल का करना, यह वृद्धि चार हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद तक समझना अर्थात् चार हाथ के विस्तार वाले प्रासाद के द्वार का उदय चौंसठ अंगुल समझना। पीछे क्रमशः तीन २ और दो २ अंगुल की वृद्धि पचास हाथ तक करना चाहिये ॥३६॥

प्रासादमंडन में नागरादि प्रासाद द्वार का मान इसी प्रकार कहा है—

"एकहस्ते तु प्रासादे द्वारं स्यात् षोडशांगुलम् ।
षोडशांगुलिका वृद्धि-र्यावद्धस्तचतुष्टयम् ॥

[1] 'पासायपमा । [2] हत्थप्पइ । [3] 'चवपचम दिग्धारे अहवा पिट्ठुकाउ वुड्ढये' । इति पाठान्तरे ।

अष्टहस्तात्तक यावद् दीर्घे वृद्धिर्गुणाङ्गुला ।
द्व्यङ्गुला प्रतिहस्त च यावद्धस्तशतार्द्धकम् ॥
यानवाहनपर्यङ्कं द्वारं प्रासादसद्मनाम् ।
दैर्घ्यार्द्धेन पृथुत्वे स्यात्शोभनं तत्कलाधिकम् ॥"

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में सोलह अंगुल द्वार का उदय करना। पीछे चार हाथ तक सोलह २ अंगुल की वृद्धि, पांच से आठ हाथ तक [illegible] अंगुल की वृद्धि और आठ से पचास हाथ तक दो २ अंगुल की वृद्धि द्वार के उदय में करना चाहिये। पालकी, रथ, गाड़ी, पलंग (मांचा), मंदिर का द्वार [illegible] द्वार ये सब लंबाई से आधा चौड़ा करना, यदि चौड़ाई में बढ़ाना हो तो [illegible] सोलहवां भाग बढाना।

उदयद्धिवित्थरे बारे आयदोसविसुद्धए ।
अंगुल सड्ढमद्धं वा [1]हाणि वुड्ढी न दूसए ॥ ३७ ॥

उदय से आधा द्वार का विस्तार करना। द्वार के [illegible] शुद्धि के लिये द्वार के उदय में आधा या डेढ अंगुल न्यूनाधिक [illegible] नहीं है ॥ ३७ ॥

निलाडि बारउत्ते बिंब साहेहि हिट्ठि पडि[illegible]
कूणेहिं अट्ठदिसिवइ जघापडिरहइ पि[illegible] ॥ ३८ ॥

दरवाजे के ललाट भाग की ऊंचाई में बिंब ([illegible] प्रतिहारी, कोने में आठ दिग्पाल और मंडोवर के [illegible] नाटक करती हुई पुतलिएँ रखना चाहिये ॥ ३८ ॥

बिम्बमान—

पासायतुरियभागप्पमाणबिंब मु[illegible]
रावट्टरयणविद्दुम धाउमय जहि[illegible] ॥ ३९ ॥

1 वुड्ढी हीणं तहाहिये । इति पाठान्तरे।

प्रासाद के विस्तार का चौथा भाग प्रमाण जो प्रतिमा हो वह उत्तम प्रतिमा कहा है। किन्तु राजपट्ट (स्फटिक), रत्न, प्रवाल या सुवर्णादिक धातु की प्रतिमा का मान अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं ॥ ३६ ॥

विवेकविलास में कहा है कि—

"प्रासादतुर्यभागस्य समाना प्रतिमा मता ।
उत्तमायकृते सा तु कार्यैकोनाधिकाङ्गुला ॥
अथवा स्वदशांशेन हीनस्याप्यधिकस्य वा ।
कार्या प्रासादपादस्य शिल्पिभिः प्रतिमा समा ॥"

प्रासाद के चौथे भाग के प्रमाण की प्रतिमा करना, यह उत्तम लाभ की प्राप्ति के लिये है, परन्तु चौथे भाग में एक अगुल न्यून या अधिक रखना चाहिये। या प्रासाद के चौथे भाग का दश भाग करना, उनमें से एक भाग चौथे भाग में हीन करके या बढ़ा करके उतने प्रमाण की प्रतिमा शिल्पकारों को बनानी चाहिये।

वसुनन्दिकृत प्रतिष्ठासार में कहा है कि—

"द्वारस्याष्टांशहीनः स्यात् सपीठः प्रतिमोच्छ्रयः ।
तत् त्रिभागो भवेत् पीठं द्वौ भागौ प्रतिमोच्छ्रयः ॥"

द्वार का आठ भाग करना, उनमें से ऊपर के आठवें भाग को छोड़कर बाकी सात भाग प्रमाण पीठिका सहित प्रतिमा की ऊंचाई होनी चाहिये। सात भाग का तीन भाग करना, उनमें से एक भाग की पीठिका (पबासन) और दो भाग की प्रतिमा की [1]ऊंचाई करना चाहिये।

प्रासादमण्डन में कहा है कि—

"तृतीयांशेन गर्भस्य प्रासादे प्रतिमोत्तमा ।
मध्यमा स्वदशांशोना पञ्चांशोना कनीयसी ॥"

प्रासाद के गर्भगृह का तीसरा भाग प्रमाण प्रतिमा बनाना उत्तम है। प्रतिमा का दशवां भाग प्रतिमा में घटाकर उतने प्रमाण की प्रतिमा करें तो मध्यममान की, और पांचवां भाग न्यून प्रतिमा करें तो कनिष्ठमान की प्रतिमा समझना।

[1] यह ऊंचाई खड़ी मूर्ति के लिये है, यदि बैठी मूर्ति हो तो दो भाग का पबासन और एक भाग की मूर्ति रखना चाहिये।

प्रतिमा की दृष्टि का प्रमाण—

दसभायकयदुवार[1] उदुम्बर-उत्तरंग-मज्झेण ।
पढमंसि सिवदिट्ठी बीए सिवसत्ति जाणेह ॥ ४० ॥

मन्दिर के मुख्य द्वार के देहली और उत्तरंग के मध्य भाग का दश भाग करना। उनमें नीचे के प्रथम भाग में महादेव की दृष्टि, दूसरे भाग में शिवशक्ति (पार्वती) की दृष्टि रखना चाहिये ॥ ४० ॥

सयणासणसुर-तईए लच्छीनारायण चउत्थे अ ।
वाराह पंचमए छट्ठंसे लेवचित्तस्स ॥ ४१ ॥

तृतीय भाग में शेषशायी (विष्णु) की दृष्टि, चौथे भाग में लक्ष्मीनारायण की दृष्टि, पंचम भाग में वाराहावतार की दृष्टि, छट्ठे भाग में लेप और चित्रमय प्रतिमा की दृष्टि रखना चाहिये ॥ ४१ ॥

सासणसुरसत्तमए सत्तमसत्तंमि वीयरागस्स ।
चंडिय भइरव-अडंमे नवमिंदा छत्तचमरधरा ॥ ४२ ॥

सातवें भाग में शासनदेव (जिन भगवान के यक्ष और यक्षिणी) की दृष्टि, वहीं सातवें भाग के दश भाग करके उनका जो सातवाँ भाग वहीं पर वीतरागदेव की दृष्टि, आठवें भाग में चंडीदेवी और भैरव की दृष्टि और नववें भाग में छत्र चामर करने वाले इंद्र की दृष्टि रखना चाहिये ॥ ४२ ॥

दसमे भाए सुन्नं जक्खागंधव्वरक्खसा जेण ।
हिट्ठाउ कमि ठविज्जइ सयल सुराण च दिट्ठी अ ॥ ४३ ॥

ऊपर के दशवें भाग में किसी की दृष्टि नहीं रखना चाहिए, क्योंकि वहां यक्ष गांधर्व और राक्षसों का निवास माना है। समस्त देवों की दृष्टि द्वार के नीचे के क्रम से रखना चाहिये ॥ ४३ ॥

---

[1] उदुंबर इति पाठान्तरे ।

प्रकारान्तर से दृष्टि का प्रमाण—

भागट्ठ भणतेगे सत्तमसत्तमि दिट्ठि [1]अरिहंता ।
गिहदेवालु पुणेवं कीरइ जह होइ वुड्ढिकरं ॥ ४४ ॥

कितनेक आचार्यों का मत है कि मंदिर के मुख्य द्वार के देहली और उदुंबर के मध्य भाग का आठ भाग करना । उनमें भी ऊपर का जो सातवाँ भाग, उसका फिर आठ भाग करके, इसी के सातवें भाग (गजांश) पर अरिहंत की दृष्टि रखना चाहिये । अर्थात् द्वार के ६४ भाग करके, ५५ वें भाग पर वीतरागदेव की दृष्टि रखना चाहिये । इसी प्रकार गृहमंदिर में भी करना चाहिये कि जिससे लक्ष्मी आदि की वृद्धि हो ॥ ४४ ॥

प्रासादमण्डन में भी कहा है कि—

"अष्टमांशे भजेद् द्वारं मष्टमपूर्ध्वतस्त्यजेत् ।
सप्तमसप्तमे दृष्टिर्वृषे सिंहे ध्वजे शुभा ॥"

द्वार की ऊंचाई का आठ भाग करके ऊपर का आठवाँ भाग छोड़ देना, पीछे सातवें भाग का फिर आठ भाग करना, इसीका जो सातवाँ भाग गजआय, उसमें दृष्टि रखना चाहिये । या सातवें भाग के जो आठ भाग किये हैं, उनमें से छट्ठा, फिर या [illegible] में अर्थात् पाँचवाँ, तीसरा या दूसरा भाग में भी दृष्टि रख सकते हैं ।

दि० वसुनंदि देव प्रतिष्ठासार में कहा है कि—

"विभज्य नवधा द्वारं तत् षड्भागानधस्त्यजेत् ।
ऊर्ध्वद्वौ सप्तमं तद्वद् विभज्य स्थापयेद् दृशम् ॥"

द्वार का नव भाग करके नीचे के छह भाग और ऊपर के दो भाग को छोड़ देने, बाकी जो सातवाँ भाग रहा, उसका भी नव भाग करके इसी के सातवें भाग पर प्रतिमा की दृष्टि रखना चाहिये ।

---

१ [illegible]

देवों का दृष्टिद्वार—
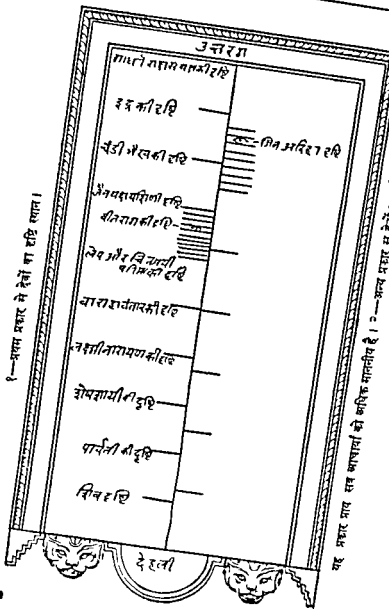
१—प्रथम प्रकार से देवों का दृष्टि स्थान।

यह प्रकार प्राय सब आचार्यों को अधिक माननीय है। २—अन्य प्रकार से

गर्भगृह में देवों की स्थापना—

गब्भगिहड्ढ-पणंसा जक्खा पढमंसि देवया बीए ।
जिणकिरहरवी तइए बंभु चउत्थे सिव पणगे ॥ ४५ ॥

प्रासाद के गर्भगृह के आधे का पांच भाग करना, उनमें प्रथम भाग में यक्ष, दूसरे भाग में देवी, तीसरे भाग में जिन, कृष्ण और सूर्य, चौथे भाग में ब्रह्मा और पांचवें भाग में शिव की मूर्त्ति स्थापित करना चाहिये ॥ ४५ ॥

नहु गब्भे ठाविज्जइ लिंग गब्भे चइज्ज नो कहवि ।
तिलअद्ध तिलमित्तं ईसाणे किंपि आसरिओ ॥ ४६ ॥

महादेव का लिंग प्रासाद के गर्भ (मध्य) में स्थापित नहीं करना चाहिये । यदि गर्भ भाग को छोड़ना न चाहें तो गर्भ से तिल आधा तिलमात्र भी ईशानकोण में हटाकर रखना चाहिये ॥ ४६ ॥

भित्तिसंलग्गबिंबं उत्तमपुरिसं च सव्वहा असुहं ।
चित्तमयं नागायं हवंति एए [1]सहावेण ॥ ४७ ॥

दीवार के साथ लगा हुआ ऐसा देवबिंब और उत्तम पुरुष की मूर्त्ति सर्वथा अशुभ मानी है । किन्तु चित्रमय नाग आदि देव तो स्वाभाविक लगे हुए रहते हैं, उसका दोष नहीं ॥ ४७ ॥

जगती का स्वरूप—

जगई पासायंतरि रसगुणा पच्छा नवगुणा पुरओ ।
दाहिण-वामे तिउणा इअ भणियं खित्तमज्जायं ॥ ४८ ॥

जगती (मंदिर की मर्यादित भूमि) और मध्य प्रासाद का अंतर पिछले भाग में प्रासाद के विस्तार से छः गुणा, आगे नव गुणा, दाहिनी और बायीं ओर तीन २ गुणा होना चाहिये । यह क्षेत्र की मर्यादा है ॥ ४८ ॥

---

१ 'समासेण' इति पाठान्तर ।

प्रासादमण्डन में जगती का स्वरूप विशेषरूप से कहा है कि—

"प्रासादानामधिष्ठानं जगती सा निगद्यते ।
यथा सिंहासनं राज्ञः प्रासादानां तथैव च ॥ १ ॥"

प्रासाद जिस भूमि में किया जाय उस समस्त भूमि को जगती कहते हैं। अर्थात् मंदिर के निमित्त जो भूमि है उस समस्त भूमि भाग को जगती कहते हैं। जैसे राजा का सिंहासन रखने के लिये अमुक भूमि भाग अलग रखा जाता है, वैसे प्रासाद की भूमि समझना ॥ १ ॥

"चतुरस्रायतेऽष्टास्रा वृत्ता वृत्तायता तथा ।
जगती पञ्चधा प्रोक्ता प्रासादस्यानुरूपतः ॥ २ ॥"

समचौरस, लंबचौरस, आठ कोनवाली, गोल और लंबगोल, ये पांच प्रकार की जगती प्रासाद के रूप सदृश होती है। जैसे—समचौरस प्रासाद को समचौरस जगती, लंबचौरस प्रासाद को लंबचौरस जगती इसी प्रकार समझना ॥ २ ॥

"प्रासादपृथुमानाच्च त्रिगुणा च चतुर्गुणा ।
क्रमात् पञ्चगुणा प्रोक्ता ज्येष्ठा मध्या कनिष्ठका ॥ ३ ॥"

प्रासाद के विस्तार से जगती तीन गुणी, चार गुणी या पांच गुणी करना। त्रिगुणी कनिष्ठमान, चतुर्गुणी मध्यममान और पांच गुणी जेष्ठमान की जगती है ॥ ३ ॥

"कनिष्ठे कनिष्ठा ज्येष्ठे ज्येष्ठा मध्यमे मध्यमा ।
प्रासादे जगती कार्या स्वरूपा लक्षणान्विता ॥ ४ ॥"

कनिष्ठमान के प्रासाद में कनिष्ठमान जगती, ज्येष्ठमान के प्रासाद में ज्येष्ठ मान जगती और मध्यमान प्रासाद में मध्यममान जगती। प्रासाद के स्वरूप जैसी जगती करना चाहिये ॥ ४ ॥

"रससप्तगुणाख्याता जिने पर्यायसंस्थिते ।
द्वारिकायां च कर्तव्या तथैव पुरुषत्रये ॥ ५ ॥"

च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल और मोक्ष के स्वरूपवाले देवकुलिका युक्त जिन प्रासाद में छः या सात गुणी जगती करना चाहिये। उसी प्रकार द्वारिका प्रासाद और त्रिपुरुष प्रासाद में भी जानना ॥ ५ ॥

"मण्डपानुक्रमेणैव सपादांशेन सार्द्धतः ।
द्विगुणा वायता कार्या स्वहस्तायतनाविधिः ॥६ ॥"

मण्डप के क्रम से सवाई डेढी या दुगुनी विस्तारवाली जगती करना चाहिये ।

"त्रिद्वयेकभ्रमसंयुक्ता ज्येष्ठा मध्या कनिष्ठका ।
उच्छ्रायस्य त्रिभागेन भ्रमणीना समुच्छ्रयः ॥ ७ ॥"

तीन भ्रमणीवाली ज्येष्ठा, दो भ्रमणीवाली मध्यमा और एक भ्रमणीवाली कनिष्ठा जगती जानना । जगती की ऊंचाई का तीन भाग करके प्रत्येक भाग भ्रमणी की ऊंचाई जानना ॥ ७ ॥

"चतुष्कोणैस्तथा सूर्य—कोणैर्विंशतिकोणकैः ।
अष्टाविंशति षट्त्रिंशत् कोणैः स्वस्य प्रमाणतः ॥ ८ ॥"

जगती चार कोनावाली, बारह कोनावाली, बीस कोनावाली, अट्ठाइस कोना वाली और छत्तीस कोनावाली करना अच्छा है ॥ ८ ॥

"प्रासादाद्वार्कहस्तान्ते त्र्यंशे द्वात्रिंशतिकरात् ।
द्वात्रिंशच्चतुर्थांशे भूतांशाच्च शतार्द्धके ॥ ६ ॥"

बारह हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को प्रासाद के तीसरे भाग अर्थात् प्रत्येक हाथ ८ अंगुल, बाईस से बत्तीस हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को चौथे भाग अर्थात् प्रत्येक हाथ ६ अंगुल और तेंतीस से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को पांचवें भाग जगती ऊंची बनाना चाहिए ॥ ६ ॥

"एक हस्ते करेणैव सार्द्धद्वयस्तथा चतुष्करे ।
पूर्वनेत्रशतार्द्धान्त क्रमात् द्वित्रियुगांशकैः ॥ १० ॥"

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को एक हाथ ऊंची जगती, दो से चार हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद को ढाईवें भाग, पांच से बारह हाथ तक के प्रासाद को दूसरे भाग, तेरह से चौबीस हाथ के प्रासाद को तीसरे भाग और पचीस से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को चौथे भाग जगती ऊंची करना चाहिए ॥ १० ॥

"तदुच्छ्रायं भजेत् प्राज्ञ स्त्वष्टाविंशतिभिः पदैः ।
त्रिपदो जाड्यकुम्भश्च द्विपद् कर्णिका तथा ॥ ११ ॥
पद्मपत्रसमायुक्ता त्रिपदा सरपत्रिका ।
द्विपद् खुरकं कुर्यात् सप्तभागं च कुम्भकम् ॥ १२ ॥

जगती के उदय का स्वरूप—

जगती में देवकुलिका न करना हो तो किला (गढ) अवश्य बनाना चाहिए ।
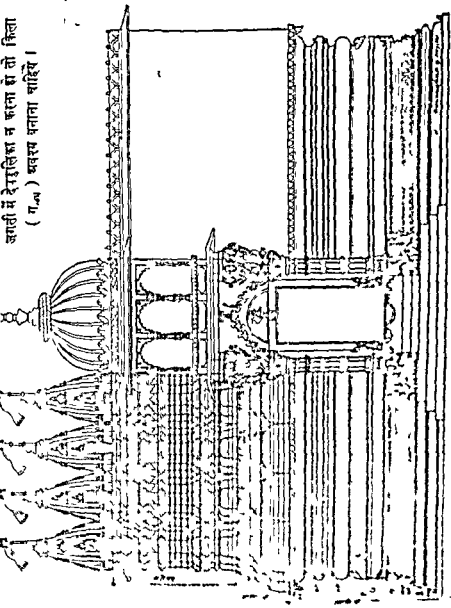
"कलशस्त्रिपदो प्रोक्तो भागेनान्तरपत्रकम् ।
कपोताली त्रिभागा च पुष्पकण्ठो युगांशकम् ॥ १३ ॥"

जगती की ऊंचाई का अट्ठाईस भाग करना। उनमें तीन भाग का जाड्यकुंभ, दो भाग की कणी, पद्मपत्र सहित तीन भाग की ग्रास पट्टी, दो भाग का खुरा, सात भाग का कुंभा, तीन भाग का कलश, एक भाग का अंतरपत्र, तीन भाग केवाल और चार भाग का पुष्पकंठ करना ॥ ११-१२-१३ ॥

"पुष्पकाज्जाड्यकुम्भस्य निर्गमस्याष्टभिः पदैः ।
कर्णेषु च दिशिपालाः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणे ॥ १४ ॥"

पुष्पकंठ से जाड्यकुंभ का निर्गम आठ भाग करना। पूर्वादि दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से दिक्पालों को कर्ण में स्थापित करना ॥ १४ ॥

"प्राकारैर्मण्डिता कार्या चतुर्भिर्द्वारमण्डपैः ।
मकरैर्जलनिष्कासैः सोपान-तोरणादिभिः ॥ १५ ॥

जगती किला (गढ़) से सुशोभित करना, चारों दिशा में एक २ द्वार बला-णक (मंडप) संयुक्त करना, जल निकलने के लिये मगर के मुखवाले परनाले करना, द्वार आगे तोरण और सीढ़िएँ करना ॥ १५ ॥

प्रासाद व मंडप का क्रम—

पासायस्स य अग्गे गूढक्खयमंडवं तओ छक्कं ।
पुण रंगमंडवं तह तोरणसबलाणमंडवयं ॥ ४९ ॥

प्रासादकमल (गभारा) के आगे गूढमंडप, गूढमंडप के आगे छः चौकी, चौकी के आगे रंगमंडप, रंगमंडप के आगे तोरण युक्त बलाणक (दरवाजे के ऊपर का मंडप) इस प्रकार मंडप का क्रम है ॥ ४९ ॥

[illegible]र्मंडन में भी कहा है कि—

"[illegible]दस्त्रया नृप क्रमेण मंडपात्रयम्। जिनस्याग्रे प्रकर्तव्याः सर्वेषां तु बलानकम् ।"

[illegible] जिन भगवान के प्रासाद के आगे गूढमंडप, उसके आगे छः चौकी (नव चौकी) [illegible]है आगे नृत्यमंडप (रंगमंडप), ये तीन मंडप करना चाहिये, तथा उन सबके [illegible]नक (दरवाजे पर का मंडप) सब मंदिरों में करना चाहिए ॥

मंदिर के तल भाग का स्वरूप—

समस्त सांगोपांग युक्त जैन मन्दिर के उदय का स्वरूप—
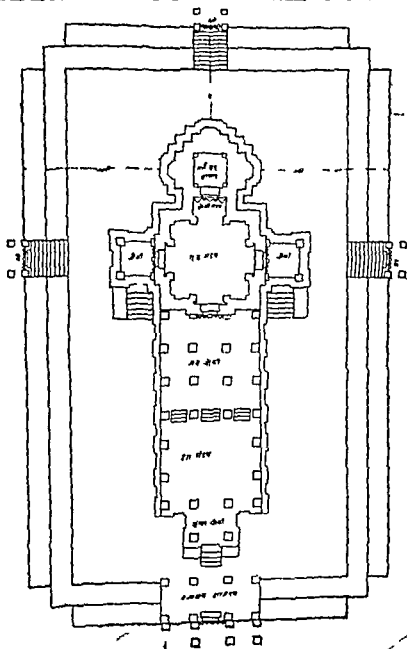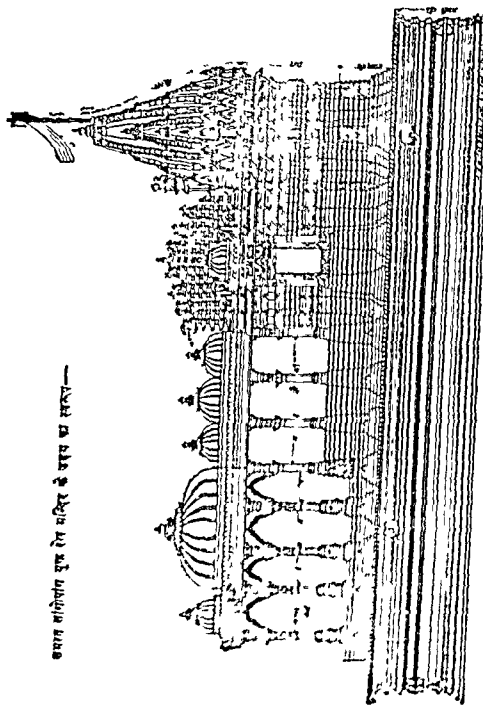
दाहिणवामदिसेहिं सोहामडपगउक्खजुयसाला ।
गीय नट्टविणोय गधव्वा जत्थ पकुणति ॥ ५० ॥

प्रासाद के दाहिनी और बॉंयी तरफ शोभामडप और गवाच (झरोखा) युक्त शाला बनाना चाहिये कि जिसमें गांधर्वदेव गीत नृत्य व विनोद करते हुए हों ॥५०॥

मडप का मान—

पासायसम दिउण दिउड्ढय पऊणदूण वित्थारो ।
'सोवाण ति पण उदए चउदए चउकीओ मडवा हुति ॥ ५१ ॥

प्रासाद के बराबर, दुगुणा, डेढा या पौने दुगुना विस्तारवाला मडप करना चाहिये। मडप में सीढी तीन या पाँच करना और मडप में चौकीएँ बनाना ॥५१॥

स्तम्भ का उदयमान—

कुभी-थभ भरण सिर-पट्ट इग-पच-पऊण-सपाय ।
इग इअ नव भाय कमे मडववट्टाउ अद्धुदए ॥ ५२ ॥

मडप की गोलाई से आधा स्तम का उदय करना उसी उदय का नव भाग करना, उनमें एक भाग की कुभी, पांच भाग का स्तभ, पौने भाग का भरणा, सवा भाग का शिरावटी (शरु) और एक भाग का पाट करना चाहिये ॥ ५२ ॥

मर्कटी कलश और स्तभ का विस्तार—

पासाय अट्ठमसे पिड मक्कडिअ-कलस-थभस्स ।
दसमसि बारसाहा सपडिग्घउ कलसु पउणदुगुदये ॥ ५३ ॥

प्रासाद के आठवें भाग के प्रमाणवाले मर्कटी (ध्वजादड की पाटली), कलश और स्तम का विस्तार करना प्रासाद के दशवें भाग की द्वारशाखा करनी। कलश के विस्तार से कलश की ऊंचाई पाने दुगुनी करना ॥ ५३ ॥

---

१ 'सोवाणतिण्णि उदए २ दिवड्ढदय' इति पाठान्तरे ।

मंदिर में कैसे २ रूपवाले या सादे स्तंभ रखे जाते हैं, उनमें से कितनेक स्तंभों का स्वरूप—
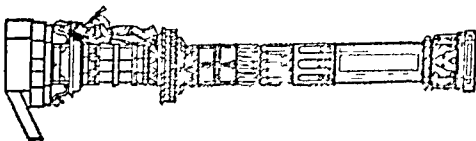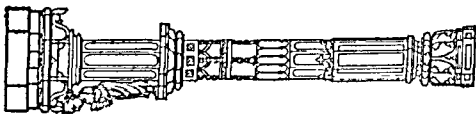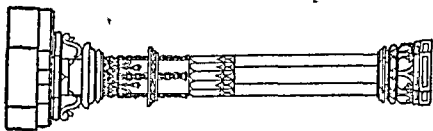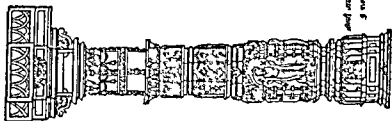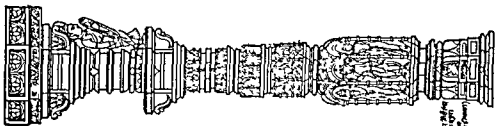
कलश के उदय का प्रमाण प्रासादमंडन में कहा है कि—

"ग्रीवापाठ भवेद् भाग त्रिभागेनाण्डकं तथा ।
कर्णिका भागतुल्येन त्रिभागं बीजपूरकम् ॥"

कलश का स्वरूप—
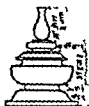
कलश का गला और पीठ का उदय एक २ भाग, अंडक अर्थात् कलश के मध्य भाग का उदय तीन भाग, कर्णिका का उदय एक भाग और बीजोरा का उदय तीन भाग । एवं कुल नव भाग कलश के उदय के हैं ।

प्रक्षालन आदि के जल निकलने की नाली का मान—

जलनालियाउ फरिस करतगे चउ जवा कमेणुच ।
जगई अ भित्तिउदए छज्जइ समचउदिसेहिं पि ॥ ५४ ॥

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में जल निकलने की नाली का उदय चार जव करना । पीछे प्रत्येक हाथ चार २ जव उदय में बढाना । जगती के उदय में और दीवार (मंडोवर) के छज्जे के ऊपर चारों दिशा में जलनालिका करना चाहिये ॥ ५४ ॥

प्रासादमंडन में कहा है कि—

"मंडपे ये स्थिता देवास्तेषां वामे च दक्षिणे ।
प्रणालं कारयेद् धीमान् जगत्यां चतुरो दिशः ॥"

मंडप में जो देव प्रतिष्ठित हों उनके प्रक्षालन का पानी जाने की नाली बाँयीं और दक्षिण ये दो दिशा में बनावें, तथा जगती की चारों दिशा में नाली करें ।

कौन २ वस्तु समसूत्र में रखना—

आइपट्टस्स हिट्ठ छज्जइ हिट्ठ च सव्वसुत्तेग ।
उदुंबर सम कुंभि अ थंभ समा थंभ जाणेह ॥ ५५ ॥

पाट के नीचे और छज्जा के नीचे सब समसूत्र में रखना चाहिये । देहली के बराबर सब कुंभी और स्तंभ के बराबर सब स्तंभ करना चाहिये ॥ ५५ ॥

चौबीस जिनालय का क्रम—

अग्गे दाहिण-वामे अट्ठट्ठजिणिंदगेह चउवास ।
मूलसिलागाउ इम पकीरए जगइ मज्झम्मि ॥ ५६ ॥

चौबीस जिनालयवाला मन्दिर करना हो तो बीच के मुख्य मन्दिर के सामने, दाहिनी और बाँयीं तरफ इन तीनों दिशाओं में आठ आठ देवकुलिका (देहरी) जगती के भीतर करना चाहिये ॥ ५६ ॥

चौबीस जिनालय में प्रतिमा का स्थापन क्रम—

रिसहाई-जिणपती सीहदुवारस्स दाहिणदिसाओ ।
ठाविज्ज सिट्ठिमग्गे सव्वेहिं जिणालए एव ॥ ५७ ॥

देवकुलिका में सिंहद्वार के दक्षिण दिशा से (अपनी बाँयीं ओर से) क्रमशः ऋषभदेव आदि जिनेश्वर की पंक्ति सृष्टिमार्ग से (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इस क्रम से) स्थापन करना । इस प्रकार समस्त जिनालय में समझना ॥ ५७ ॥

चउवीसतित्थमज्झे जं एगं मूलनायगं हवइ ।
पंतीइ तस्स ठाणे सरस्सई ठवसु निब्भंतं ॥ ५८ ॥

चौबीस तीर्थंकरों में से जो कोई एक मूलनायक हो, उस तीर्थंकर की पंक्ति के स्थान में सरस्वती देवी को स्थापित करना चाहिये ॥ ५८ ॥

बावन जिनालय का क्रम—

चउतीस वाम-दाहिण नव पुट्ठि अट्ठ पुरओ अ देहरय ।
मूलपासाय एगं बवाणजिनालये एव ॥ ५९ ॥

चौंतीस देहरी बीच प्रासाद के बाँयीं और दक्षिण तरफ अर्थात् दोनों बगल में सत्रह सत्रह देहरी, नव देहरी पिछले भाग में, आठ देहरी आगे तथा एक मध्य का मुख्य प्रासाद, इस प्रकार कुल बावन जिनालय समझना चाहिये ॥ ५६ ॥

बहत्तर जिनालय का क्रम—

पणवीस पणवीसं दाहिण-वामेसु पिट्ठि इकार ।
दह अग्गे नायव्व इअ बाहत्तरि जिणिदाल ॥ ६० ॥

मध्य मुख्य प्रासाद के दाहिनी और बाँयीं तरफ पच्चीस पच्चीस, पिछाडी ग्यारह, आगे दस और एक बीच में मुख्य प्रासाद, एवं कुल बहत्तर जिनालय जानना ॥६०॥

शिखरबद्ध लकड़ी के प्रासाद का फल—

अग विभूसण सहिय पासाय सिहरबद्ध कट्ठमय ।
नहु गेहे पूइज्जइ न धरिज्जइ किंतु जत्तु वर ॥ ६१ ॥

कोना, प्रतिरथ और भद्र आदि अंगवाला, तथा तिलक तवंगादि विभूषण वाला शिखरबद्ध लकड़ी का प्रासाद घर में नहीं पूजना चाहिये और रखना भी नहीं चाहिये । किन्तु तीर्थ यात्रा में साथ हो तो दोष नहीं ॥ ६१ ॥

जत्त कए पुणु पच्छा ठविज्ज रहमाल अहव सुरभवणे ।
जेण पुणो तस्सरिसो करइ जिणजत्तवरसघो ॥ ६२ ॥

तीर्थ यात्रा से वापिस आकर शिखरबद्ध लकड़ी के प्रासाद को रथशाला या देवमन्दिर में रख देना चाहिये कि फिर कभी उसके जैसा जिन यात्रा संघ निकालने में काम आवे ॥ ६२ ॥

गृहमन्दिर का वर्णन—

गिहदेवाल कीरइ दारुमयविमाणपुप्फयं नाम ।
उवपीढ पीठ फरिस जहुत्त चउरंस तस्सुवरिं ॥ ६३ ॥

पुष्पक विमान के आकार सदृश लकड़ी का घर मंदिर करना चाहिये। उपपीठ, पीठ और उसके ऊपर समचौरस फरश आदि जैसा पहले कहा है वैसा करना ॥६३॥

चउ थभ चउ दुवार चउ तोरण चउ दिसेहिं छज्जउडे ।
पच कणयीरसिहर एग दु ति वारंगसिहर वा ॥ ६४ ॥

कोने पर एक एक गुम्मज) करना चाहिये। एक द्वार या दो द्वार या तीन द्वार वाला और एक शिखर (गुम्मज) वाला भी बना सकते हैं ॥ ६४ ॥

अह भित्ति छज्ज उवमा सुरालय आउ सुद्ध कायव्व ।
समचउरस गब्भे तत्तो अ सवायउ उदएसु ॥ ६५ ॥

दीवार और छज्जा युक्त गृहमंदिर बराबर शुभ आय मिला कर करना चाहिये। गर्भ भाग समचौरस और गर्भ भाग से सवाया उदय में करना चाहिये ॥ ६५ ॥

गब्भाओ हवइ छज्जु सवाउ सतिहाउ दिवड्ढु वित्थारे ।
वित्थाराओ सवाओ उदयेण य निग्गमे अद्धो ॥ ६६ ॥

गर्भ भाग से छज्जा का विस्तार सवाया, अथवा तीसरा भाग करके सहित $1\frac{1}{3}$ या डेढा होना चाहिये। गर्भ के विस्तार से उदय में सवाया और निर्गम आधा होना चाहिये ॥ ६६ ॥

छज्जउड थभ तोरण जुअ उवरे मडओवम सिहर ।
आलयमज्झे पडिमा छज्जय मज्झम्मि जलवट्ट ॥ ६७ ॥

छज्जा, स्तंभ और तोरण युक्त घर मंदिर के ऊपर मण्डप के शिखर के सदृश शिखर अर्थात् गुम्मज करना। गृहमंदिर के मध्य भाग में प्रतिमा रखें और छज्जा में जलवट बनावें ॥ ६७ ॥

गिहदेवालयमिहरे धयदड नो करिज्जइ कयावि ।
आमलसार कलस कीरइ इअ भणिय सत्थेहिं ॥ ६८ ॥

घरमंदिर के शिखर पर ध्वजादंड कभी भी नहीं रखना चाहिय। किन्तु आमलसार कलश ही करना चाहिय ऐसा शास्त्रों में कहा है ॥ ६८ ॥

ग्रंथकार प्रशस्ति—

सिरि-धंधकलस-कुल-संभवेण चंदासुएण फेरेण ।
कन्नाणपुर-ठिएण य निरिक्खिउ पुव्वसत्थाइं ॥ ६९ ॥
सपरोवगारहेऊ नयण 'मुणि' 'राम' 'चंद्र' वरिसम्मि ।
विजयदशमीइ रइअं गिहपडिमालक्खणाईणं ॥ ७० ॥

इति परमजैनश्रीचन्द्राङ्गजठक्कर'फेरु'विरचिते वास्तुसारे
प्रासादविधिप्रकरणं तृतीयम् ।

श्री धंधकलश नामके उत्तम कुल में उत्पन्न हुए सेठ चंद्र का सुपुत्र 'फेरु' ने कल्याणपुर (करनाल) में रहकर और प्राचीन शास्त्रों को देखकर स्वपर के उपकार के लिये विक्रम संवत् १३७२ वर्ष में विजयदशमी के दिन यह घर, प्रतिमा और प्रासाद के लक्षण युक्त वास्तुसार नामका शिल्पग्रंथ रचा ॥ ६९ । ७० ॥

नन्दाष्टनिधिचन्द्रे च वर्षे विक्रमराजत ।
ग्रन्थोऽयं वास्तुसारस्य हिन्दीभाषानुवादितः ॥

इति सौराष्ट्रराष्ट्रान्तर्गत पादलिप्तपुरनिवासिना पण्डितभगवानदासाख्या जैनेनानुवादितं गृह-बिम्ब प्रासादप्रकरणत्रययुक्तं वास्तुसारनामकं प्रकरणं समाप्तम् ।

जैन कीर्तिस्तम्भ चीतोडगढ

ग्रंथकार प्रशस्ति—

सिरि-धंधकलस-कुल-संभवेण चंदासुएण फेरेण ।
कन्नाणपुर-ठिएण य निरिक्खिउं पुव्वसत्थाइं ॥ ६९ ॥
सपरोवगाररहेऊ नयण 'मुणि' 'राम' 'चंद' वरिसम्मि ।
विजयदसमीइ रइअं गिहपडिमालक्खणाईण ॥ ७० ॥

इति परमजैनश्रीचन्द्राङ्गजठक्कुर 'फेरु' विरचिते वास्तुसारे प्रासादविधिप्रकरण तृतीयम् ।

श्री धंधकलश नामके उत्तम कुल में उत्पन्न हुए सेठ चंद्र का सुपुत्र 'फेरु' ने कन्नाणपुर (करनाल) में रहकर और प्राचीन शास्त्रों को देखकर स्वपर के उपकार के लिये विक्रम संवत् १३७२ वर्ष में विजयदशमी के दिन यह घर, प्रतिमा और प्रासाद के लक्षण युक्त वास्तुसार नामका शिल्पग्रंथ रचा ॥ ६९ । ७० ॥

नन्दाष्टनिधिचन्द्रे च वर्षे विक्रमराजतः ।
ग्रंथोऽयं वास्तुसारस्य हिन्दीभाषानुवादितः ॥

इति सौराष्ट्रराष्ट्रान्तर्गत पादलिप्तपुरनिवासिना पण्डितभगवानदासाख्य
जैनेनानुवादितं गृह बिम्ब प्रासादप्रकरणत्रययुक्तं वास्तुसारनामकं
प्रकरणं समाप्तम् ।

जैन कीर्तिस्तम्भ चीतौड़गढ़

सभा मण्डप के गुम्बज का भीतरी दृश्य जैन मन्दिर आबू

गज अश्व नर अार हंस थर वाला कर्णपीठ
तथा रूप वाला मंडोवर का सुन्दर दृश्य
श्री आनन्द शरण जी का मन्दिर आमेर (जयपुर)

मनोहर कारिगरी वाला मंडोवर
जैन मन्दिर आबू ।

लूणवसही जैन मंदिर का भीतरी दृश्य आबू।

जगन्नाथ जी के मन्दिर का विमलता शिखर आमेर (जयपुर)

जगत्शिरोमणी के मन्दिर में गरुड़ जी का मण्डप आमेर (जयपुर)

महाविद्याधर का मूर्ति । जैन मन्दिर आबू

जैसलमेर के जैन मन्दिर के भीतरी का सुन्दर दृश्य

जैन मन्दिर का भीतरी दृश्य   आबू

सभामण्डप का भीतरी दृश्य आबू

वज्रलेप—

मंदिर आदि की अधिक मजबूती के लिये प्राचीन जमाने में जो दीवाल आदि के ऊपर लेप किया जाता था, वह बृहत्संहिता में वज्रलेप के नाम से इस प्रकार प्रसिद्ध है—

आमं तिन्दुकमामं कपित्थकं पुष्पमपि च शाल्मल्याः ।
बीजानि शल्लकीनां धन्वनवल्को वचा चेति ॥ १ ॥
एतैः सलिलद्रोणः क्वाथयितव्योऽष्टभागशेषश्च ।
अवतार्योऽस्य च कल्को द्रव्यैरेतैः समनुयोज्यः ॥ २ ॥
श्रीवासकरसगुग्गुलुभल्लातककुन्दुरूकसर्जरसैः ।
अतसीबिल्वैश्च युतः कल्कोऽयं वज्रलेपाख्यः ॥ ३ ॥

टी०—तिन्दुकं तिन्दुकफलं, आममपक्वम् । कपित्थकं कपित्थकफलमामेव । शाल्मल्याः शाल्मलिवृक्षस्य च पुष्पम् । शल्लकीनां शल्लकीवृक्षाणां बीजानि । धन्वनवल्को धन्वनवृक्षस्य वल्कस्त्वक् । वचा च । इत्येवंप्रकारः ॥ एतैर्द्रव्यैः सह सलिलद्रोणः क्वाथयितव्यः । द्रोणं पलशतद्वयं षट्पञ्चाशदधिकम् । यावदष्टभागावशेषो भवति, द्वात्रिंशत्पलानि अवशिष्यन्त इत्यर्थः । ततोऽष्टभागावशेषोऽवतार्योऽवतारणीयो ग्राह्य इत्यर्थः । अस्य चाष्टभागशेषस्य एतद्द्रव्यैर्वक्ष्यमाणैः कल्कश्चूर्णं समनुयोज्यो विधातव्यः । तच्चूर्णसंयुक्तं कार्यम् इत्यर्थः । कैः इत्याह—श्रीवासकेति श्रीवासकः प्रसिद्धवृक्षनिर्यासः । रसो बोलः, गुग्गुलुः प्रसिद्धः, भल्लातकः प्रसिद्ध एव । कुन्दुरुको देवदारुवृक्षनिर्यासः । सर्जरसः सर्जरसवृक्षनिर्यासः । एतैः तथा अतसी प्रसिद्धा । बिल्वं श्रीफलं एतैश्च युतः समवेतः । अयं कल्को वज्रलेपाख्यः, वज्रलेप इत्याख्या नाम यस्य ॥ १ । २ । ३ ॥

कच्चे तेंदुफल, कच्चे कैथफल, सेमल के पुष्प, शालवृक्ष के बीज धावनवृक्ष की छाल, और वच इन औषधों को बराबर लेकर एक द्रोण भर पानी में अर्थात् २५६ पल=१०२४ तोला पानी में डाल कर क्वाथ बनावें। जब पानी आठवां भाग रह जाय, तब नीचे उतार कर उसमें श्रीवासक (सरो) वृक्ष का गोंद, हीराबोल, गुग्गुल, भीलवाँ, देवदारु का गोंद (कुंदुरु), राल, अलसी और बलफल, इन बराबर औषधों का चूर्ण डाल देने से वज्रलेप तैयार होता है।

वज्रलेप का गुण—

प्रासादहर्म्यवलभी लिङ्गप्रतिमासु कुड्यकूपेषु।
सन्तप्तो दातव्यो वर्षसहस्रायुतस्थायी ॥ ४ ॥
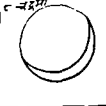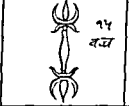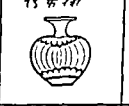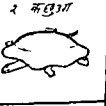
प्रासादो देवप्रासादः। हर्म्यम्। वलभी वातायनम्। लिङ्ग शिवलिङ्गम्। प्रतिमार्चा। एतासु तथा कुड्येषु भित्तिषु। कूपेषूदकोद्गारेषु। स तप्तोऽत्युष्णो दातव्यो देयः। वर्षसहस्रायुतस्थायी भवति। वर्षाणां सहस्रायुत वर्षकोटिं तिष्ठतीत्यर्थः॥४॥

उक्त वज्रलेप देवमंदिर, मकान, झरमदा, शिवलिंग, प्रतिमा (मूर्ति), दीवार और कूआँ इत्यादि ठिकाने बहुत गरम २ लगाने से उन मकान आदि की करोड़ वर्ष की स्थिति रहती है।

ौबीस तीर्थंकरों के नुक्रमसे ला
१ वृषभ बैल
२ हाथी
३ घोडा
४ बानर
५ क्रौंच
६ पद्म कमल
७ स्वस्तिक
८ चंद्रमा
मगर
१० श्रीवत्स
११ गेंडा
१२ भैंसा
सूअर
१४ सीचाना-बाज
१५ वज्र
१६ हरिण
१७ बकरा
१८ नंद्यावर्त
२ कछुआ
नीलकमल
२२ शंख
२३ सर्प
२४ सिंह

जिनेश्वर देव और उनके शासन देवों का स्वरूप—

जिनेश्वर देव और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप निर्वाणकलिका, प्रवचनसारोद्धार, आचार दिनकर, त्रिषष्ठीशलाकापुरुषचरित्र आदि ग्रंथों में निम्न प्रकार है। उनमें प्रथम आदिनाथ और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तत्राद्यं कनकावदातवृषलाञ्छनमुत्तराषाढाजातं धनूराशिं चेति। तथा तत्तीर्थोत्पन्नगोमुखयक्षं हेमवर्णं गजवाहनं चतुर्भुजं वरदाक्षसूत्रयुत दक्षिणपाणिं मातुलिङ्गपाशान्वितवामपाणिं चेति। तथा तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नामप्रतिचक्राभिधानां यक्षिणीं हेमवर्णां, गरुडवाहनामष्टभुजां वरद बाणचक्रपाशयुक्तदक्षिणकरां धनुर्वज्रचक्राङ्कुशवामहस्तां चेति ॥ १ ॥

प्रथम आदिनाथ (ऋषभदेव) नामके तीर्थंकर सुवर्ण के वर्ण जैसी कान्तिवाले हैं, उनको वृषभ (बैल) का चिन्ह है तथा जन्म नक्षत्र उत्तराषाढा और धनराशि है।

उनके तीर्थ में 'गोमुख' नामका यक्ष सुवर्ण के वर्णवाला, [1]हाथी की सवारी करनेवाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और माला, बाँयी हाथों में बीजोरा और पाश (फाँसी) को धारण करनेवाला है।

उन्हीं आदिनाथ के तीर्थ में अप्रतिचक्रा (चक्रेश्वरी) नामकी देवी सुवर्ण के वर्णवाली, [2]गरुड की सवारी करनेवाली, [3]आठ भुजावाली दाहिनी चार भुजाओं में वरदान, बाण, फाँसी और चक्र बाँयीं चार भुजाओं में धनुष, वज्र, चक्र और अंकुश को धारण करनेवाली है।

---

१ आचारदिनकर में हाथी और बैल ये दो सवारी मानी है।

२ दिगम्बर आदि कईएक जगह सिंह की सवारी और चार भुजावाली भी देखने में आती है। एक श्वेताम्बर ग्रंथ में सिंहारूढा मानी है।

३ रूपमंडन और चतुर्विंशतिका प्रतिमासार में बारह और चार भुजावाली भी मानी है— आठ भुजा में चक्र दो भुजा में वज्र एक भुजा में बीजोरा और एक में वरदान। चार भुजावाली में ऊपर के दोनों हाथों में चक्र और नीचे के दो हाथ वरदान और बीजोरा युक्त माना है।

दूसरे अजितनाथ और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

द्वितीयमजितस्वामिनं हेमाभं गजलाञ्छनं रोहिणीजातं वृषराशिं चेति । तथा तत्तीर्थोत्पन्नं महायक्षाभिधानं यक्षेश्वरं चतुर्मुखं श्यामवर्णं मातङ्गवाहनमष्टपाणिं वरदमुद्गराक्षसूत्रपाशान्वितदक्षिणपाणिं बीजपूरकाऽभयाङ्कुशशक्तियुक्तवामपाणिपल्लवं चेति । तथा तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नामजिताभिधानां यक्षिणीं गौरवर्णां लोहासनाधिरूढां चतुर्भुजां वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणकरां बीजपूरकाङ्कुशयुक्तवामकरां चेति ॥ २ ॥

दूसरे 'अजितनाथ' नामके तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, वे हाथी के लांछनवाले हैं, रोहिणी नक्षत्र में जन्म है और वृष राशि है।

उनके तीर्थ में 'महायक्ष' नामका यक्ष चार मुखवाला, कृष्ण वर्ण का, हाथी के ऊपर सवारी करनेवाला आठ भुजावाला, दाहिनी चार भुजाओं में वरदान मुद्रा, माला और फांसी को धारण करने वाला, बाँयी चार भुजाओं में बीजोरा, अभय, अंकुश और शक्ति को धारण करनेवाला है।

उन्हीं अजितनाथदेव के तीर्थ में 'अजिता' (अजितबला) नामकी यक्षिणी गौरवर्णवाली [1]लोहासन पर बैठनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और पाश (फांसी) को धारण करनेवाली, बाँयी दो भुजाओं में बीजोरा और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ २ ॥

तीसरे संभवनाथ और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा तृतीयं संभवनाथं हेमाभं अश्वलाञ्छनं मृगशिरजातं मिथुनराशिं चेति । तस्मिन्तीर्थे समुत्पन्नं त्रिमुखयक्षेश्वरं त्रिमुखं त्रिनेत्रं श्यामवर्णं मयूरवाहनं षड्भुजं नकुलगदाऽभययुक्तदक्षिणपाणिं मातुलिङ्गनागाक्षसूत्रान्वितवामहस्तं चेति । तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां दुरितारिदेवीं गौर

[1] [illegible]

तीसरे 'सम्भवनाथ' नामके तीर्थंकर हैं उनका वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, घोड़े के लाञ्छन वाले हैं, जन्म नक्षत्र मृगशिर और मिथुन राशि है।

उनके तीर्थ में 'त्रिमुख' नामका यक्ष, तीन मुख, तीन तीन नत्रवाला, कृष्ण वर्ण का, मोर की सवारी करनेवाला, छ भुजावाला, दाहिनी तीन भुजाओं में नौला, गदा और अभय को धारण करनेवाला, बांयीं तीन भुजाओं में बीजोरा, [1]सांप और माला को धारण करनेवाला है।

उसी के तीर्थ में 'दुरितारि' नामकी देवी गौर वर्णवाली, मींढा की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और माला, बांयीं दो भुजाओं में फल[2] और अभय को धारण करनेवाली है ॥ ३ ॥

चौथे अभिनंदनजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा चतुर्थमभिनन्दनजिन कनकद्युतिं कपिलाञ्छनं श्रवणोत्पन्नं मकरराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नमीश्वरयक्षं श्यामवर्णं गजवाहनं चतुर्भुजं मातुलिङ्गाक्षसूत्रयुतदक्षिणपाणिं नकुलाङ्कुशान्वितवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां कालिकादेवीं श्यामवर्णां पद्मासनां चतुर्भुजां वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणभुजां नागाङ्कुशान्वितवामकरां चेति ॥ ४ ॥

अभिनंदन नामके चौथे तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, बंदर का लाञ्छन है, जन्म नक्षत्र श्रवण और मकर राशि है।

उनके तीर्थ में 'ईश्वर' नामके यक्ष कृष्णवर्ण का, हाथी की सवारी करनेवाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में बीजोरा और माला, बांयीं दो भुजाओं में न्यौला और अङ्कुश को धारण करनेवाला है।

---

[1] त्रिषष्टीशलाका पुरुष चरित्र में 'रस्सा' धारण करनेवाला माना है।

[2] चतुर्विंशतिजिनेन्द्रचरित्र में 'फलिसूत्र' सर्प लिखा है। चतुर्विंशतिजिनस्तुति आ दे० ला० सूरत में सचित्र छपी है उसमें 'फल' के ठिकाने फलक (ढाल) दिया है वह अशुद्ध है क्योंकि ऐसा सर्वत्र देखने में आता है कि एक हाथ में खड्ग हो तो दूसरे हाथ में ढाल होती है। परन्तु खड्ग न हो तो ढाल भी नहीं होनी चाहिये। ढाल का सम्बन्ध खड्ग के साथ है। ऐसी कई जगह भूल की है।

उनके तीर्थ में 'कुसुम' नामका यक्ष नीलवर्ण का, हरिण की सवारी करने वाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में [1]फल और अभय बाँयीं दो भुजाओं में न्यौला और माला का धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'अच्युता' (श्यामा) नामकी देवी कृष्ण वर्णवाली, पुरुष की सवारी करनेवाली, [2]चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और बाण, बाँयीं दो भुजाओं में धनुष और अभय को धारण करनेवाली है ॥ ६ ॥

सातवें सुपार्श्वजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा सप्तमं सुपार्श्वं हेमवर्णं स्वस्तिकलाञ्छनं विशाखोत्पन्नं तुलाराशिं चेति । तत्तीर्थोत्पन्नं मातङ्गयक्षं नीलवर्णं गजवाहनं चतुर्भुजं बिल्वपाशयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकाङ्कुशान्वितवामपाणिं चेति । तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां शान्तादेवीं सुवर्णवर्णां गजवाहनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां शूलाभययुतवामहस्तां चेति ॥ ७ ॥

सुपार्श्वजिन नामके सातवें तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, स्वस्तिक लांछन है, जन्म नक्षत्र विशाखा और तुला राशि है।

उनके तीर्थ में 'मातंग' नामका यक्ष नीलवर्ण का, हाथी की सवारी करने वाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में बिलु फल और पाश (फाँसी), बाँयीं दो भुजाओं में [3]न्यौला और अङ्कुश को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'शान्ता' नामकी देवी सुवर्ण वर्णवाली, हाथी के ऊपर सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और माला, बाँयीं दो भुजाओं में शूली और अभय को धारण करनेवाली है ॥ ७ ॥

---

१ दे ला सूरत में छपी हुई च० वि० जि० स्तुति में फल के ठिकान बाण बताया है वह अशुद्ध है।

२ आचारदिनकर में दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और पाश, बाँयीं दो भुजाओं में बीजारा और अङ्कुश धारण करना माना है।

३ आचारदिनकर में 'वज्र' लिखा है।

आठवें चन्द्रप्रभजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथाष्टमं चन्द्रप्रभजिनं धवलवर्णं चन्द्रलाञ्छनं अनुराधोत्पन्नं वृश्चिक राशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्न विजययक्षं हरितवर्णं त्रिनेत्रं हंसवाहनं द्विभुजं दक्षिणहस्ते चक्रं वामे मुद्‌गरमिति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां भृकुटिदेवीं पीतवर्णां वराह (बिडाल ?) वाहनां चतुर्भुजां खड्‌गमुद्‌गरान्वितदक्षिणभुजां फलकपरशुयुतवामहस्तां चेति ॥ ८ ॥

चन्द्रप्रभजिन नामके आठवें तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सफेद है, चन्द्रमा का लांछन है, जन्म नक्षत्र अनुराधा और वृश्चिक राशी है।

उनके तीर्थ में 'विजय' नामका यक्ष [1]हरावर्ण वाला, तीन नेत्रवाला, हंस की सवारी करनेवाला, दो भुजावाला, दाहिनी भुजा में [2]चक्र और बांयें हाथ में मुद्गर को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'भृकुटि' (ज्वाला) नामकी देवी पीले वर्ण की, 'वराह या बिलाव (?) की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में खड्‌ग और मुद्गर, बांयीं दो भुजाओं में ढाल और फरसा को धारण करनेवाली है ॥८॥

नववें सुविधिजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा नवमं सुविधिजिनं धवलवर्णं मकरलाञ्छनं मूलनक्षत्रजातं धनूराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नमजितयक्षं श्वेतवर्णं कूर्मवाहनं चतुर्भुजं मातुलिङ्गाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकुन्तान्वितवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां सुतारादेवीं गौरवर्णां वृषवाहनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणभुजां कलशाङ्कुशान्वितवामपाणिं चेति ॥ ९ ॥

---

१ [illegible] ही [illegible] है। २ [illegible] है।

३ [illegible] है। [illegible] ([illegible]) की [illegible] है।

१ आदिनाथ (ऋषभदेव) के शासनदेव और देवी—

२ अजितनाथ के शासनदेव और देवी—

३ सभवनाथ के शासनदेव और देवी–

४ अभिनदनजिन के शासनदेव और देवी–

५ सुमतिनाथ के शासनदेव और देवी—

६ पद्मप्रभजिन के शासनदेव और देवी—

७ सुपार्श्वजिन के शासनदेव और देवी–

८ चन्द्रप्रभुजिन के शासनदेव और देवी–

सुविधिजिन नामके नववें तीर्थंकर हैं उनके शरीर का वर्ण श्वेत है, मगर का लांछन, जन्म नक्षत्र मूल और धन राशि है।

उनके तीर्थ में 'अजित' नामका यक्ष श्वेत वर्ण का, कछुए की सवारी करने वाला, चार भुजावाला दाहिनी दो भुजाओं में बीजोरा और माला, बांयी दो भुजाओं में न्योला और भाला को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'सुतारा' नामकी देवी गौरवर्ण की, वृषभ (बैल) की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और माला; बांयी दो भुजाओं में कलश और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ ९ ॥

दसवें शीतलजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा दशमं शीतलनाथं हेमाभं श्रीवत्सलाञ्छनं पूर्वाषाढोत्पन्नं धनूराशिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नं ब्रह्मयक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं धवलवर्णं पद्मासनमष्टभुजं मातुलिङ्गमुद्गरपाशाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकगदाङ्कुशाक्षसूत्रान्वितवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नामशोकां देवीं मुद्गवर्णां पद्मवाहनां चतुर्भुजां वरदपाशयुक्तदक्षिणकरां फलाङ्कुशयुक्तवामकरां चेति ॥ १० ॥

शीतलजिन नाम के दसवें तीर्थंकर हैं, उनका वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, श्रीवत्स का लांछन, जन्म नक्षत्र पूर्वाषाढा और धनु राशि है।

उनके तीर्थ में 'ब्रह्म' नाम का यक्ष चार मुखवाला, प्रत्येक मुख तीन तीन नेत्रवाला, सफेद वर्ण का, कमल के आसनवाला, आठ भुजा वाला, दाहिने चार हाथों में बीजोरा, मुद्गर, पाश, और अभय; बांये चार हाथों में न्योला, गदा, अंकुश और माला को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'अशोका' नाम की देवी मूंग के वर्णवाली, कमल के आसनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और पाश, बांयी दो भुजाओं में फल और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ १० ॥

---

१ ... मूल में नहीं ... [illegible]
२०

ग्यारहवें श्रेयांसजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथैकादशं श्रेयांसं हेमवर्णं गण्डकलाञ्छनं श्रवणोत्पन्नं मकरराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नमीश्वरयक्षं धवलवर्णं त्रिनेत्रं वृषभवाहनं चतुर्भुजं मातुलिङ्गगदान्वितदक्षिणपाणिं नकुलाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां मानवीं देवीं गौरवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां वरदमुद्गरान्वितदक्षिणपाणिं कलशाङ्कुशयुक्तवामकरां चेति ॥ ११ ॥

श्रेयांसजिन नाम के ग्यारहवें तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, गडेंगी का लाञ्छन है, जन्म नक्षत्र श्रवण और मकर राशी है।

उनके तीर्थ में 'ईश्वर' नाम का यक्ष सफेद वर्णवाला, तीन नेत्रवाला, बैल की सवारी करनेवाला, चार भुजावाला दाहिनी दो भुजाओं में बीजोरा और गदा, बाँयीं दो भुजाओं में न्यौला और माला को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'मानवी' (श्रीवत्सा) नामकी देवी गौरवर्णवाली, सिंह की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और [1]मुद्गर, बाँयीं दो भुजाओं में [2]कलश और अङ्कुश को धारण करनेवाली है ॥ ११ ॥

बारहवें वासुपूज्यजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा द्वादशं वासुपूज्यं रक्तवर्णं महिषलाञ्छनं शतभिषजि जातं कुम्भराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं कुमारयक्षं श्वेतवर्णं हंसवाहनं चतुर्भुजं मातुलिङ्गबाणान्वितदक्षिणपाणिं नकुलकधनुर्युक्तवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां प्रचण्डादेवीं श्यामवर्णां अश्वारूढां चतुर्भुजां वरदशक्तियुक्तदक्षिणकरां पुष्पगदायुक्तवामपाणिं चेति ॥ १२ ॥

वासुपूज्यजिन नामके बारहवें तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण लाल है, भैंसा के लाञ्छनवाले हैं, जन्मनक्षत्र शतभिषा और कुम्भराशि है।

उनके तीर्थ में 'कुमार' नाम का यक्ष सफेद वर्णवाला, हंस की सवारी करनेवाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में बीजोरा और बाण को, बाँयें दो हाथों में न्यौला और धनुष को धारण करनेवाला है।

---

१ [illegible] लिखा है। २ [illegible] लिखा है।

उनके तीर्थ में 'प्रचण्डा' (प्रवरा) नाम की देवी कृष्ण वर्णवाली, घोड़े पर सवारी करने वाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और शक्ति, बाँयीं दो भुजाओं में पुष्प और गदा को धारण करनेवाली है ॥ १२ ॥

तेरहवें विमलजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा त्रयोदश विमलनाथ कनकवर्ण वराहलाञ्छन उत्तरभाद्रपदा-जात मीनराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्न षण्मुखं यक्षं श्वेतवर्णं शिखिवाहनं द्वादशभुजं फलचक्रबाणखड्गपाशाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणपाणिं, नकुलचक्रधनुःफलकाङ्कुशाभययुक्तवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां विदितां देवीं हरितालवर्णां पद्मारूढां चतुर्भुजां बाणपाशयुक्तदक्षिणपाणिं धनुर्नागयुक्तवामपाणिं चेति ॥ १३ ॥

विमलजिन नाम के तेरहवें तीर्थंकर सुवर्ण वर्णवाले हैं, सूअर के लांछनवाले हैं, जन्म नक्षत्र उत्तराभाद्रपदा और मीन राशि है।

उनके तीर्थ में 'षण्मुख' नाम का यक्ष सफेद वर्ण का, मयूर की सवारी करने वाला, बारह भुजावाला, दाहिनी छः भुजाओं में [1]फल, चक्र, बाण, खड्ग, पाश और माला बाँयीं छः भुजाओं में न्यौला, चक्र, धनुष, ढाल, अंकुश और अभय को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'विदिता' (विजया) नाम की देवी हरताल के वर्णवाली, कमल के आसनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में बाण और पाश तथा बाँयीं दो भुजाओं में धनुष और साँप को धारण करनेवाली है ॥ १३ ॥

चौदहवें अनन्तजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा चतुर्दशं अनन्त जिनं हेमवर्णं श्येनलाञ्छन स्वातिनक्षत्रोत्पन्न तुलाराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्न पातालयक्षं त्रिमुखं रक्तवर्णं मकरवाहनं षड्भुजं पद्मखड्गपाशयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलफलकाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं

1 दे० सा० सूरत में च० वि० जि० स्तुति में यहां भी चक्र के विधाने काल दिया है उसकी भूल है।

चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां अङ्कुशां देवीं गौरवर्णां पद्मवाहनां चतुर्भुजां खड्गपाशयुक्तदक्षिणकरां चर्मफलकाङ्कुशयुक्तवामहस्तां चेति ॥ १४ ॥

अनन्तजिन नाम के चौदहवें तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सुवर्ण रंग का है, श्येन (बाज) पक्षी के लाञ्छनवाले, जन्म नक्षत्र स्वाति और तुला राशि वाले हैं।

उनके तीर्थ में 'पाताल' नाम का यक्ष, तीन मुखवाला, लाल वर्णवाला, मगर के वाहनवाला, छः भुजावाला, दाहिनी तीन भुजाओं में कमल, खड्ग और पाश, बाँयीं तीन भुजाओं में न्योला, ढाल और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'अङ्कुशा' नाम की देवी गौर वर्णवाली, कमल के वाहनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में खड्ग और पाश; बाँयें दो भुजाओं में ढाल और अङ्कुश को धारण करनेवाली है ॥ १४ ॥

पन्द्रहवें धर्मनाथजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा पञ्चदशं धर्मजिनं कनकवर्णं वज्रलाञ्छनं पुष्योत्पन्नं कर्कराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं किन्नरयक्षं त्रिमुखं रक्तवर्णं कूर्मवाहनं षड्भुजं बीजपूरकगदाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलपद्माक्षमालायुक्तवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां कन्दर्पां देवीं गौरवर्णां मत्स्यवाहनां चतुर्भुजां उत्पलाङ्कुशयुक्तदक्षिणकरां पद्माभययुक्तवामहस्तां चेति ॥ १५ ॥

धर्मनाथजिन नाम के पन्द्रहवें तीर्थंकर हैं, सुवर्ण वर्णवाले, वज्र के लाञ्छनवाले, जन्म नक्षत्र पुष्य और कर्क राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'किन्नर' नाम का यक्ष, तीन मुखवाला, लाल वर्णवाला, कछुए का वाहनवाला[1], छः भुजावाला, दाहिनी भुजाओं में बिजौरा, गदा और अभय, बाँयें हाथों में न्योला, कमल और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'कन्दर्पा' (पन्नगा) नाम की देवी, गौर वर्णवाली, मछली के वाहनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में कमल और अङ्कुश, बाँयीं भुजाओं में पद्म और अभय को धारण करनेवाली है ॥ १५ ॥

१—आ० दि० जि० [illegible] में दाहिने हाथ में [illegible] और बाँये हाथ में [illegible], [illegible] लिखा है।

९ सुविधिजिन के शासनदेव और देवी–

१० शीतलजिन के शासनदेव और देवी–

११ श्रेयासजिन के शासनदेव और देवी–

१२ वासुपूज्यजिन क शासनदेव और देवी–

१३ विमलनाथ के शासनदेव और देवी–

१४ अनन्तनाथ के शासनदेव और देवी–

१५ धर्मनाथ के शासनदेव और देवी–

१६ शान्तिनाथ के शासनदेव और देवी–

तथा षोडश शान्तिनाथं हेमवर्णं मृगलाञ्छनं भरण्यांजातं मेषराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं गरुडयक्षं वराहवाहनं क्रोडवदनं श्यामवर्णं चतुर्भुजं बीजपूरकपद्मयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलाक्षसूत्रवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्ना निर्वाणी देवी गौरवर्णा पद्मासना चतुर्भुजा पुस्तकोत्पल युक्तदक्षिणकरा कमण्डलुकमलयुतवामहस्ता चेति ॥ १६ ॥

शान्तिजिन नाम के सोलहवें तीर्थंकर हैं, ये सुवर्ण वर्ण वाले, हरिण के लाञ्छनवाले, जन्मनक्षत्र भरणी और मेष राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'गरुड' नाम का यक्ष 'सूअर के वाहनवाला, सूअर के मुखवाला, कृष्णवर्णवाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में बीजोरा और कमल, बांयें दो हाथों में न्यौला और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'निर्वाणी' नाम की देवी 'गौरवर्णवाली, कमल के आसनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में पुस्तक और कमल; बांयीं भुजाओं में कमंडलु और कमल को धारणकरनेवाली है ॥ १६ ॥

सत्रहवें कुंथुजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा सप्तदशं कुन्थुनाथं कनकवर्णं छागलाञ्छनं कृत्तिकाजातं वृषभराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं गन्धर्वयक्षं श्यामवर्णं हंसवाहनं चतुर्भुजं वरदपाशान्वितदक्षिणभुजं मातुलिङ्गाङ्कुशाधिष्ठितवामभुजं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्ना बला देवी गौरवर्णां मयूरवाहनां चतुर्भुजां बीजपूरकशूलान्वित दक्षिणभुजां मुषुण्डिपद्मान्वितवामभुजां चेति ॥ १७ ॥

कुन्थुजिन नाम के सत्रहवें तीर्थंकर हैं, ये सुवर्ण वर्णवाले, बकरे के लाञ्छन वाले, जन्मनक्षत्र कृत्तिका और वृष राशिवाले हैं।

---

१ त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र में 'हाथी' की सवारी लिखा है।

२ आचारदिनकर में सुवर्ण वर्णवाली लिखा है।

उनके तीर्थ में 'गधर्व' नाम का यक्ष कृष्ण वर्णवाला, हंस के वाहनवाला, चार भुजावाला, दाहिनी भुजाओं में वरदान और पाश, बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और अंकुश को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'वला' (अच्युता) नाम की देवी [1]गौरवर्णवाली, मोर के वाहनवाली, चार भुजावाली, दाहिने हाथों में बीजोरा और शूली को, बाँयीं हाथों में लोहे की कीलें लगी हुई गोल [2]लकड़ी और कमल को धारण करनेवाली है ॥ १७ ॥

अठारहवें अरनाथ और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा अष्टादशम अरनाथ हेमाभ नन्द्यावर्त्तलाञ्छन रेवतीनक्षत्रजात मीनराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्न यक्षेन्द्रयक्ष षण्मुख त्रिनेत्र श्यामवर्ण शङ्ख वाहन द्वादशभुज मातुलिंगबाणखड्गमुद्गरपाशाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुल धनुश्चर्मफलकशूलाङ्कुशाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्ना धारिणी देवी कृष्णवर्णा चतुर्भुजा पद्मासना मातुलिङ्गोत्पलान्वित-दक्षिणभुजा पाशाक्षसूत्रान्वितवामकरा चेति ॥ १८ ॥

अठारहवें 'अरनाथ' नाम के तीर्थंकर हैं, वे सुवर्ण वर्णवाले, नन्दावर्त्त के लाञ्छनवाले, जन्मनक्षत्र रेवती और मीन राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'यक्षेन्द्र' नाम का यक्ष छः मुखवाला, प्रत्येक मुख तीन २ नेत्रवाला, कृष्ण वर्णवाला, शंख का वाहनवाला, बारह भुजावाला, दाहिने हाथों में बीजोरा, बाण खड्ग, मुद्गर पाश और अभय, बाँयें हाथों में न्योला धनुष, ढाल, शूल, अंकुश और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'धारिणी' नाम की देवी कृष्ण वर्णवाली, चार भुजावाली, [3]कमल के आसनवाली, दाहिनी भुजाओं में बीजोरा और कमल, बाँयीं भुजाओं में पाश और माला को धारण करनेवाली है ॥ १८ ॥

---

१ आ० दि० और प्र सा० में सुवर्ण वर्णवाली माना है।

२ 'भुषुण्डी स्यात् दारुमयी वृत्तायःकीलसंचिता' इति हैमकोश।

३ प्रवचनसारोद्धार त्रिषष्टीशलाकापुरुषचरित्र और आचारदिनकर में 'पद्म' लिखा है।

उन्नीसवें मल्लिजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथैकोनविंशतितमं मल्लिनाथं प्रियङ्गुवर्णं कलशलाञ्छनम् अश्विनीनक्षत्र जातं मेषराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं कुबेरयक्षं चतुर्मुखमिन्द्रायुधवर्णं गरुडवदनं गजवाहनं अष्टभुजं वरदपरशुशूलाभययुक्तदक्षिणपाणिं बीजपूरकशक्तिमुद्गराक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां वैरोट्यां देवीं कृष्णवर्णां पद्मासनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां मातुलिंगशक्तियुतवामहस्तां चेति ॥ १९ ॥

मल्लिनाथ नामके उन्नीसवें तीर्थंकर हैं, ये प्रियगु (हरे) वर्णवाले, कलश के लाञ्छनवाले, जन्मनक्षत्र, अश्विनी और मेष राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'कुबेर' नामका यक्ष चार मुखवाला, इंद्र के आयुध के वर्णवाला (पचरंगी), गरुड़ के जैसा मुखवाला, हाथी की सवारी करनेवाला, आठ भुजावाला, दाहिनी भुजाओं में वरदान, फरसा, शूल और अभय का, बाँयीं भुजाओं में बीजोरा, शक्ति, मुद्गर और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'वैरोट्या' नामकी देवी कृष्ण वर्णवाली, कमल के आसनवाली, चार भुजा वाली, दाहिने भुजाओं वरदान और माला, बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और शक्ति को धारण करनेवाली है ॥ १९ ॥

बीसवें मुनिसुव्रतजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा विंशतितमं मुनिसुव्रतं कृष्णवर्णं कूर्मलाञ्छनं श्रवणनक्षत्रजातं मकरराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं वरुणयक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं धवलवर्णं वृषभवाहनं जटामुकुटमण्डितं अष्टभुजं मातुलिंगगदाबाणशक्तियुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकपद्मधनुःपरशुयुतवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां नरदत्तां देवीं गौरवर्णां भद्रासनारूढां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां बीजपूरकशूलयुतवामहस्तां चेति ॥ २० ॥

मुनिसुव्रतजिन नामके बीसवें तीर्थंकर हैं, ये कृष्ण वर्णवाले, कछुए के लांछनवाले, जन्म नक्षत्र श्रवण और मकर राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'वरुण' नामका यक्ष चार मुखवाला, प्रत्येक मुख तीन २ नेत्र वाला, सफेद[1] वर्णवाला, बैल के वाहनवाला, शिरपर जटा के मुकुट से सुशोभित, आठ भुजावाला, दाहिनी भुजाओं में बीजोरा, गदा, बाण और शक्ति को, बाँयीं भुजाओं में न्यौला, कमल[2], धनुष और फरसा को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'नरदत्ता' नामकी देवी गौर वर्णवाली[3], भद्रासन पर बैठी हुई, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में वरदान और माला, बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और शूल को धारण करनेवाली है ॥ २० ॥

इक्कीसवें नमिजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथैकविंशतितम नमिजिन कनकवर्ण नीलोत्पललाञ्छनं अश्विनीजातं मेषराशिं चेति । तत्तीर्थोत्पन्नं भृकुटियक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं हेमवर्णं वृषभवाहनं अष्टभुजं मातुलिङ्गशक्तिमुद्गराभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलपरशुवज्राक्षसूत्रवामपाणिं चेति । नमेर्गान्धारीदेवीं श्वेता हंसवाहनां चतुर्भुजां वरदखड्ग युक्तदक्षिणभुजद्वयां बीजपूरकुंभ(कुन्त ?)युतवामपाणिद्वयां चेति ॥२१॥

नमिजिन नामके इक्कीसवें तीर्थंकर हैं, ये सुवर्ण वर्णवाले, नील कमल के लांछनवाले, जन्म नक्षत्र अश्विनी और मेष राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'भृकुटि' नामका यक्ष चार मुखवाला, प्रत्येक मुख तीन २ नेत्रवाला, सुवर्ण वर्णवाला, बैल का वाहनवाला, आठ भुजावाला, दाहिने हाथों में बीजोरा, शक्ति, मुद्गर और अभय; बाँयां हाथों में न्यौला, फरसा, वज्र और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'गांधारी' नामकी देवी सफेद वर्णवाली, हंस के वाहनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में वरदान और तलवार, बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और कुम्भकलश (माला?) को धारण करनेवाली है ॥ २१ ॥

---

१ प्रवचनसारोद्धार में कृष्णवर्ण लिखा है।

२ च त्रि० त्रि० चरित्र में माला लिखा है।

३ प्रवचनसारोद्धार और आचारदिनकर में सुवर्ण वर्ण लिखा है

१७ कुंथुनाथ के शासनदेव और देवी–

१८ अरनाथ के शासनदेव और देवी–

१६ मल्लिनाथ के शाम्नदेव और देवी–

२० मुनिसुव्रताजिन के शासनदेव और देवी–

२१ नमिनाथजिन के शासनदेव और देवी-

२२ नेमिनाथजिन के शासनदेव और देवी-

२३ पार्श्वनाथजिनके शासनदेव और देवी–

२४ महावीरजिनके शासनदेव और देवी–

उनके तीर्थ में 'पार्श्व' नामका यक्ष हाथी के मुखवाला, सिर पर साँप की फणीवाला, कृष्ण वर्णवाला, कछुए की सवारी करनेवाला, चार भुजावाला, दाहिनी भुजाओं में बीजोरा और [1]साँप; बाँयीं भुजाओं में न्यौला और साँप को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'पद्मावती' नामकी देवी सुवर्ण वर्णवाली, [2]मुर्गे की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में कमल और पाश, बाँयीं भुजाओं में फल और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ २३ ॥

चौवीसवें महावीरजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा चतुर्विंशतितमं वर्द्धमानस्वामिनं कनकप्रभं सिंहलाञ्छनं उत्तराफाल्गुन्या जातं कन्याराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं मातङ्गयक्षं श्यामवर्णं गजवाहनं द्विभुजं दक्षिणे नकुलं वामे बीजपूरकमिति। तत्तीर्थोत्पन्नां सिद्धायिकां हरितवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां पुस्तकाभययुक्तदक्षिणकरां मातुलिङ्गवीणान्वितवामहस्तां चेति ॥ २४ ॥

वर्द्धमान स्वामी (महावीर स्वामी) नामके चौवीसवें तीर्थंकर हैं, ये सुवर्ण वर्णवाले, सिंह के लांछनवाले, जन्म नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी और कन्या राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'मातंग' नामका यक्ष कृष्ण वर्णवाला, हाथी की [3]सवारी करनेवाला, दो भुजावाला, दाहिने हाथ में न्यौला और बाँयीं हाथ में बीजोरा को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'सिद्धायिका' नामकी देवी हरे वर्णवाली, सिंह की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में पुस्तक और अभय, [4]बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और वीणा को धारण करनेवाली है ॥ २४ ॥

---

१ आचारदिनकर में 'गदा' लिखा है।

२ प्रवचनसारोद्धार त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र और आचारदिनकर में—'कुर्कुटोरगवाहना' अर्थात् कुर्कुट जाति के सांप की सवारी लिखा है।

३ च० वि० जि० चरित्र में हाथी का वाहन लिखा है।

४ आचारदिनकर में बाँयें हाथों में पाश और कमल धारण करना लिखा है।

सोलह विद्यादेवी का स्वरूप।

प्रथम रोहिणीदेवी का स्वरूप—

आद्या रोहिणी धवलवर्णा सुरभिवाहना चतुर्भुजा अक्षसूत्रबाणान्वित दक्षिणपाणिः शङ्खधनुर्युक्तवामपाणिश्चेति ॥ १ ॥

प्रथम 'रोहिणी' नामक विद्यादेवी सफेद वर्णवाली कामधेनु गौ पर सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में माला और बाण तथा बांयीं भुजाओं में शंख और धनुष को धारण करनेवाली है ॥ १ ॥

दूसरी प्रज्ञप्तिदेवी का स्वरूप—

प्रज्ञप्तिः श्वेतवर्णा मयूरवाहना चतुर्भुजा वरदशक्तियुक्तदक्षिणकरा मातुलिंगशक्तियुक्तवामहस्ता चेति ॥ २ ॥

'प्रज्ञप्ति' नामकी विद्यादेवी सफेद वर्णवाली, मोर पर सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और शक्ति तथा बांयीं भुजाओं में बीजोरा और शक्ति को धारण करनेवाली है ॥ २ ॥

आचारदिनकर में दो हाथवाली माना है, एक हाथ में शक्ति और दूसरे हाथ में कमल धारण करनेवाली माना है।

तीसरी वज्रशृंखलादेवी का स्वरूप—

वज्रशृंखला शंखावदाता पद्मवाहना चतुर्भुजा वरदशृंखलान्वित दक्षिणकरा पद्मशृंखलाधिष्ठितवामकरा चेति ॥ ३ ॥

'वज्रशृंखला' नामकी विद्यादेवी शंख के जैसी सफेद वर्णवाली, कमल के आसनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और सांकल तथा बांयीं भुजाओं में कमल और सांकल को धारण करनेवाली है ॥ ३ ॥

आचारदिनकर में सुवर्ण वर्णवाली और दो हाथवाली, एक हाथ में सांकल और दूसरे हाथ में गदा धारण करनेवाली माना है।

चौथी वज्रांकुशी देवी का स्वरूप—

वज्राङ्कुशां कनकवर्णा गजवाहनां चतुर्भुजा वरदवज्रयुतदक्षिणकरा मातुलिङ्गाङ्कुशयुक्तवामहस्ता चेति ॥ ४ ॥

'वज्राङ्कुशा' नामकी विद्यादेवी सुवर्ण के जैसी कान्तिवाली, हाथी की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और वज्र तथा बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ ४ ॥

आचारदिनकर में चार हाथ क्रमशः तलवार, वज्र, ढाल और भाला युक्त माना है।

पाचवीं अप्रतिचक्रादेवी का स्वरूप—

अप्रतिचक्रा तडिद्वर्णा गरुडवाहना चतुर्भुजा चक्रचतुष्टयभूषितकरा चेति ॥ ५ ॥

'अप्रतिचक्रा' नामकी विद्यादेवी बीजली के जैसी चमकती हुई कान्तिवाली, गरुड की सवारी करनेवाली और चारों ही भुजाओं में चक्र को धारण करनेवाली है ॥ ५ ॥

छट्ठी पुरुषदत्तादेवी का स्वरूप—

पुरुषदत्ता कनकावदाता महिषीवाहना चतुर्भुजा वरदासियुक्तदक्षिणकरा मातुलिङ्गखेटकयुतवामहस्ता चेति ॥ ६ ॥

'पुरुषदत्ता' नामकी विद्यादेवी सुवर्ण के जैसी कान्तिवाली, भैंस की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में वरदान और तलवार तथा बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और ढाल को धारण करनेवाली है ॥ ६ ॥

आचारदिनकर में तलवार और ढाल युक्त दो हाथवाली माना है।

सातवीं कालीदेवी का स्वरूप—

काली देवी कृष्णवर्णा पद्मासना चतुर्भुजा अक्षसूत्रगदालंकृतदक्षिणकरा वज्राभययुतवामहस्ता चेति ॥ ७ ॥

१ रोहिणी देवी
२ प्रज्ञप्ति देवी

विद्यादेवियों का स्वरूप–

वेद्यादेवियों का स्वरूप-

विद्यादेवियों का स्वरूप–

'काली' नामकी विद्यादेवी कृष्ण वर्णवाली, कमल के आसनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में अक्षमाला और गदा तथा बांयीं भुजाओं में वज्र और अभय का धारण करनेवाली है ॥ ७ ॥

आचारदिनकर में गदा और वज्रयुक्त दो हाथवाली माना है।

आठवीं महाकालीदेवी का स्वरूप—

महाकाली देवी तमालवर्णा पुरुषवाहना चतुर्भुजा अक्षसूत्रवज्रान्वितदक्षिणकराभयघण्टालंकृतवामहस्ता चेति ॥ ८ ॥

'महाकाली' नामकी विद्यादेवी तमाल् के जैसी वर्णवाली, पुरुष की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में अक्षमाला और वज्र तथा बांयी भुजाओं में अभय और घंटा को धारण करनेवाली है ॥ ८ ॥

आचारदिनकर में सफेद वर्णवाली, दाहिनी भुजाओं में माला और फल तथा बाँयीं भुजाओं में वज्र और घंटा का धारण करनेवाली माना है। किन्तु शोभन मुनिकृत जिनचतुर्विंशति का में 'धृतपविफलाक्षालीघण्टाः करैः' अर्थात् वज्र, फल, माला और घंटा को धारण करनेवाली माना है।

नवमी गौरीदेवी का स्वरूप—

गौरी देवी कनकगौरी गोधावाहना चतुर्भुजा वरदमुसलयुतदक्षिणकरामक्षमालाकुवलयालंकृतवामहस्ता चेति ॥ ९ ॥

'गौरी' नामकी विद्यादेवी सुवर्ण वर्णवाली, गोह (चिपकली) की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में वरदान और मुसल तथा बांयीं भुजाओं में माला और कमल को धारण करनेवाली है ॥ ९ ॥

आचारदिनकर में सफेद वर्णवाली और कमल का धारण करनेवाली माना है।

दसवीं गांधारीदेवी का स्वरूप—

गान्धारीदेवी नीलवर्णा कमलासना चतुर्भुजा वरदमुसलयुतदक्षिणकराभयकुलिशयुतवामहस्ता चेति ॥ १० ॥

'गांधारी' नामकी दशवीं विद्यादेवी नील (आकाश) वर्णवाली, कमल आसनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में वरदान और मुसल तथा भुजाओं में अभय और वज्र को धारण करनेवाली हैं ॥ १० ॥

आचारदिनकर में कृष्ण वर्णवाली तथा मुसल और वज्र को धारण करने माना है।

ग्यारहवीं महाज्वालादेवी का स्वरूप—

सर्वास्त्रमहाज्वाला धवलवर्णा वराहवाहना असंख्यप्रहरणयुतह चेति ॥ ११ ॥

सर्वास्त्रादेवी नामान्तरे 'महाज्वाला' नामकी ग्यारहवीं विद्यादेवी सफेद वाली, सूअर की सवारी करनेवाली और असंख्य शस्त्र युक्त हाथवाली है ॥ ११

आचारदिनकर में बिलाव की सवारी करनेवाली और ज्वालायुक्त दो हाथ माना है। शोभनमुनिकृत जिनचतुर्विंशतिका में वराहक का वाहन माना है।

बारहवीं मानवीदेवी का स्वरूप—

मानवी श्यामवर्णा कमलासना चतुर्भुजा वरदपाशालंकृतदक्षिण अक्षसूत्रविटपालंकृतवामहस्ता चेति ॥ १२ ॥

'मानवी' नामकी बारहवीं विद्यादेवी कृष्ण वर्णवाली, कमल के आसनवा चार भुजावाली, दाहिनी भुजा वरदान और पाश तथा बाँयीं भुजा माला और वृक्ष सुशोभित है ॥ १२ ॥

आचारदिनकर में नील वर्णवाली, नीलकमल के आसनवाली और वृक्ष हाथवाली माना है।

तेरहवीं वैरोट्यादेवी का स्वरूप—

वैरोट्या श्यामवर्णा अजगरवाहना चतुर्भुजा खड्गोरगालंकृतदक्षि हस्ता खेटकाहियुतवामहस्ता चेति ॥ १३ ॥

'वैरोट्या' नामकी तेरहवीं विद्यादेवी कृष्ण वर्णवाली, अजगर की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में तलवार और साँप तथा बाँयीं भुजाओं में ढाल और साँप को धारण करनेवाली माना है ॥ १३ ॥

आचारदिनकर में गौरवर्णवाली, सिंह की सवारी करनेवाली, दाहिना एक हाथ तलवारयुक्त और दूसरा हाथ ऊंचा, बाँया एक हाथ साँपयुक्त और दूसरा वरदानयुक्त माना है।

चौदहवीं अच्छुप्तादेवी का स्वरूप—

अच्छुप्तां तडिद्वर्णां तुरगवाहनां चतुर्भुजां खड्गबाणयुतदक्षिणकरां खेटकाहियुतवामकरां चेति ॥ १४ ॥

'अच्छुप्ता' नामकी चौदहवीं विद्यादेवी बीजली के जैसी कांतिवाली, घोड़े की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में तलवार और बाण तथा बाँयीं भुजाओं में ढाल और साँप को धारण करनेवाली है ॥ १४ ॥

आचारदिनकर और शोभनमुनिकृत चतुर्विंशति जिनस्तुति में साँप के स्थान पर धनुष धारण करने का माना है।

पंद्रहवीं मानसीदेवी का स्वरूप—

मानसीं धवलवर्णां हंसवाहनां चतुर्भुजां वरदवज्रान्वितदक्षिणकरां अक्षवलयाशनियुक्तवामकरां चेति ॥ १५ ॥

'मानसी' नामकी पंद्रहवीं विद्यादेवी सफेद वर्णवाली, हंस की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजा वरदान और वज्र तथा बाँयीं भुजा माला और वज्र से अलङ्कृत है ॥ १५ ॥

आचारदिनकर में सुवर्ण वर्णवाली तथा वज्र और वरदानयुक्त दो हाथ माना है।

---

१ यह पाठ अशुद्ध मालूम होता है। यहाँ धनुष का पाठ होना चाहिए क्योंकि बाण के साथ धनुष का संबंध रहता है।

सोलहवीं महामानसीदेवी का स्वरूप—

महामानसीं देवीं धवलवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां वरदासियुक्तदक्षिणकरां कुण्डिकाफलकयुतवामहस्तां चेति ॥ १६ ॥

'महामानसी' नामकी सोलहवीं विद्यादेवी सफेद वर्णवाली, सिंह की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में वरदान और तलवार तथा बाँयीं भुजाओं में कुंडिका और ढाल को धारण करनेवाली माना है ॥ १६ ॥

आचारदिनकर में तलवार और वरदानयुक्त दो हाथ तथा मगर की सवारी माना है।

अथ विजयादि चार महा प्रतिहारी देवी का स्वरूप।

"द्वारेषु पूर्वविधिनैव सुवर्णवप्रे,
पाशाङ्कुशाऽभयदमुद्‌गरपाणयोऽमूः।
देव्यो जयादि विजयाप्यजिताऽपराजि
ताख्ये च चक्रुरखिलं प्रतिहारकर्म ॥ १ ॥"

पद्मानन्दमहाकाव्ये सर्ग १४ श्लो० ४१

समवसरण के सुवर्णगढ के पूर्वादि द्वारों में पाश, अंकुश, अभय और मुद्‌गर को धारण करनेवाली जया, विजया, अजिता और अपराजिता नामकी चार देवी द्वारपाल का कार्य करती हैं।

१—गोमुख यक्ष का स्वरूप—

सव्योत्तरोर्ध्वकरदीप्रपरश्वधाक्ष-सूत्रं तथाऽधरकराङ्कफलेष्टदानम् ।
प्राग्गोमुखं वृषमुखं वृषगं वृषाङ्क-भक्तं यज कनकभं वृषचक्रशीर्षम् ॥१॥

वृषभ के चिह्नवाले श्री आदिनाथ जिन के अधिष्ठायिक देव 'गोमुख' नामका यक्ष है वह सुवर्ण के जैसी कांतिवाला, गौके मुख सदृश मुखवाला, बैलकी सवारी करने वाला, मस्तक पर धर्मचक्र को धारण करनेवाला और चार भुजावाला है। ऊपर के दाहिने हाथ में माला और बाँये हाथ में फरसा तथा नीचेके बाँये हाथ में बीजोरे का फल और दाहिने हाथमें वरदान धारण करनेवाला है ॥ १ ॥

१—चक्रेश्वरी (अप्रतिहतचक्रा) देवी का स्वरूप—

भर्माभाद्यकरद्वयालकुलिशा चक्राङ्कहस्ताष्टका,
सव्यासव्यशयोल्लसत्फलवरा यन्मूर्तिरास्तेऽम्बुजे ।
तार्क्ष्ये वा सह चक्रयुग्मरुचकत्यागैश्चतुर्भिः करैः,
पञ्चेष्वास शतोन्नतप्रभुनता चक्रेश्वरीं तां यजे ॥ १ ॥
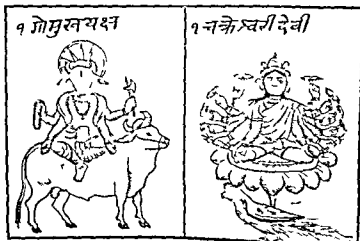
पांचसौ धनुष के शरीर वाले श्रीआदिनाथ जिनेश्वर की शासन देवी 'चक्रेश्वरी' नामकी देवी है। वह सुवर्ण के जैसी वर्ण वाली, कमल के ऊपर बैठी हुई, * गरुड की सवारी करने वाली और बारह भुजावाली है। दो तरफ के दो हाथमें वज्र, दो तरफ के चार २ हाथों में आठ चक्र, नीचे के बाँये हाथमें फल और दाहिने हाथमें वरदान को धारण करने वाली है। प्रकारान्तर से चार भुजा वाली भी मानी है, ऊपर के दोनो हाथों में चक्र, नीचे के बाँये हाथ में बीजोरा और दाहिने हाथ में वरदान को धारण करनेवाली है ॥ १ ॥

२—महायक्ष का स्वरूप—

चक्रत्रिशूलकमलाङ्कुशवामहस्तो निस्त्रिंशदण्डपरशुव्रवराण्यपाणिः ।
चामीकरद्युतिरिभाङ्कनतो महादि-यक्षोऽर्च्यतां (हि) जगतश्चतुराननोऽसौ ॥ २ ॥

हाथी के चिह्नवाले श्री अजितनाथ जिनेश्वर का शासनदेव 'महायक्ष' नाम का यक्ष है। वह सुवर्ण के जैसी कान्ति वाला, हाथी की सवारी करने वाला, चार मुख वाला और आठ भुजा वाला है। बाँये चार हाथों में चक्र, त्रिशूल, कमल और अंकुश को, तथा दाहिने चार हाथों में तलवार, दण्ड, फरसा और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ २ ॥

* वसुनन्दी प्रतिष्ठापाठमें गरुड और कमल का आसन माना है।

चार सौ धनुष के शरीर वाले श्रीसम्भवनाथ की शासनदेवी 'प्रज्ञप्ति' नामकी देवी है। वह सफेद वर्णवाली, पक्षी की सवारी करनेवाली और छह हाथवाली है। हाथों में अर्द्धचन्द्रमा, फरशा, फल, तलवार, इष्टी * (तुम्बी?) और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ ३ ॥

४—यक्षेश्वर यक्ष का स्वरूप—

प्रेङ्खद्धनुःखेटकवामपाणि, सत्कङ्कपत्रास्यपसव्यहस्तम्।

श्यामं करिस्थं कपिकेतुभक्तं, यक्षेश्वरं यक्षमिहार्चयामि ॥ ४ ॥

वानरके चिह्नवाले श्रीअभिनन्दन जिन के शासनदेव 'यक्षेश्वर' नामका यक्ष है, वह कृष्णवर्णवाला, हाथी की सवारी करनेवाला, और चार भुजावाला है। बांये हाथों में धनुष और ढालको तथा दाहिने हाथों में बाण और तलवार को धारण करनेवाला है ॥ ४ ॥

४—वज्रशृङ्खला (दुरितारी) देवी का स्वरूप—

सनागपाशोरुफलाक्षसूत्रा हंसाधिरूढा वरदानुभुक्ता।

हेमप्रभार्द्धत्रिधनुःशतोच-तीर्थेशनम्रा पविशृङ्खलार्चा ॥ ४ ॥

साढे तीन सौ धनुष के शरीर वाले श्रीअभिनन्दन जिन की शासनदेवी 'वज्रशृङ्खला' नाम की देवी है, सुवर्ण के जैसी कान्तिवाली, हंसकी सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में नागपाश, बीजोराफल, माला और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ ४ ॥

* प्रतिष्ठातिलकमें 'पिंडी' लिखा है।

५—तुम्बरु यक्ष का स्वरूप—

> सर्पोपवीतं द्विकपन्नगोर्ध्व-करं स्फुरद्दानफलान्यहस्तम् ।
> कोकाङ्कनम्रं गरुडाधिरूढं श्रीतुम्बरं श्यामरुचिं यजामि ॥ ५ ॥

चकवा के चिह्नवाले श्रीसुमतिनाथ के शासन देव 'तुम्बरु' नामका यक्ष है। यह कृष्ण वर्णवाला, गरुड की सवारी करनेवाला, सर्पका यज्ञोपवीत (जनेऊ) का धारण करनेवाला, और चार भुजावाला है। इसके ऊपर के दोनों हाथों में सर्प का, नीचे के दाहिने हाथ में वरदान और बाँये हाथ में फल को धारण करनेवाला है ॥ ५ ॥

५—पुरुषदत्ता (खड्गवरा) देवी का स्वरूप—

> गजेन्द्रगा वज्रफलोग्रचक्र-वराङ्कहस्ता कनकोज्ज्वलाङ्गी ।
> गृह्णातु दण्डत्रिशतोन्नतार्हन् नतार्चना खड्गवराच्यनःस्वम् ॥ ५ ॥

तीन सौ धनुष शरीर के प्रमाणवाले श्री सुमतिनाथ की शासन देवी 'खड्गवरा' (पुरुषदत्ता) नामकी देवी है। यह सुवर्ण के वर्णवाली, हाथी की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में वज्र, फल, चक्र और वरदान को धारण करनेवाली है।

६—पुष्प यक्ष का स्वरूप—

> मृगारुहं कुन्तवरापसव्य-करं सखेटाऽभयसव्यहस्तम् ।
> श्यामाङ्गमब्जध्वजदेवसेव्यं पुष्पाख्ययक्षं परितर्पयामि ॥ ६ ॥

७—काली (मानवी) देवी का स्वरूप—

> सिता गोवृषगा घण्टा फलशूलवराधृताम् ।
> यजे कालीं द्विकोदण्ड-शतोच्चाङ्गजिनाश्रयाम् ॥ ७ ॥
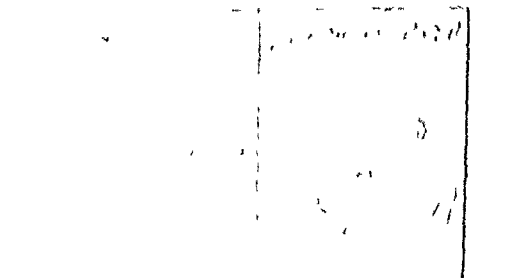
दो सौ धनुष के शरीरवाले श्रीसुपार्श्वनाथ की शासनदेवी 'काली' (मानवी) नामकी देवी है। वह सफेद वर्णवाली, बैलकी सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में घंटा, फल, त्रिशूल और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ ७ ॥

८—श्याम यक्ष का स्वरूप—

> यजे स्वधितिमुद्गरफलाक्षमाला-वराङ्कवामान्यकरं त्रिनेत्रम् ।
> कपोतपत्रं प्रभयाल्पया च, श्यामं कृतेन्दुप्रभनम्रकमम् ॥ ८ ॥

चन्द्रमा के चिह्नवाले श्रीचन्द्रप्रभजिन के शासनदेव 'श्याम' नामका यक्ष है। वह कृष्ण वर्णवाला, कपोत (कबूतर) की सवारी करनेवाला, तीन नेत्रवाला और चार भुजावाला है। बायें हाथों में फरसा और फल को तथा दाहिने हाथों में माला और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ ८ ॥

८—ज्वालिनी (ज्वालामालिनी) देवी का स्वरूप—

> चन्द्रोज्ज्वलां चक्रशरासपाश-चर्मत्रिशूलेषुझषासिहस्ताम् ।
> श्रीज्वालिनीं सार्धधनुःशतोच्च-जिनानतां कोकगतां यजामि ॥ ८ ॥

डेढ सौ धनुष के शरीरवाले श्रीचंद्रप्रभजिन की शासनदेवी 'ज्वालिनी' (ज्वालामालिनी) नामकी देवी है। वह सफेद वर्णवाली, महिष (भैंसा) की सवारी करनेवाली और आठ भुजावाली है हाथों में * चक्र, धनुष, नागपाश, ढाल, त्रिशूल, बाण, मच्छली और तलवार को धारण करनेवाली है ॥ ८ ॥

९—अजित यक्ष का स्वरूप—

सद्दाक्षमालावरदानशक्ति-फलापसव्यापरपाणियुग्मः ।
स्वारूढकूर्मो मकराङ्कभक्तो गृह्णातु पूजामजितः सिताभः ॥ ९ ॥

मगर के चिह्नवाले श्रीसुविधिनाथ के शासनदेव 'अजित' नामका यक्ष है। वह श्वेत वर्णवाला, कछुआ की सवारी करनेवाला और चार हाथ वाला है। दाहिने हाथों में अक्षमाला और वरदान को तथा बाँये हाथों में शक्ति और फल को धारण करनेवाला है ॥ ९ ॥

९—महाकाली (भृकुटी) देवी का स्वरूप—

कृष्णा कूर्मासना धन्व-शताक्षजिनानता ।
महाकालीऽयमे वज्र-फलमुद्गरदानयुक् ॥ ९ ॥

---

* हेलाचार्य विरचित ज्वालामालिनी कल्प में आठ हाथों के शस्त्र—त्रिशूल, पाश, मछली, धनुष, बाण, ढाल, वरदान और चक्र इस प्रकार बतलाये हैं।

देवी है। वह हरे वर्णवाली, काले सुअर की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। वह हाथों में मछली, माला, बीजोरा फल और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ १० ॥
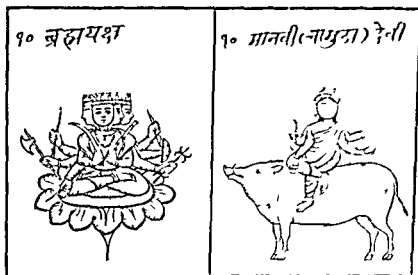
११—ईश्वर यक्ष का स्वरूप—

त्रिशूलदण्डान्वितवामहस्तः करेऽक्षसूत्रं त्वपरे फलं च ।
बिभ्रत् सितो गण्डककेतुभक्त्या ल्लात्वीश्वरोऽर्चो वृषगस्त्रिनेत्र ॥ ११ ॥

गेंडा के चिह्नवाले श्रीश्रेयांसनाथ के शासनदेव 'ईश्वर' नामका यक्ष है। वह सफेद वर्णवाला, बैल की सवारी करनेवाला, तीन नेत्रवाला और चार भुजावाला है। बाँयें हाथों में त्रिशूल और दण्ड को, तथा दाहिने हाथों में माला और फल को धारण करनेवाला है ॥ ११ ॥

११—गौरी (गौमेधकी) देवी का स्वरूप—

समुद्गराब्जकलशां वरदां कनकप्रभाम् ।
गौरीं यजेऽशीतिधनुः प्रांशु देवीं मृगोपगाम् ॥ ११ ॥

अस्सी धनुष के शरीरवाले श्रीश्रेयांसनाथ की शासनदेवी 'गौरी' (गौमेधकी) नाम की देवी है। वह सुवर्ण वर्णवाली, हरिण की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में मुद्गर, कमल, कलश और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ ११ ॥

१३—चतुमुख यक्ष का स्वरूप—

यक्षो हरित् सपरशपरिमाष्टपाणि , कौक्षेयकाक्षमणिखेटकदण्डमुद्रा ।
विभ्रचतुर्भिरपरै शिखिग किराङ्क--नम्र प्रतृप्यतु यथार्थचतुर्मुखाख्य ॥ १३ ॥

सुअर के चिह्नवाले श्रीविमलनाथ के शासनदेव 'चतुर्मुख' नामका यक्ष है। वह हरे वर्णवाला, मोरकी सवारी करनेवाला, * चार मुखवाला और बारह भुजावाला है। उपर के आठ हाथों में फरसा को तथा बाकी के चार हाथों में तलवार, माला, ढाल और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ १३ ॥

१३—वैरोटी देवी का स्वरूप—

षष्टिदण्डोच्चतीर्थेश–नता गोनसवाहना ।
ससर्पचापसर्पषु–र्वैरोटी हरितार्च्यते ॥ १३ ॥

साठ धनुष प्रमाण के शरीरवाले श्रीविमलनाथ की शासनदेवी 'वैरोटी' नामकी देवी है। वह हरे वर्णवाली, साँपकी सवारी करनेवाली, और चार भुजावाली है। उपर के दोनों हाथ में सर्प का, नीचे के दाहिने हाथ में बाण और बाँये हाथ में धनुष को धरण करनेवाली है ॥ १३॥

---

* प्रतिष्ठातिलक में छह मुखवाला माना है। यह व स्तव में यथार्थ है क्योंकि बारह भुजा हैं तो छह मुख होने चाहियें।

१५—किन्नर यक्ष का स्वरूप—

> सचक्रवज्राङ्कुशवामपाणि, समुद्गराक्षालिवरान्यहस्त ।
> प्रवालवर्णस्त्रिमुखो झषस्थो वज्राङ्कभक्तोऽवतु किन्नरोऽर्च्याम् ॥ १५ ॥

वज्र के चिन्हवाले श्रीधर्मनाथ के शासन देव 'किन्नर' नामका यक्ष है। वह प्रवाल (मूँगे) के वर्णवाला, मछली की सवारी करनेवाला, तीन मुखवाला और छह भुजावाला है बायें हाथोंमें चक्र, वज्र और अंकुश को तथा दाहिने हाथों में मुद्गर माला और वरदान का धारण करनेवाला है ॥ १५ ॥

१५—मानसी (परभृता) देवी का स्वरूप—

> साम्बुजधनुर्दानाङ्कुशशरोत्पला व्याघ्रगा प्रवालनिभा ।
> नवपञ्चकचापोच्छ्रितजिननम्रा मानसीह मान्येत ॥ १५ ॥

पेंतालीस धनुष के शरीर वाले श्रीधर्मनाथ की शासन देवी 'मानसी' (परभृता) नामकी देवी है। वह मूँगेके जैसी लाल कांतिवाली, व्याघ्र (नाहर) की सवारी करनेवाली और छह भुजा वाली है। हाथों में कमल, धनुष, वरदान, अंकुश, बाण और कमल का धारण करनेवाली है ॥१५॥

१७—गंधर्व यक्ष का स्वरूप—

> सनागपाशोर्ध्वकरद्वयोऽध -करद्वयात्तेषुधनु सुनील ।
> गन्धर्वयक्ष स्तम्भकेतुभक्त पूजामुपैतु श्रितपक्षियान ॥ १७ ॥

बकरेके चिह्नवाले श्रीकुंथुनाथ के शासनदेव 'गंधर्व' नामका यक्ष है। वह कृष्णवर्ण वाला, पक्षीकी सवारी करनेवाला और चार भुजावाला है। ऊपर के दोनों हाथों में नागपाश को, तथा नीचे के दो हाथों में क्रमशः धनुष और बाण को धारण करनेवाला है ॥ १७ ॥

१७—जया (गान्धारी) देवी का स्वरूप—

> सचक्रशङ्खासिवरां रुक्माभां कृष्णवाहनाम् ।
> चतुर्भुजां कुन्थुजिननम्रां यजे जयाम ॥ १७ ॥

बकरे के चिह्नवाले श्रीकुंथुनाथ की शासनदेवी 'जया' (गांधारी) नाम की देवी है। वह सुवर्णके वर्णवाली, काले सूअर की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में चक्र, शंख, तलवार और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ १७ ॥

१९—कुबेर यक्ष का स्वरूप—

सफलकधनुर्दण्डपद्मखड्गप्रदरसुपाशवरप्रदाष्टपाणिम् ।
गजगमनचतुर्मुखेन्द्रचापद्युतिकलशाङ्कनत यजे कुबेरम् ॥ १९ ॥

कलश के चिह्नवाले श्री मल्लिनाथ के शासन देव ' कुबेर ' नामका यक्ष है । वह इन्द्र धनुष के जैसे वर्णवाला, हाथी की सवारी करनेवाला, चार मुखवाला और आठ हाथवाला है हाथों मे ढाल, धनुष, दड, कमल, तलवार, बाण, नागपाश और वरदान को धारण करनेवाल है ॥ १९ ॥

१९—अपराजिता देवी का स्वरूप—

पञ्चविंशतिचापोच्चदेवसेवापराजिता ।
शरभस्थाच्यते खेटफलासिवरयुक् हरित् ॥ १९ ॥

पचीस धनुष के शरीरवाले श्री मल्लिनाथ की शासन देवी ' अपराजिता ' नामकी देवी है । वह हरे वर्णवाली, अष्टापद की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है । हाथों में ढाल, फल, तलवार और वरदान को धारण करनेवाली है ।

२१—भृकुटी यक्ष का स्वरूप—

खेटासिकोदण्डशराङ्कुशाब्ज-चक्रेष्टदानोल्लसिताष्टहस्तम् ।
चतुर्मुखं नन्दिगमुत्पलाङ्क-मक्तं जपाभं भृकुटिं यजामि ॥ २१ ॥

लाल कमल के चिह्नवाले श्री नमिनाथ के शासन देव 'भृकुटि' नामका यक्ष है। वह लाल वर्णवाला, नन्दी (बैल) की सवारी करनेवाला, चार मुखवाला और आठ हाथवाला है। हाथों में ढाल, तलवार, धनुष, बाण, अंकुश, कमल, चक्र और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ २१ ॥

२१—चामुंडा (कुसुममालिनी) देवी का स्वरूप—

चामुण्डा यष्टिखेटाक्ष-सूत्रखड्गोत्कटा हरित् ।
मकरस्थार्च्यते पञ्च-दशदण्डोन्नतशभाक् ॥ २१ ॥

पंद्रह धनुष के प्रमाण के ऊंचे शरीरवाले श्री नमिनाथ की शासन देवी 'चामुण्डा' नामकी देवी है। वह हरे वर्णवाली, मगर की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में दंड, ढाल, माला और तलवार को धारण करनेवाली है ॥ २१ ॥

और दो भुजावाली है। बायें हाथ में प्रियंकर पुत्र की प्रीति के लिये आम की डाल को, दाहिने हाथ में शुभंकर पुत्र को धारण करनेवाली है।

२३—धरण यक्ष का स्वरूप—

उर्ध्वद्विहस्तधृतवासुकिरुद्भटाध —सव्यान्यपाणिफणिपाशवरप्रणन्ता।
श्रीनागराजककुद धरणोऽभ्रनील , कूर्मश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम्॥

नागराज के चिह्नवाले श्रीपार्श्वनाथ भगवान् के शासन देव 'धरण' नामका यक्ष है, वह आकाश के जैसे नीले वर्णवाला, कछुआ की सवारी करने वाला, मुकुट में साप का चिह्न वाला और चार भुजावाला है। ऊपर के दोनों हाथों में वासुकि (सर्प) को, नीचे के बायें हाथ में नागपाश को और दाहिने हाथ में वरदान को धारण करनेवाला है॥ २३॥

२३—पद्मावती देवी का स्वरूप—

देवी पद्मावती नाम्ना रक्तवर्णा चतुर्भुजा।
पद्मासनाऽङ्कुशं धत्ते स्वक्षसूत्रं च पङ्कजम्॥
अथवा षड्भुजा देवी चतुर्विंशति सद्भुजा।
पाशासिकुन्तबालेन्दु—गदामुसलसंयुतम्॥

भुजाचतुष्क समाख्यात चतुर्विंशतिकैर्युत ।
शङ्खासिचक्रबालेन्दु पद्मोत्पलशरासनम् ॥
शक्तिं पाशाङ्कुश घण्टा बाण मुसलखेटकम् ।
त्रिशूल परशु कुन्त वज्र माला फल गदाम ॥
पत्र च पल्लवं धत्ते वरदा धर्मवत्सला ।

श्रीपार्श्वनाथ की शासन देवी 'पद्मावती' नामकी देवी है। वह लालवर्णवाली, कमल * के आसनवाली और चार भुजाओं में अङ्कुश, माला, कमल और वरदान को धारण करनेवाली है। प्रकारांतर से छह और चौबीस भुजावाली भी माना है। छह हाथों में पाश, तलवार, भाला, बालचन्द्रमा, गदा और मूसल को धारण करती है। चौबीस हाथों में क्रमशः–शंख, तलवार, चक्र, बालचन्द्रमा, सफेद कमल, लाल कमल, धनुष, शक्ति, पाश, अङ्कुश, घंटा, बाण, मूसल, ढाल, त्रिशूल, फरसा, भाला, वज्र, माला, फल, गदा, पान, नवीन पत्तों का गुच्छा और वरदान को धारण करती है ॥ २३ ॥

* आचारदिनकर प्रतिष्ठाकल्प में कुक्कुट सर्प की सवारी [illegible] माना है। मस्तक पर साँप की तीन फणा का चिह्न होता है [illegible] में चार हाथों में पाश, फल, वरदान और अंकुश को धारण करनेवाली माना है।
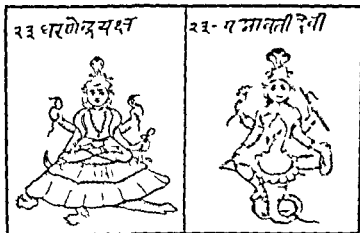
२४—मातग यक्ष का स्वरूप—

> मुद्गप्रभो मूर्द्धनि धर्मचक्र, बिभ्रत्फल वामकरेऽथ यच्छन् ।
> वर करिस्थो हरिकेतुभक्तो, मातङ्गयक्षोऽङ्कतु तुष्टिमिष्टया ॥ २४ ॥

सिंह के चिह्नवाले श्रीमहावीरजिन के शासनदेव 'मातग' नामका यक्ष है। वह मूग के जैसे हरे वर्णवाला, हाथी की सवारी करनेवाला, मस्तक पर धर्मचक्र को धारण करनेवाला और दो भुजावाला है। बाये हाथ मे बीजोराफल, और दाहिने हाथ में वरदान को धारण करनेवाला है ॥ २४ ॥

२४—सिद्धायिका देवी का स्वरूप--

> सिद्धायिका सप्तकरोच्छ्रिताङ्ग-जिनाश्रया पुस्तकदानहस्ताम् ।
> श्रिता सुभद्रासनमत्र यज्ञे, हेमद्युति सिंहगतिं यजेऽहम् ॥ २४ ॥

सात हाथ के ऊंचे शरीरवाले श्रीमहावीरजिन की शासनदेवी 'सिद्धायिका' नामकी देवी है। वह सुवर्णवर्णवाली, भद्रासन पर बैठी हुई, सिंह की सवारी करनेवाली और दो भुजावाली है। बाया हाथ पुस्तक युक्त और दाहिना हाथ वरदान युक्त है ॥ २४ ॥

नैऋत्यकोण के स्वामी, [1]धूम्र के वर्णवा... में [2]मुद्गर को धारण करनेवाले और प्रत (शब... देव को नमस्कार।

५ [3]वरुणदेव का स्वरूप—

ॐ नमो वरुणाय पश्चिमदिगधीश्वरा... हस्ताय मत्स्यवाहनाय च।

पश्चिम दिशा के स्वामी, मेघ के जैसे वर्ण... (फासी) को धारण करनेवाले और मछली की... नमस्कार।

६ [4]वायुदेव का स्वरूप—

ॐ नमो वायवे वायव्यदिगधीशाय... वाहनाय ध्वजप्रहरणाय च।

वायुकोण के स्वामी, धूसर (हलका पील... हरिण की सवारी करनेवाले और हाथ में ध्वजा ... नमस्कार।

७ [5]कुबेरदेव का स्वरूप—

ॐ नमो धनदाय उत्तरदिगधीशाय... श्वेतवस्त्राय नरवाहनाय रत्नहस्ताय च।

उत्तर दिशा के स्वामी, इन्द्र के राजानर्ध... मनुष्य की सवारी करनेवाले और हाथ में रत्न को... देव को नमस्कार।

निर्वाणकलिका में इस प्रकार मतान्तर है—

१ हरित् (हरा) वर्णवाला और २ वज्र का धारण करनेवा...

३ वरुणदेव मकर वर्णवाला और मगर की सवारी करने...

४ वायुदेव भी मकर वर्ण का माना है।

५ कुबेरदेव महानिधि पर बैठे हुए अनेक वर्णवाले बड़ पे... ...न) और गदा को धारण करनेवाले माना है।

८ [1]ईशानदेव का स्वरूप—

ॐ नम ईशानाय ईशानदिगधीशाय श्वेतवर्णाय गजाजिनवृताय वृषभवाहनाय पिनाकशूलधराय च ।

ईशान दिशा के स्वामी, सफेद वर्णवाले, गजचर्म को धारण करनेवाले बैल की सवारीवाले, हाथ में शिवधनु और त्रिशूल को धारण करनेवाले एसे ईशानदेव को नमस्कार ।

९ नागदेव का स्वरूप—

ॐ नमो नागाय पातालाधीश्वराय कृष्णवर्णाय पद्मवाहनाय उरग हस्ताय च ।

पाताललोक के स्वामी, कृष्ण वर्णवाले, कमल के वाहनवाले और हाथ में सर्प को धारण करनेवाले ऐसे नागदेव को नमस्कार ।

१० [2]ब्रह्मदेव का स्वरूप—

ॐ नमो ब्रह्मणे ऊर्ध्वलोकाधीश्वराय काञ्चनवर्णाय चतुर्मुखाय श्वेत वस्त्राय हंसवाहनाय कमलसंस्थाय पुस्तककमलहस्ताय च ।

ऊर्ध्वलोक के स्वामी, सुवर्ण वर्णवाले, चार मुखवाले, सफेद वस्त्रवाले, हंस की सवारी करनेवाले, कमल पर रहनेवाले, हाथ में पुस्तक और कमल को धारण करने वाले ऐसे ब्रह्मदेव को नमस्कार ।

निर्वाणकलिका के मत से इस प्रकार मतान्तर है—

[1] ईशानदेव को तीन नेत्रवाला माना है ।

[2] ब्रह्मदेव सफेद वर्णवाला और हाथ में कमंडलु धारण करनेवाले माना है ।

नव ग्रहों का स्वरूप।

१ सूर्य का स्वरूप—

ॐ नमः सूर्याय सहस्रकिरणाय पूर्वदिगधीशाय रक्तवस्त्राय कमलहस्ताय सप्ताश्वरथवाहनाय च।

हजार किरणोंवाले पूर्व दिशा के स्वामी लाल वस्त्रवाले हाथ में कमल को धारण करनेवाले और सात घोड़े के रथ की सवारी करनेवाले सूर्य को नमस्कार।

२ चन्द्रमा का स्वरूप—

ॐ नमश्चन्द्राय तारागणाधीशाय वायव्यदिगधीशाय श्वेतवस्त्राय श्वेतदशवाजिवाहनाय सुधाकुम्भहस्ताय च।

ताराओं के स्वामी, वायव्य दिशा के स्वामी, सफेद वस्त्रवाले, सफेद दस घोड़े के रथ की सवारी करनेवाले और हाथ में अमृत के कुंभ को धारण करनेवाले चन्द्रमा को नमस्कार।

३ मंगल का स्वरूप—

ॐ नमो मङ्गलाय दक्षिणदिगधीशाय विद्रुमवर्णाय रक्ताम्बराय भूमिस्थिताय कुद्दालहस्ताय च।

दक्षिण दिशा के स्वामी मूंगा के वर्णवाले, लाल वस्त्रवाले, भूमि पर बैठे हुए और हाथ में कुदाल को धारण करनेवाले मंगल को नमस्कार।

४ बुध का स्वरूप—

ॐ नमो बुधाय उत्तरदिगधीशाय हरितवस्त्राय कलहंसवाहनाय पुस्तकहस्ताय च।

विशेष ग्रहों के मन्त्र से इस प्रकार बनाना है—

१ सूर्य के बायें हाथ में कमल का माना है।

२ चन्द्रमा के दाहिने हाथ में जपमाला (माला) और बाँये हाथ में कुंडी धारण करते माना है।

३ मंगल के दाहिने हाथ में जपमाला (माला) और बाँये हाथ में कुंडी धारण करना माना है।

४ बुध के दो अन्य हाथों में जपमाला और कुण्डिका माना है।

उत्तर दिशा के स्वामी, हरे वर्णवाले, राजहंस की सवारी करनेवाले और पुस्तक हाथ में रखनेवाले बुध को नमस्कार।

५ गुरु का स्वरूप—

ॐ नमो बृहस्पतये ईशानदिगधीशाय सर्वदेवाचार्याय काञ्चनवर्णाय पीतवस्त्राय पुस्तकहस्ताय हंसवाहनाय च।

ईशान दिशा के स्वामी, सब देवों का आचार्य, सुवर्ण वर्णवाले, पीले वस्त्र वाले, हाथ में पुस्तक धारण करनेवाले और हंस की सवारी करनेवाले गुरु को नमस्कार।

६ शुक्र का स्वरूप—

ॐ नमः शुक्राय दैत्याचार्याय आग्नेयदिगधीशाय स्फटिकोज्ज्वलाय श्वेतवस्त्राय कुम्भहस्ताय तुरगवाहनाय च।

दैत्य के आचार्य, आग्नेयकोण का स्वामी, स्फटिक जैसे उज्ज्वल वर्णवाले, सफेद वस्त्रवाले, हाथ में घड़े को धारण करनेवाले और घोड़े की सवारी करनेवाले शुक्र को नमस्कार।

७ शनि का स्वरूप—

ॐ नमः शनैश्चराय पश्चिमदिगधीशाय नीलदेहाय नीलाम्बराय परशुहस्ताय कमठवाहनाय च।

पश्चिम दिशा के स्वामी नील वर्णवाले, नीले वस्त्रवाले, हाथ में फरसा को धारण करनेवाले और कछुए की सवारी करनेवाले शनैश्चर को नमस्कार।

निर्वाणकलिका के मत से इस प्रकार बताया है—

२ गुरु के हाथ में अक्षमाला और कुण्डिका बताया है।

३ शुक्र के हाथ में अक्षमाला और कमण्डलु बताया है।

४ शनैश्चर के [illegible] हाथ के अक्षसूत्र और कमण्डलु को धारण करनेवाले बताया है।

८ राहु का स्वरूप—

ॐ नमो राहवे नैर्ऋतदिगधीशाय कज्जलश्यामलाय श्यामवस्त्राय परशुहस्ताय सिंहवाहनाय च।

नैर्ऋत्य दिशा के स्वामी, काजल जैसे श्याम वर्णवाले, श्याम वस्त्रवाले, हाथ में फरसा को धारण करनेवाल और सिंह की सवारी करनेवाल राहु को नमस्कार।

९ केतु का स्वरूप—

ॐ नमः केतवे राहुप्रतिच्छन्दाय श्यामाङ्गाय श्यामवस्त्राय पन्नगवाहनाय पन्नगहस्ताय च।

राहु का प्रतिरूप श्याम वर्णवाले, श्याम वस्त्रवाले, साँप की सवारीवाले और साँप को धारण करनेवाले केतु को नमस्कार।

आचारदिनकर के मत से क्षेत्रपाल का स्वरूप।

ॐ नमः क्षेत्रपालाय कृष्णगौरकाञ्चनधूसरकपिलवर्णाय विंशतिभुजदण्डाय बर्बरकेशाय जटाजूटमण्डिताय वासुकीकृतजिनोपवीताय तक्षककृतमेखलाय शेषकृतहाराय नानायुधहस्ताय सिंहचर्मावरणाय प्रेतासनाय कुक्कुरवाहनाय त्रिलोचनाय च।

कृष्ण, गौर, सुवर्ण, पांडु और भूरे वर्णवाले, बीस भुजावाले, बर्बर केशवाले, बड़ी जटावाले, वासुकी नाग की जनेऊवाले, तक्षकनाग की मेखलावाले, शेषनाग के हारवाले, अनेक प्रकार के शस्त्र को हाथ में धारण करनेवाले, सिंह के चर्म को धारण करनेवाले, प्रेत के आसनवाले, कुत्ते की सवारीवाले और तीन नेत्रवाले ऐसे क्षेत्रपाल को नमस्कार।

निर्वाणकलिका के मत से इस प्रकार मतान्तर है—

८ राहु अर्धकाय [illegible] और दोनों हाथ अर्धमुद्रायुक्त माना है।

९ केतु हाथ में अक्षसूत्र और कुण्डिका धारण करनेवाला माना है।

निर्वाणकलिका के मत से क्षेत्रपाल का स्वरूप—

क्षेत्रपाल क्षेत्रानुरूपनामान श्यामवर्णं बर्बरकेशमावृत्तपिङ्गनयन विकृतदंष्ट्रं पादुकाधिरूढ नग्न कामचारिण षड्भुज मुद्गरपाशडमरुकान्वित दक्षिणपाणिं श्वानाङ्कुशगेडिकायुतवामपाणिं श्रीमद्भगवतो दक्षिणपार्श्वे ईशानाश्रित दक्षिणाशामुखमेव प्रतिष्ठाप्यम् ।

अपने २ क्षेत्र के नामवाले, श्याम वर्णवाले, बर्बर केशवाले, गोल पीले नेत्र वाले, विरूप बड़े २ दांत वाले, पादुका पर चढ़े हुए, नग्न, छ भुजावाले, मुद्गर, फाँसी और डमरू को दाहिने हाथ में और कुत्ता अंकुश और गेडिका (लाठी) को बाँयें हाथ में रखनेवाले, भगवान् की दाहिनी ओर ईशान तरफ दक्षिणाभिमुख स्थापन करना चाहिये ।

माणिभद्र क्षेत्रपाल का स्वरूप—

ढक्काशूलस्रग्दामपाशाङ्कुशासिवह्नं । श्वेतकरिषट्कयुक्तं भाव्यापुषवर्गौ ॥

माणिभद्रदेव कृष्ण वर्णवाले, ऐरावण हाथी की सवारी करनेवाले, वराह के मुखवाले, दांत पर जिन मंदिर धारण करनेवाले छ भुजावाले, दाहिनी भुजाओं में ढाल, त्रिशूल और माला; बाँयी भुजाओं में नागपाश अंकुश और तलवार को धारण करनेवाले हैं । ऐसा तपागच्छीय श्री अमृतरत्नसूरि कृत माणिभद्र की स्तुति में कहा है ।

सरस्वती देवी का स्वरूप—

श्रुतदेवतां शुक्लवर्णां हंसवाहनां चतुर्भुजां वरदकमलान्वितदक्षिणकरां पुस्तकाक्षमालान्वितवामकरां चेति ।

सरस्वती देवी सफेद वर्णवाली, हंस की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली[1], दाहिने हाथों में वरदान और कमल, बाँये हाथों में पुस्तक और माला को धारण करनेवाली है ।

---

१ आचारदिनकर और सारस्वत कल्प में दो दाहिने हाथों में माला और कमल, दो बाँये हाथों में वीणा और पुस्तक को धारण करनेवाली माना है ।

प्रतिष्ठादिक के मुहूर्त ।

आरंभसिद्धि, दिनशुद्धि, लग्नशुद्धि मुहूर्त चिन्तामणि, मुहूर्त मा[illegible]
रत्नमाला और ज्योतिष हीर इत्यादि ग्रंथों के आधार से नीचे के स[illegible]
गये हैं ।

संवत्सरादिक की शुद्धि—

संवत्सरस्य मासस्य दिनस्यर्क्षस्य सर्वथा ।

कुजवारोज्झिता शुद्धिः प्रतिष्ठाया विवाहवत् ॥ १ ॥

सिंहस्थ गुरु के वर्ष को छोड़कर वर्ष, मास, दिन, नक्षत्र और [illegible]
छोड़कर दूसरे वार, इन सब की शुद्धि जैसे विवाहकार्य में देखते हैं, उसी [illegible]
कार्य में भी देखना चाहिये ॥ १ ॥

अयन शुद्धि—

गृहप्रवेशत्रिदशप्रतिष्ठा-विवाहचूडाव्रतबन्धपूर्वम् ।

सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद्गर्हितं तत्खलु दक्षिणे [illegible]

गृह प्रवेश, देव की प्रतिष्ठा, विवाह, मुंडन संस्कार और यज्ञो[illegible]
इत्यादि शुभकार्य [1]उत्तरायण में सूर्य हो तब करना शुभ माना है और [illegible]
हो तब ये शुभ कार्य करना अशुभ माना है ॥ २ ॥

मास शुद्धि—

मिग्गसिराइ मासट्ठ चित्तपोसाहिए वि मुत्तु सुहा ।

जइ न गुरु सुक्को या बालो वुड्ढो अ अत्थमिओ ॥[illegible]

चैत्र, पौष और अधिक मास को छोड़कर मार्गशिर आदि आठ [illegible]
शिर, माघ, फाल्गुन वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ) शुभ हैं । परन्तु गुरु [illegible]
वृद्ध और अस्त नहीं होने चाहिये ॥ ३ ॥

---

[1] मकर आदि छ राशि तक सूर्य उत्तरायण और कर्क आदि छ राशि तक [illegible]
माना है ।

गेहाकारे चेइय वब्भिश्रा माहमास भगणिभयं ।
सिहरजुश्र जिणभुवणे बिंबपवेसो सया भणिश्रो ॥ ४ ॥
श्रासाढे वि पइट्ठा कायव्वा केइ सूरिणो भणइ ।
पासायगब्भगेहे बिंबपवेसो न कायव्वो ॥ ५ ॥

घरमंदिर का आरम्भ माघ मास में करें तो अग्नि का भय रहे, इसलिये माघ मास में घरमंदिर बनाने का आरम्भ करना अच्छा नहीं। परन्तु शिखरबद्ध मंदिर का आरम्भ और बिम्ब (प्रतिमा) का प्रवेश कराना अच्छा है। आषाढ मास में प्रतिष्ठा करना, ऐसा कोई आचार्य कहते हैं, किन्तु प्रासाद के गर्भगृह (मूलगम्भारा) में बिम्ब प्रवेश नहीं कराना चाहिये ॥ ४ । ५ ॥

तिथि शुद्धि—

छट्ठी रित्तट्ठमी बारसी अ अमावसा गयतिहीओ ।
कूरतिहि कूरदड्ढा वज्जिश्र सुहेसु कम्मेसु ॥ ६ ॥

छठ रिक्ता (४-९-१४), आठम, बारस, अमावस, क्षयतिथि, वृद्धितिथि, क्रूरतिथि और दग्धातिथि ये तिथि शुभ कार्य में छोड़ना चाहिये ॥ ६ ॥

क्रूर तिथि—

त्रिशश्चतुर्णामपि मेषसिंह धन्वादिकानां प्रमतश्चतस्रः ।
पूर्णाश्चतुष्कत्रितयस्य तिस्र स्त्याज्या तिथि: क्रूरयुतस्य राशेः ॥ ७ ॥

मेष, सिंह और धन से चार २ राशियों के तीन चतुष्क करना, उनमें प्रथम चतुष्क में प्रतिपदादि चार तिथि और पंचमी, दूसरे चतुष्क में छट्ठी आदि चार तिथि और दशमी तीसरे चतुष्क में एकादशी आदि चार तिथि और पूर्णिमा इन क्रूर तिथियों में शुभ कार्य वर्जनीय है। उक्त राशि पर सूर्य, मंगल, शनि या राहु आदि कोई पाप ग्रह हो तब क्रूर तिथि माना है अन्यथा नहीं ॥ ७ ॥

क्रूर तिथि चक्र—

मेष	१-५	सिंह	६-१०	धन	११-१५
वृष	२-५	कन्या	७-१०	मकर	१२-१५
मिथुन	३-५	तुला	८-१०	कुंभ	१३-१५
कर्क	४-५	वृश्चिक	९-१०	मीन	१४-१५

सूर्यदग्धा तिथि—

छग चउ अट्ठमि छट्ठी दसमट्ठमि बार दसमि बीआ उ ।
बारसि चउत्थि बीआ मेसाइसु सूरदड्डदिणा ॥ ८ ॥

मेष आदि बारह राशियों में सूर्य हो तब क्रम स छठ, चौथ, आठम, छठ, दसम, आठम, बारस, दसम, दूज, बारस, चौथ और दूज य सूर्यदग्धा तिथि कही जाती हैं ॥ ८ ॥

सूर्यदग्धा तिथि यन्त्र—

धनु—मीन संक्रांति में	२	मिथुन—कन्या संक्रांति में	८
वृष—कुंभ ,,	४	सिंह—वृश्चिक ,,	१०
मेष—कर्क ,,	६	तुला—मकर ,,	१२

चन्द्रदग्धा तिथि—

कुंभधणे अजमिहुणे तुलसीहे मयरमीण विसकक्के ।
विच्छियकन्नासु कमा बीआई समतिही उ ससिदड्डा ॥ ९ ॥

कुंभ और धन का चंद्रमा हो तब दूज, मेष और मिथुन का चंद्र हो तब चौथ, तुला और सिंह का चंद्र हो तब छट्ठ, मकर और मीन का चंद्रमा हो तब आठम, वृष और कर्क का चंद्र हो तब दसम, वृश्चिक और कन्या का चंद्र हो तब बारस, इत्यादि क्रम से द्वितीयादि सम तिथि चन्द्रदग्धा तिथि कही जाती है ॥ ९ ॥

चन्द्रदग्धा तिथि यंत्र—

कुंभ—धन के चंद्र में	२	मकर—मीन के चंद्र में	८
मेष—मिथुन ,,	४	वृष—कर्क ,,	१०
तुला—सिंह ,,	६	वृश्चिक—कन्या ,,	१२

दग्धा तिथी—

मियणक्के पडिवय बीअ पचमी दसमि तेरसी पुण्णा ।
कन्निणे पडिवय बीआ पंचमि तइया पइट्ठाए ॥ १० ॥

प की एकम दूज, पांचम, दसम तेरस और पूनम तथा कृष्णपक्ष की
र पंचमी ये तिथि प्रतिष्ठा कार्य में शुभदायक मानी है ॥१० ॥

—

ाइच बुह बिहप्फइ सणिवारा सुहरा वयग्गहणे ।
पइट्ठाइ पुणो बिहप्फइ सोम बुह सुक्का ॥ ११ ॥

बुध, बृहस्पति, और शनिवार ये व्रत ग्रहण करने में शुभ माने हैं तथा
में बृहस्पति, सोम, बुध और शुक्र वार शुभ माने हैं ॥ ११ ॥

कहा है कि—

जस्विनी क्षेमकृदग्निदाह-विधायिनी स्याद्वरदा दृढा च ।
ानदहृत्कल्पनिवासिनी च, सूर्यादिवारेषु भवेत् प्रतिष्ठा ॥ १२ ॥

र को प्रतिष्ठा करने से प्रतिमा तेजस्वी अर्थात् प्रभावशाली होती है। सोम-
करने से कुशल मंगल करनेवाली, मंगलवार को अग्निदाह, बुधवार को
देनेवाली, गुरुवार को दृढ (स्थिर), शुक्रवार को आनंद करनेवाली
को की हुई प्रतिष्ठा कल्प पर्यन्त अर्थात् चंद्र सूर्य रहे वहां तक स्थिर
ती है ॥ १२ ॥

ह—

मृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः ।
स्त्रिमनुयुक् तिथीन्द्रियांशै स्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनिचाः ॥१३॥

शि के प्रथम दश अंश रवि का परमउच्च स्थान, वृषराशि के प्रथम तीन
का परम उच्च स्थान, मकर के प्रथम अट्ठाईस अंश मंगल का, कन्या के
ध का, कर्क के पांच अंश गुरु का, मीन के सत्ताईस अंश शुक्र का और तुला
अंश शनि का परम उच्च स्थान है। उक्त राशियों में कहे हुए ग्रह उच्च
यों में परम उच्च हैं। ये ग्रह अपनी उच्च राशि से सातवीं राशि पर हों तो
माने जाते हैं। अर्थात् सूर्य मेषराशि का उच्च है इससे सातवीं राशि
हो तो नीच का माना जाता है। इसमें भी दस अंश तक परम नीच
ार सब ग्रहों को समझिये ॥ १३ ॥

ग्रहों का दृष्टिबल—

परयन्ति पादतो वृद्ध्या भ्रातृव्योम्नी त्रित्रिकोणके ।
चतुरस्रे स्त्रियं स्त्रीवन्मतेनायादिमावपि ॥ १६ ॥

सब ग्रह अपने २ स्थान से तीसरे और दसवें स्थान को एक पाद दृष्टि से, वें और पांचवें स्थान को दो पाद दृष्टि से, चौथे और आठवें स्थान को तीन पाद से और सातवें स्थान को चार पाद की पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। कोई आचार्य ऐसा मत है कि—पहले और ग्यारहवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। बाकी के रे, छट्ठे और बारहवें स्थान को कोई ग्रह नहीं देखते ॥ १६ ॥

क्या फक्त सातवें स्थान को ही पूर्ण दृष्टि से देखते हैं या कोई अन्य न को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं? इस विषय में विशेष रूप से कहते हैं—

पश्येत् पूर्णं शनिर्भ्रातृव्योम्नी धर्मधियोर्गुरुः ।
चतुरस्रे कुजोऽर्केन्दु-बुधशुक्रास्तु सप्तमम् ॥ १७ ॥

शनि तीसरे और दसवें स्थान को, गुरु नववें और पांचवें स्थान को, मंगल े और आठवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है। रवि, सोम, बुध और शुक्र सातवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं ॥ १७ ॥

अर्थात् तीसरे और दसवें स्थान पर दूसरे ग्रहों की एक पाद दृष्टि है, किन्तु े की तो पूर्ण दृष्टि है। नववें और पांचवें, चौथे और आठवें और सातवें स्थान जैसे अन्य ग्रहों की दो पाद, तीन पाद और पूर्ण दृष्टि है, इसी प्रकार शनि की भी इसलिये शनि की एक पाद दृष्टि कोई भी स्थान पर नहीं है। नववें और पांचवें न पर अन्य ग्रहों की दो पाद दृष्टि है, किन्तु गुरु की तो पूर्ण दृष्टि है। जैसे ग्रहों की तीसरे और दसवें, चौथे और आठवें और सातवें स्थान पर क्रमशः एक , तीन पाद और पूर्ण दृष्टि है, वैसे गुरु की भी है, इसलिये गुरु की दो पाद दृष्टि स्थान पर नहीं है। चौथे और आठवें स्थान पर अन्य ग्रहों की तीन पाद दृष्टि किन्तु मंगल की तो पूर्ण दृष्टि है। जैसे दूसरे ग्रहों की तीसरे और दसवें, नववें पांचवें और सातवें स्थान पर क्रमशः एक पाद, दो पाद और पूर्ण दृष्टि है वैस ल की भी है, इसलिये मंगल की तीन पाद दृष्टि कोई भी स्थान पर नहीं है, एसा

सिद्ध होता है। रवि, सोम, बुध और शुक्र ये चार ग्रहों की तो सातवें स्थान पर ही पूर्ण दृष्टि होने से दूसरे कोई भी स्थान को पूर्ण दृष्टि से नहीं देखते हैं।

प्रतिष्ठा के नक्षत्र—

मह मिअसिर हत्थुत्तर अणुराहा रेवई सवण मूल।
पुस्स पुणव्वसु रोहिणि साइ धणिट्ठा पइट्ठाए ॥ १८ ॥

मघा, मृगशीर, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, अनुराधा, रेवती, श्रवण, मूल, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, स्वाति और धनिष्ठा ये नक्षत्र प्रतिष्ठा कार्य में शुभ हैं ॥ १८ ॥

शिलान्यास और सूत्रपात के नक्षत्र—

चेइअसुत्र धुवमिउ कर पुस्स धणिट्ठ सयभिसा साई।
पुस्स तिउत्तर रे रो कर मिग सवणे सिलनिवेसो ॥ १९ ॥

ध्रुवसंज्ञक (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणी), मृदुसंज्ञक (मृगशीर, रेवती, चित्रा और अनुराधा), हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा और स्वाति इन नक्षत्रों में चैत्य (मन्दिर) का सूत्रपात करना अच्छा है। तथा पुष्य, तीनों उत्तरानक्षत्र, रेवती, रोहिणी, हस्त, मृगशीर और श्रवण इन नक्षत्रों में शिला का स्थापन करना अच्छा है ॥ १९ ॥

प्रतिष्ठाकारक के अशुभ नक्षत्र—

कारायपरस्स जम्मरिक्खं दस सोलस तह ट्ठारं।
तेवीसं पणवीसं बिंबपइट्ठाइ वज्जिज्जा ॥ २० ॥

बिम्ब प्रतिष्ठा करनेवाले का अपना जन्मनक्षत्र, दसवाँ, सोलहवाँ, अठारहवाँ, तेवीसवाँ और पचीसवाँ ये नक्षत्र बिम्बप्रतिष्ठा में छोड़ना चाहिये ॥ २० ॥

बिम्ब प्रवेश नक्षत्र—

सयभिसपुस्स धणिट्ठा मिगसिर धुवमिउ अपरहिं सुहवारे।
ससि गुरुसिए उदए गिहे पवेसिज्ज पडिमाओ ॥ २१ ॥

शतभिषा, पुष्य, धनिष्ठा, मृगशीर, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा और स्वाती इन नक्षत्रों में, शुभवारों में, चन्द्रमा, गुरु और शुक्र के उदय में प्रतिमा का प्रवेश कराना अच्छा है ॥ २१

जिनबिम्ब करानेवाले धनिक के अनुकूल प्रतिमा स्थापन करते समय नक्षत्र, योनि आदि देखे जाते हैं । कहा है कि—

> योनिगणराशिभेदा लभ्यं वर्गश्च नाडीवेधश्च ।
> नूतनबिंबविधाने षड्विधमेतद् विलोक्य ज्ञैः ॥ २१ ॥

योनि, गण, राशिभेद, लनदेन, वर्ग और नाडिवेध ये छः प्रकार के बल पंडितों को नवीन जिनबिम्ब करवाते समय देखने चाहिये ॥ २२ ॥

नक्षत्रों की योनि—

> तुरङ्गा योन्योऽश्व द्विप पशु भुजङ्गा हि-श्वनको-
> त्व-जा-मार्जारा खुखप-वृष-मह-व्याघ्र-महिषाः ।
> तथा व्याघ्रै णौ ए-श्व कपि-नकुल द्वन्द्व कपयो,
> हरिर्वाजी दन्तावलरिपु-रज कुञ्जर इति ॥ २३ ॥

अश्विनी नक्षत्र की योनि अश्व, भरणी की हाथी, कृत्तिका की पशु (बकरा) रोहिणी की सर्प, मृगशीर्ष की सर्प, आर्द्रा की श्वान, पुनर्वसु की बिलाव, पुष्य की बकरा, आश्लेषा की बिलाव, मघा की उंदुर, पूर्वाफाल्गुनी की उंदुर, उत्तराफाल्गुनी की गौ, हस्त की महिष, चित्रा की वाघ, स्वाति की महिष, विशाखा की वाघ, अनुराधा की मृग, ज्येष्ठा की मृग, मूल की श्वान, पूर्वाषाढा की वानर, उत्तराषाढा की नकुल, अभिजित् की नकुल, श्रवण की वानर, धनिष्ठा की सिंह, शतभिषा की अश्व, पूर्वाभाद्रपदा की सिंह, उत्तराभाद्रपदा की [1]बकरा और रेवती नक्षत्र की हस्ति हाथी है ॥ २२ ॥

---

[1] अन्य ग्रंथों में गौ जाति लिखा है

योनि वैर—

श्वैणं हरीभमहिपभ्रु पशुप्लवग, गोव्याघमश्वमहमोतुकमूषिक च ।
लोकात्तथाऽन्यदपि दम्पतिभर्तृभृत्य-योगेषु वैरमिह वर्ज्यमुदाहरन्ति ॥२४॥

श्वान और मृग को, सिंह और हाथी को, सर्प और नकुल को, बकरा और वानर को गौ और बाघ को, घोड़ा और भैंसा को, बिलाव और उदुर को परस्पर वैर है । इस प्रकार लोक में प्रचलित दूसरे वैर भी देखे जाते हैं । यह वैर पति पत्नी, स्वामी सेवक और गुरु शिष्य आदि के सम्बन्ध में छोड़ना चाहिये ॥ २४ ॥

नक्षत्रों के गण—

दिव्यो गणः किल पुनर्वसुपुष्यहस्त
स्वात्यश्विनीश्रवणपौष्णमृगानुराधाः ।
स्यान्मानुषस्तु भरणी कमलासनर्क्ष-
पूर्वोत्तरात्रितयशंकरदैवतानि । २५ ।
रक्षोगण. पितृभराक्वसवासवेन्द्र-
चित्राद्विदैववरुणाग्निभुजङ्गभानि ।
प्रीति. स्वयोरति नरामरयोस्तु मध्या,
वैरं पलादसुरयोर्मृतिरन्त्ययोस्तु ॥ २६ ॥

पुनर्वसु, पुष्य, हस्त स्वाति अश्विनी श्रवण, रेवती, मृगशीर्ष और अनुराधा ये नव नक्षत्र देवगणवाले हैं । भरणी, रोहिणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और आर्द्रा ये नव नक्षत्र मनुष्य गण वाले हैं । मघा, मूल, धनिष्ठा ज्येष्ठा, चित्रा, विशाखा, शतभिषा, कृत्तिका और आश्लेषा ये नव नक्षत्र राक्षसगण वाले हैं उनमें एक ही वर्ग में अत्यन्त प्रीति रहे एक का मनुष्य गण हो और दूसरे का देवगण हो तो मध्यम प्रीति रहे, एक का देवगण हो और दूसरे का राक्षसगण हो तो परस्पर वैर रहे तथा एक का मनुष्यगण हो और दूसरे का राक्षसगण हो तो मृत्यु कारक है ॥ २५ ॥ २६ ॥

राशिकूट—

विसमा अट्ठमे पीई समाउ अट्ठमे रिऊ।
सत्तु छट्ठम नामरासिहिं परिवज्जए॥
बीयबारसम्मि चए नवपंचमग तहा।
सेसेसु पीई निद्दिट्ठा जइ दुयागहंमुत्तमा॥ २७॥

विषम राशि (१-३-५-७-९-११) से आठवीं राशि के साथ मित्रता है, और समराशि (२-४-६-८-१०-१२) से आठवीं राशि के साथ शत्रुता है। एवं विषम राशि से छट्ठी राशि के साथ शत्रुता है और समराशि से छट्ठी राशि मित्र है। इस प्रकार दूजी और बारहवीं तथा नववीं और पांचवीं राशियों के स्वामी के साथ आपस में मित्रता न हो तो उनको भी अवश्य छोड़ना चाहिये। बाकी सप्तम से सप्तम राशि, तीसरी से ग्यारहवीं राशि और दशम चतुर्थ राशि शुभ है॥ २७॥

कितनेक आचार्य राशिकूट का परिहार इस प्रकार बतलाते हैं—

नाडी योनिर्गणास्तारा चतुष्कं शुभदं यदि।
तदैवास्येऽपि नाथानां भकूटं शुभदं मतम्॥ २८॥

यदि नाडी, योनि, गण और तारा ये चारों ही शुभ हों तो राशियों के स्वामी का मध्यस्थपन होने पर भी राशिकूट शुभदायक माना है॥ २८॥

राशियों के स्वामी—

मेषादीशा कुजः शुक्रो बुधश्चन्द्रो रविर्बुधः।
शुक्रः कुजो गुरुर्मन्दो मन्दो जीव इति क्रमात्॥ २९॥

मेषराशि का स्वामी मंगल, वृष का शुक्र, मिथुन का बुध, कर्क का चन्द्रमा, सिंह का रवि, कन्या का बुध, तुला का शुक्र, वृश्चिक का मंगल, धन का गुरु, मकर का शनि, कुंभ का शनि और मिथुन का स्वामी गुरु है। इस प्रकार क्रम से बारह राशियों के स्वामी हैं॥ २९॥

नाडी कूट—

ज्येष्ठार्यम्णेशनीराधिपभयुगयुगं दास्रभ चैकना
पुष्येन्दुत्वाष्ट्रमित्रान्तकवसुजलभ योनि
वाय्वग्निव्यालविश्वोडुयुगयुगमथो पौष्णभ चा
दम्पत्योरेकनाड्या परिणयनमसन्मध्यनाड

ज्येष्ठा, मूल, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, आर्द्रा, पुनर्वसु, शत
और अश्विनी ये नव नक्षत्रों की आद्य नाडी है। पुष्य, मृगशिर
भरणी, धनिष्ठा, पूर्वाषाढा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपद ये
नाडी है। स्वाति, विशाखा, कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा
और रेवती ये नव नक्षत्रों की अन्त्य नाडी है। वर वधू का एक
अशुभ है और मध्य की एक नाडी में विवाह हो तो मृत्युकारक

नाडी फल—

सुअसुहिसेवयसिस्सा घरपुरदेस सुह एगनाडी
कन्ना पुण परिणीआ हणइ पइ ससुर सासु च
एकनाडीस्थिता यत्र गुरुर्मन्त्रश्च देवता ।
तत्र द्वेषं रुज मृत्युं क्रमेण फलमादिशेत् । ३२

पुत्र, मित्र, सेवक, शिष्य, घर, पुर और देश ये एक नाड
परन्तु कन्या का एक नाडी में विवाह किया जाय तो पति, श्व
नाशकारक है। गुरु, मंत्र और देवता ये एक नाडी में हों तो श
कारक हैं ॥ ३१ । ३२ ॥

तारा बल—

जनिभात्रयकेषु त्रिषु जनिकर्माधानसञ्ज्ञिता' प्र
ताभ्यस्त्रिपञ्चसप्तमताराः स्युर्न हि शुभाः क्वचन

जन्म नक्षत्र या नाम नक्षत्र से आरम्भ करके नव २ की
इन तीनों में प्रथम २ ताराओं के नाम क्रम से जन्मतारा, कर्मतार

जानना। इन तीनों नक्षत्रों में तीसरी, पांचवीं और सातवीं तारा कभी भी शुभ नहीं है ॥ ३३ ॥

तारा यंत्र—

जन्म १	संपत् २	विपत् ३	क्षेम ४	यम ५	साधन ६	निधन ७	मैत्री ८	परम मैत्री ९
कर्म १०	,, ११	,, १२	, १३	,, १४	, १५	,, १६	,, १७	,, १८
आधान १९	,, २०	,, २१	,, २२	,, २३	, २४	,, २५	,, २६	,, २७

इन ताराओं में प्रथम, दूसरी और आठवीं तारा मध्यम फलदायक हैं। तीसरी, पाचवीं और सातवीं तारा अधम हैं तथा चौथी, छट्ठी और नववीं तारा श्रेष्ठ हैं। कहा है कि—

ऋक्षं न्यून तिथिन्यूना स्वपानाथोऽपि चाष्टम ।
तत्सर्वं शमयेत्तारा षट्चतुर्थनवस्थिता ॥ ३४ ॥

नक्षत्र अशुभ हों, तिथि अशुभ हों और चद्रमा भी आठवाँ अशुभ हों तो भी इन सब को छट्ठी, चौथी और नववीं तारा हो तो दबा देती है ॥ ३४ ॥

यात्रायुद्धविवाहेषु जन्मतारा न शोभना ।
शुभाऽन्यशुभकार्येषु प्रवेशे च विशेषत ॥ ३५ ॥

यात्रा, युद्ध और विवाह में जन्म की तारा अच्छी नहीं है, किंतु दूसरे शुभ कार्य में जन्म की तारा शुभ है और प्रवेश कार्य में तो विशेष करके शुभ है ॥३५॥

वर्ग बल—

अकचटतपयशवर्गाः खगेशमार्जारसिंहशुनाम् ।
सर्पाखुमृगावीनां निजपञ्चमवैरिणामष्टौ ॥ ३६ ॥

अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग और शवर्ग ये आठ वर्ग हैं, उनके स्वामी—अवर्ग का गरुड़, कवर्ग का बिलाव, चवर्ग का सिंह, टवर्ग का

थान, तवर्ग का सर्प, पवर्ग का उंदुर, यवर्ग का हरिण और शवर्ग का मींढा (बकरा) है। इन वर्गों में अन्योऽन्य पांचवाँ वर्ग शत्रु होता है ॥ ३६ ॥

लेन देन का विचार—

नामादिवर्गाङ्कमथैकवर्गं, वर्णाङ्कमेव क्रमतोऽस्मभाव ।
न्यस्योभयोरष्टहृतावशिष्टे—ऽर्द्धिते विशोपाः प्रथमेन देयाः ॥ ३७ ॥

दोनों के नाम के आद्य अक्षरवाले वर्गों के अंकों को क्रम से समीप रख कर पीछे इसको आठ से भाग देना, जो शेष रहे उसका आधा करना, जो बचे उतने विश्वा प्रथम अंक के वर्गवाला दूसरे वर्ग वाले का करजदार है, ऐसा समझना। इस प्रकार वर्ग के अंकों को उत्क्रम से अर्थात् दूसरे वर्ग के अंक को पहला लिखकर पूर्ववत् क्रिया करना, दोनों में से जिनके विश्वा अधिक हो वह करजदार समझना ॥ ३७ ॥

उदाहरण—महावीर स्वामी और जिनदास इन दोनों के नाम के आद्य अक्षर के वर्गों को क्रम से लिखा तो ६३ हुए, इनको आठ से भाग दिया तो शेष ७ बचे, इनके आधे किये तो साढे तीन विश्वा बचे इसलिये महावीरदेव जिनदास का साढे तीन विश्वा करजदार है। अब उत्क्रम से वर्गों को लिखा तो ३६ हुए, इनको आठ से भाग दिया तो शेष चार बचे, इनके आधे किये तो दो विश्वा बचे, इसलिये जिनदास महावीर देव का दो विश्वा करजदार है। बचे हुए दोनों विश्वा में से अपना लेन देन निकाल लिया तो डेढ विश्वा महावीरदेव का अधिक रहा, इसलिये महावीर देव डेढ विश्वा जिनदास के करजदार हुए। इसी प्रकार सर्वत्र लेन देन समझना।

योनि, गण, राशि, तारा शुद्धि और नाडीवेध ये पांच तो जन्म नक्षत्र से देखना चाहिये। यदि जन्म नक्षत्र मालूम न हो तो नाम नक्षत्र से देखना चाहिये। किन्तु वर्ग मैत्री और लेन देन तो प्रसिद्ध नाम के नक्षत्र से ही देखना चाहिये, ऐसा आरम्भसिद्धि ग्रंथ में कहा है।

राशि, योनि, नाडी, गण आदि जानने का शतपद्चक्र—

संख्या	नक्षत्र	अक्षर	राशि	वर्ण	वश्य	योनि	राशीश	
१	अश्विनी	चू चे चो ला	मेष	क्षत्रिय	चतुष्पद	अश्व	मंगल	[illegible]
२	भरणी	ली लू ले लो	मेष	क्षत्रिय	चतुष्पद	गज	मंगल	मनुष्य
३	कृत्तिका	अ इ उ ए	१ मेष ३ वृष	१ क्षत्रिय ३ वैश्य	चतुष्पद	बकरा	१ मंगल ३ शुक्र	राक्षस
४	रोहिणी	ओ वा वी वु	वृष	वैश्य	चतुष्पद	सर्प	शुक्र	मनुष्य
५	मृगशिर	वे वो का की	२ वृष २ मिथुन	२ वैश्य २ शूद्र	२ चतुष्पद २ मनुष्य	सर्प	२ शुक्र २ बुध	देव
६	आर्द्रा	कु घ ङ छ	मिथुन	शूद्र	मनुष्य	श्वान	बुध	मनुष्य
७	पुनर्वसु	के को हा ही	३ मिथुन १ कर्क	३ शूद्र १ ब्राह्मण	३ मनुष्य १ जलचर	मार्जार	३ बुध १ चंद्र	देव
८	पुष्य	हु हे हो डा	कर्क	ब्राह्मण	जलचर	बकरा	चंद्रमा	देव
९	आश्लेषा	डी डू डे डो	कर्क	ब्राह्मण	जलचर	मार्जार	चंद्रमा	राक्षस
१०	मघा	मा मी मू मे	सिंह	क्षत्रिय	वनचर	चूहा	सूर्य	राक्षस
११	पूर्वा फा०	मो टा टी टू	सिंह	क्षत्रिय	वनचर	चूहा	सूर्य	मनुष्य
१२	उत्तरा फा०	टे टो पा पी	१ सिंह ३ कन्या	१ क्षत्रिय ३ वैश्य	१ वनचर ३ मनुष्य	गौ	१ सूर्य ३ बुध	मनुष्य
१३	हस्त	पु ष ण ठ	कन्या	वैश्य	मनुष्य	भैंस	बुध	देव

१४	चित्रा	प पा रा री	२ कन्या २ तुला	२ वैश्य २ शूद्र	मनुष्य	वाघ	२ बुध २ शुक्र	राक्षस	मध्य
१५	स्वाति	रु रे रो ता	तुला	शूद्र	मनुष्य	भैंस	शुक्र	देव	अन्त्य
१६	विशाखा	ती तु ते तो	३ तुला १ वृश्चिक	३ शूद्र १ ब्राह्मण	३ मनुष्य १ कीडा	व्याघ्र	३ शुक्र १ मंगल	राक्षस	अन्त्य
१७	अनुराधा	ना नी नु ने	वृश्चिक	ब्राह्मण	कीडा	हीरण	मंगल	देव	मध्य
१८	ज्येष्ठा	नो या यी यु	वृश्चिक	ब्राह्मण	कीडा	हरण	मंगल	राक्षस	आद्य
१९	मूल	ये यो भा भी	धन	क्षत्रिय	मनुष्य	कुक्कर	गुरु	राक्षस	आद्य
२०	पूर्वाषाढा	भु धा फ ढा	धन	क्षत्रिय	मनुष्य चतुष्पद	वानर	गुरु	मनुष्य	मध्य
२१	उत्तराषाढा	भे भो जा जी	१ धन ३ मकर	१ क्षत्रिय ३ वैश्य	चतुष्पद	न्यौला	१ गुरु ३ शनि	मनुष्य	अन्त्य
२१	श्रवण	खी खू खे खो	मकर	वैश्य	चतुष्पद जलचर	वानर	शनि	देव	अन्त्य
२३	धनिष्ठा	गा गी गु गे	२ मकर २ कुंभ	२ वैश्य २ शूद्र	२ जलचर २ मनुष्य	सिंह	शनि	राक्षस	मध्य
२४	शतभिषा	गो सा सी सु	कुंभ	शूद्र	मनुष्य	घोडा	शनि	राक्षस	आद्य
२५	पूर्वाभाद्र	से सो दा दी	३ कुंभ १ मीन	३ शूद्र १ ब्राह्मण	३ मनुष्य १ जलचर	सिंह	३ शनि १ गुरु	मनुष्य	आद्य
२६	उत्तराभाद्र	दु थ झ ञ	मीन	ब्राह्मण	जलचर	गौ	गुरु	मनुष्य	मध्य
२७	रेवती	दे दो चा ची	मीन	ब्राह्मण	जलचर	हाथी	गुरु	देव	अन्त्य

प्रतिष्ठा करानेवाले के साथ तीर्थंकरों के राशि गण, नाडी आदि का मिलान किया जाता है, इसलिये तीर्थंकरों के राशि आदि का स्वरूप नीचे लिखा जाता है ।

तीर्थंकरों के जन्म नक्षत्र—

वैश्वी-ब्राह्म-मृगा पुनर्वसु मघा चित्रा विशाखास्तथा,
राधा-मूल-जलर्क्ष विष्णु-वरुणर्क्षा भाद्रपादोत्तरा ।
पौष्ण पुष्य-यमर्क्ष-दाहनयुता पौष्णाश्विनी वैष्णवा,
दास्त्री त्वाष्ट्र विशाखिकार्यमयुता जन्मर्क्षमालार्हताम ॥१८॥

उत्तराषाढा १, रोहिणी २, मृगशिर ३, पुनर्वसु ४, मघा ५, चित्रा ६, विशाखा ७, अनुराधा ८, मूल ९, पूर्वाषाढा १०, श्रवण ११, शतभिषा १२, उत्तरा भाद्रपद १३, रेवती १४, पुष्य १५, [1]भरणी १६, कृत्तिका १७, रेवती १८, अश्विनी १९, श्रवण २०, अश्विनी २१, चित्रा २२, विशाखा २३ और उत्तराफाल्गुनी २४ ये तीर्थंकरों के क्रमशः जन्म नक्षत्र हैं ॥ १८ ॥

तीर्थंकरों की जन्म राशि—

चापो गौर्मिथुनद्वय मृगपति' कन्या तुला वृश्चिक-
श्चापश्चापमृगास्यकुम्भमथषरा मत्स्य कुलीरो हुडु ।
गौर्मीनो हुडुरेणवक्त्रहुडुका' कन्या तुला कन्यका,
विज्ञेया क्रमतोऽर्हतां मुनिजनै धर्मोदिता राशय ॥१९॥

धन १, वृषभ २, मिथुन ३, मिथुन ४, सिंह ५, कन्या ६, तुला ७, वृश्चिक ८, धन ९, धन १०, मकर ११, कुम्भ १२, मीन १३, मीन १४, कर्क १५, मेष १६, वृषभ १७, मीन १८, मेष १९, मकर २०, मेष २१, कन्या २२, तुला २३ और कन्या २४ ये तीर्थंकरों की क्रमशः जन्म राशि हैं ॥ १९ ॥

इसी प्रकार तीर्थंकरों के नक्षत्र राशि योनि गण नाडी और वर्ग आदि को नीचे लिखे हुए जिनवर के नक्षत्र आदि के चक्र में खुलासावार समझ लेना ।

[1] [illegible]
लिखा है वह ठीक है [illegible]

१३	विमल	उत्तराभाद्रपद	गौ	मनुष्य	८	मीन	गुरु	मध्य	७ हरिण
१४	अनन्त	रेवती	हस्ति	देव	४	मीन	गुरु	अन्त्य	१ गरुड
१५	धर्मनाथ	पुष्य	अज	देव	८	कर्क	चन्द्रमा	मध्य	५ सर्प
१६	शान्तिनाथ	भरणी	हस्ति	मनुष्य	२	मेष	मंगल	मध्य	८ मेष
१७	कुंथुनाथ	कृत्तिका	अज	राक्षस	३	वृषभ	शुक्र	अन्त्य	२ बिडाल
१८	अरनाथ	रेवती	हस्ति	देव	४	मीन	गुरु	अन्त्य	१ गरुड
१९	मल्लिनाथ	अश्विनी	अश्व	देव	१	मेष	मंगल	आद्य	६ उन्दर
२०	मुनिसुव्रत	श्रवण	वानर	देव	४	मकर	शनि	अन्त्य	६ उन्दर
२१	नमिनाथ	अश्विनी	अश्व	देव	१	मेष	मंगल	आद्य	५ सर्प
२२	नेमिनाथ	चित्रा	व्याघ्र	राक्षस	५	कन्या	बुध	मध्य	५ सर्प
२३	पार्श्वनाथ	विशाखा	व्याघ्र	राक्षस	७	तुला	शुक्र	अन्त्य	६ उन्दर
२४	महावीर	उत्तरा फाल्गुनी	गौ	मनुष्य	३	कन्या	बुध	आद्य	६ उन्दर

तिथि, वार और नक्षत्र के योग से शुभाशुभ योग होते हैं। उनमें प्रथम रविवार को शुभ योग बतलाते हैं—

भानौ भूस्यै करादित्य पौष्णब्राह्ममृगोत्तरा।
पुष्यमूलाश्विवासव्य-श्चैकाष्टनवमी तिथिः ॥ ४० ॥

रविवार को हस्त, पुनर्वसु, रेवती, मृगशीर, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा उत्तरा भाद्रपदा, पुष्य, मूल, अश्विनी और धनिष्ठा इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र तथा प्रतिपदा, अष्टमी और नवमी इन तिथियों में से कोई तिथि हो तो शुभ योग होता है। उनमें तिथि और वार या नक्षत्र और वार ऐसे दो २ का योग हो तो द्विक शुभ योग, एवं तिथि वार और नक्षत्र इन तीनों का योग हो तो त्रिक शुभ योग समझना। इसी प्रकार अशुभ योगों में भी समझना ॥ ४० ॥

रविवार को अशुभ योग—

न चार्के वारुणं याम्य विशाखात्रितयं मघा।
तिथि षट्सप्तरुद्रार्क-मनुसंख्या तयेष्यते ॥ ४१ ॥

रविवार को शतभिषा, भरणी, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा और मघा इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र तथा छट्ठ, सातम, ग्यारस, बारस और चौदस इन तिथियों में से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ४१ ॥

सोमवार को शुभ योग—

सोमे सिद्ध्यै मृगब्राह्म मैत्राख्यार्यमणं करः।
श्रुति शतभिषक् पुष्य तिथिस्तु द्विनवाभिधा ॥ ४२ ॥

सोमवार को मृगशीर, रोहिणी, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, श्रवण, शतभिषा और पुष्य इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र तथा दूज या नवमी तिथि हो तो शुभ योग होता है ॥ ४२ ॥

सोमवार को अशुभ योग—

न चन्द्रे चाग्नेयाषाढा त्रयार्द्राश्विविशेषतः।
सिद्ध्यै चित्रा च सप्तम्येकादश्यादित्रयं तथा ॥ ४३ ॥

सामवार को धनिष्ठा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा अभिजित्, आर्द्रा, अश्विनी, विशाखा और चित्रा इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र तथा सातम, ग्यारस, बारस और तेरस इन तिथियों में से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ४३ ॥

मंगलवार को शुभ योग—

> भौमेऽश्विपौष्णाहिर्बुध्न्य-मूलराधार्यमाग्निभम् ।
> मृग पुष्यस्तथाश्लेषा जया षष्ठी च सिद्धये ॥ ४४ ॥

मगलवार को अश्विनी, रेवती, उत्तराभाद्रपदा, मूल, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, कृत्तिका, मृगशिर, पुष्य और आश्लेषा इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र तथा तीज, आठम, तेरस और छट्ठ इन तिथियों में से कोई तिथि हो तो शुभ योग होता है ॥ ४४ ॥

मंगलवार को अशुभ योग—

> न भौमे चोत्तराषाढा मघार्द्राश्रवणत्रयम् ।
> प्रतिपद्दशमी रुद्र प्रमिता च मता तिथिः ॥ ४५ ॥

मगलवार को उत्तराषाढा, मघा, आर्द्रा, धनिष्ठा, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदा इनमें से कोई नक्षत्र तथा पड़वा, दसम और ग्यारस इनमें से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ४५ ॥

बुधवार को शुभ योग—

> बुधे मैत्र श्रुति ज्येष्ठा पुष्यहस्ताग्निभत्रयम् ।
> पूर्वाषाढार्यमर्क्षे च तिथिर्भद्रा च शुभदा ॥ ४६

बुधवार को अनुराधा, श्रवण, ज्येष्ठा, पुष्य, हस्त, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, पूर्वाषाढा और उत्तराफाल्गुनी इनमें से कोई नक्षत्र तथा दूज, सातम और बारस इनमें से कोई तिथि हो तो शुभ योग होता है ॥ ४६ ॥

बुधवार को अशुभ योग—

न बुधे वासवाश्लेषा रेवतीत्रयवारुणम् ।
चित्रामूल तिथिश्चेष्टा जयैकेन्द्रनवाङ्किता ॥ ४७ ॥

बुधवार को धनिष्ठा, आश्लेषा, रेवती, अश्विनी, भरणी, शतभिषा, चित्रा और मूल इनमें से कोई नक्षत्र तथा तीज, आठम, तेरस, पडवा, चौदस और नवमी इनमें से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ४७ ॥

गुरुवार को शुभ योग—

गुरौ पुष्याश्विनादित्य-पूर्वाश्लेषाश्च वासवम् ।
पौष्ण स्वातित्रयं सिद्ध्यै पूर्णाश्चैकादशी तथा ॥ ४८ ॥

गुरुवार को पुष्य, अश्विनी, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, आश्लेषा, धनिष्ठा, रेवती, स्वाति, विशाखा और अनुराधा इनमें से कोई नक्षत्र तथा पांचम, दसम, पूर्णिमा या एकादशी तिथि हो तो शुभ योग होता है ॥ ४८ ॥

गुरुवार को अशुभ योग—

न गुरौ वारुणाग्नेय चतुष्कार्यमणत्रयम् ।
ज्येष्ठा मूल्ये तथा भद्रा तुर्या षष्ठ्यष्टमी तिथिः ॥ ४९ ॥

गुरुवार को शतभिषा, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर, आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त और ज्येष्ठा इनमें से कोई नक्षत्र तथा दूज, सातम, बारस, चौथ, छट्ठ और आठम इनमें से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ४९ ॥

शुक्रवार को शुभयोग—

शुक्रे पौष्णाश्विनाषाढा मैत्र मार्गं श्रुतिद्वयम् ।
पौनादित्यं करो नन्दात्रयोदश्यौ च सिद्धये ॥ ५० ॥

शुक्रवार को रेवती, अश्विनी, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अनुराधा, मृगशीर, श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, पुनर्वसु और हस्त इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र तथा एकम, छट्ठ, ग्यारस और तेरस इनमें से कोई तिथि हो तो शुभ योग होता है ॥ ५० ॥

शुक्रवार को अशुभ योग—

न शुक्रे भूतये ब्राह्म पुष्य सार्पं मघाभिजित् ।
ज्येष्ठा च द्वित्रिसप्तम्यो रिक्तारूपालिपयस्तथा ॥ ५१ ॥

शुक्रवार को रोहिणी, पुष्य, आश्लेषा, मघा, अभिजित् और ज्येष्ठा इनमें से कोई नक्षत्र तथा दूज, तीज, सातम, चौथ, नवमी और चौदस इनमें से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ५१ ॥

शनिवार को शुभ योग—

शनौ ब्राह्मश्रुतिद्वन्द्वाश्विमरुद्गुरुमित्रभम् ।
मघा शतभिषक् सिद्ध्यै रिक्ताष्टम्यौ तिथी तथा ॥ ५२ ॥

शनिवार को रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, अश्विनी, स्वाति, पुष्य, अनुराधा मघा और शतभिषा इनमें से कोई नक्षत्र तथा चौथ, नवमी, चौदस और अष्टमी इनमें से कोई तिथि हो तो शुभ योग होता है ॥ ५२ ॥

शनिवार को अशुभ योग—

न शनौ रेवती सिद्ध्यै वैश्वमार्यमणत्रयम् ।
पूर्वामृगश्च पूर्वाख्या तिथि षष्ठी च सप्तमी ॥ ५३ ॥

शनिवार को रेवती, उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और मृगशीर इनमें से कोई नक्षत्र तथा पड़वा, दूज, छठ्ठ और सातम इनमें से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ५३ ॥

इन सात वारों के शुभाशुभ योगों में सिद्धि, अमृतसिद्धि आदि शुभ योगों का तथा उत्पात, मृत्यु आदि अशुभ योगों का समावेश हो जाता है, इनको सुख से सुखा पूर्वक जानने के लिये नीचे लिखे हुए चक्र में देखो ।

शुभाशुभ योग चक्र—

योग	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
चरयोग	पू. षा उ. षा	आर्द्रा	विशाखा	रोहिणी	शतभिषा	मघा	मूल
क्रकच योग	१२ ति	११ ति	१० ति	९ ति	८ ति	७ ति	६ ति
दग्ध योग	१२ ति	११ ति	५ ति	३ ति	६ ति	८ ति	९ ति
विषघ्य योग	४ ति	६ ति	७ ति	२ ति	८ ति	९ ति	७ ति
हुताशन योग	१२ ति	६ ति	७ ति	८ ति	९ ति	१ ति	११ ति
यमघंट योग	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृत्तिका	रोहिणी	हस्त
दग्ध योग	भरणी	चित्रा	उ. षा	धनिष्ठा	उ. फा	ज्येष्ठा	रेवती
उत्पात	विशाखा	पूर्वाषाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. षा
मृत्यु	अनुराधा	उत्तराषाढा	शतभिषा	अश्विनी	मृगशीर	आश्लेषा	हस्त
काण	ज्येष्ठा	अभिजित्	पू. भा	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
सिद्धि	मूल	श्रवण	उ. भा	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू. फा	स्वाति
सर्वार्थ सिद्धि योग	ह. मू. उत्तरा ३ पुष्य अश्वि	अ. रो मृ. अनु पुष्य	अश्विनी उ. भा कृ. आ	रो. अनु ह. कृ मृगशिर	रे. अ अश्विनी पुष्य पुन	रे. अनु अश्विनी पुन. श्र	श्रवण रोहिणी स्वाति
अमृत सिद्धि	हस्त	मृगशिर	अश्विनी	अनुराधा	पुष्य	रेवती	रोहिणी
वज्रमुसल	भरणी	चित्रा	उ. षा	धनिष्ठा	उ. फा	ज्येष्ठा	रेवती
[illegible]	भरणी	पुष्य	उ. षा	आर्द्रा	विशाखा	रेवती	शतभिष

रवियोग—

> योगो रवेर्भात् कृत४ तर्क६ नन्द ९—
> दिग्१० विश्व१३ विंशोडुषु सर्वसिद्ध्यै ।
> आद्ये१ द्विपा५ श्व७ द्विप८ रुद्र११ सार्क १५—
> राजो१६ डुषु प्राणहरस्तु हेय ॥ ५४ ॥

सूर्य जिस नक्षत्र पर हो, उस नक्षत्र से दिन का नक्षत्र चौथा, छट्ठा, नववाँ, दसवाँ, तेरहवाँ या बीसवाँ हो तो रवियोग होता है, यह सब प्रकार से सिद्धिकारक है। परन्तु सूर्य नक्षत्र से दिन का नक्षत्र पहला, पाँचवाँ, सातवाँ, आठवाँ, ग्यारहवाँ पन्द्रहवाँ या सोलहवाँ हो तो यह योग प्राण का नाशकारक है॥ ५४ ॥

कुमारयोग—

> योग कुमारनामा शुभः कुजज्ञेन्दुशुक्रवारेषु ।
> अश्वाद्यैर्द्व्यन्तरितैर्नन्दादशपञ्चमीतिथिषु ॥ ५५ ॥

मंगल, बुध, सोम और शुक्र इनमें से कोई एक वार हो अश्विनी आदि दो २ अन्तरवाले नक्षत्र हों अर्थात् अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, हस्त, विशाखा, मूल, श्रवण और पूर्वाभाद्रपद इनमें से कोई एक नक्षत्र हो; तथा प्रथम, षष्ठ, ग्यारस, दसम और पांचम इनमें से कोई एक तिथि हो तो कुमार नाम का शुभ योग होता है। यह योग मित्रता, दीक्षा, व्रत विद्या, गृह प्रवेशादिक कार्यों में शुभ है। परन्तु मंगलवार को दसम या पूर्वाभाद्र नक्षत्र, सोमवार को ग्यारस को विशाखा नक्षत्र, बुधवार को पडवा या मूल या अश्विनी नक्षत्र शुक्रवार को दसम या रोहिणी नक्षत्र हो तो उस दिन कुमार योग होने पर भी शुभ कारक नहीं है। क्योंकि इन दिनों में क्रकच, संवर्तक, काण, यमघण्ट आदि अशुभ योग की उत्पत्ति है, इसलिए इन विरुद्ध योगों को छोड़कर कुमार योग में कार्य करना चाहिए ऐसा श्रीहरिभद्रसूरि ने लग्न शुद्धि प्रकरण में कहा है। ५५ ॥

राजयोग—

राजयोगो भरण्याद्ये-द्व्यन्तरैर्भैः शुभावहः ।
भद्रातृतीयाराकासु कुजज्ञभृगुभानुषु ॥ ५६ ॥

मंगल, बुध, शुक्र और रवि इनमें से कोई एक वार को भरणी आदि दो २ अंतरवाले नक्षत्र हों अर्थात् भरणी, मृगशिरा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाषाढा, धनिष्ठा और उत्तराभाद्रपदा इनमें से कोई नक्षत्र हो तथा दूज, सातम, बारस, तीज और पूनम इनमें से कोई तिथि हो तो राजयोग नाम का शुभ कारक योग होता है। इस योग को पूर्णभद्राचार्य ने तरुण योग कहा है ॥ ५६ ॥

स्थिर योग—

स्थिरयोग शुभो रोगो-च्छेदादौ शनिजीवयोः ।
त्रयोदश्यष्टरिक्तासु द्व्यन्तरैः कृत्तिकादिभिः ॥ ५७ ॥

गुरुवार या शनिवार को तेरस अष्टमी, चौथ, नवमी और चौदस इनमें से कोई तिथि हो तथा कृत्तिका आदि दो २ अंतरवाले नक्षत्र हों अर्थात् कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, उत्तराफाल्गुनी, स्वाति, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, शतभिषा और रेवती इनमें से कोई नक्षत्र हो तो रोग आदि के विच्छेद में शुभकारक ऐसा स्थिरयोग होता है। इस योग में स्थिर कार्य करना अच्छा है ॥ ५७ ॥

वज्रपात योग—

वज्रपातं त्यजेद् द्वित्रिपञ्चषट्सप्तमे तिथौ ।
मैत्रेऽथ त्र्युत्तरे पैत्र्ये ब्राह्मे मूलकरे क्रमात् ॥ ५८ ॥

दूज को अनुराधा, तीज को तीनों उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा या उत्तराभाद्रपदा), पंचमी को मघा, छट्ठ को रोहिणी और सातम को मूल या हस्त नक्षत्र हो तो वज्रपात नाम का योग होता है। यह योग शुभकार्य में वर्जनीय है। नारचंद्र टिप्पन में तेरस को चित्रा या स्वाति, सातम को भरणी, नवमी को पुष्य और दसमी को आश्लेषा नक्षत्र हो तो वज्रपात योग माना है। इस वज्रपात योग में शुभ कार्य करें तो छः मास में कार्य करनेवाले की मृत्यु होती है, ऐसा हर्षप्रकाश में कहा है ॥ ५८ ॥

कालमुखी योग—

चउउत्तर पचमघा कत्तिम नवमीइ तइम अणुराहा।

अट्ठमि रोहिणि सहिमा कालमुही जोगि मास इगि मच्चू ॥ ५६ ॥

चौथ को तीनों उत्तरा, पचमी को मघा, नवमी को कृत्तिका, तीज को अनुराधा और अष्टमी को रोहिणी नक्षत्र हो तो कालमुखी नाम का योग होता है। इस योग में कार्य करनेवाले की छ मास में मृत्यु होती है ॥ ५६ ॥

यमल और त्रिपुष्कर योग—

मगल गुरु सणि भद्दा मिगचित्त धणिट्ठिमा जमलजोगो।

कित्ति पुण उ फ विसाहा पू भ उ साहिं तिपुक्करम्रो ॥ ६० ॥

मगल गुरु या शनिवार को भद्रा (२ ७ १२) तिथि हो या मृगशिर, चित्रा या धनिष्ठा नक्षत्र हो तो यमल योग होता है। तथा उस वार को और उसी तिथि को कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, पूर्वाभाद्रपदा या उत्तराषाढा नक्षत्र हो तो त्रिपुष्कर योग होता है ॥ ६० ॥

पचक योग—

पचग धणिट्ठ अद्धा मयकिपयत्रिज्ज जामदिसिगमण।

वसु तिसु सुह असुह विहिय दु ति पण गुण होइ ॥ ६१ ॥

धनिष्ठा नक्षत्र के उत्तरार्द्ध से रेवती नक्षत्र तक (ध श पू उ रे) पाँच नक्षत्र का पचक सज्ञा है। इस योग में मृतक कार्य और दक्षिण दिशा में गमन नहीं करना चाहिये। उक्त तीनों योगों में जो शुभ या अशुभ कार्य किया जाय तो फल से दूना तीगुना और पचगुना होता है ॥ ६१ ॥

अवला योग—

कृत्तिअपभिई चउरो सणि बुहि ससि सूर वार जुत्त कमा।

पचमि बिइ एगारसि बारसि अवला सुहे कज्जे ॥ ६२ ॥

कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर और आर्द्रा नक्षत्र के दिन क्रमसे शनि, बुध, सोम और रविवार हो तथा पचमी, दूज, ग्यारस और बारस तिथि हो तो अवला नाम

का योग होता है। अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र, शनिवार और पंचमी तिथि; रोहिणी नक्षत्र, बुधवार और दूज तिथि, मृगशिर नक्षत्र, सोमवार और एकादशी तिथि, आर्द्रा नक्षत्र रविवार और बारस तिथि हो तो अवला योग होता है। यह शुभ कार्य में वर्जनीय है ॥ ६२ ॥

तिथि और नक्षत्र से मृत्यु योग—

मूलद्दसाइचित्ता असेस सयभिसयकत्तिरेवइआ ।
नंदाए भद्दाए भद्दवया फग्गुणी दो दो ॥ ६३ ॥
विजयाए मिगसवणा पुस्सऽस्सिणिभरणिजिट्ठ रित्ताए ।
आसाढदुग विसाहा अणुराह पुणव्वसु महा य ॥ ६४ ॥
पुन्नाइ कर धणिट्ठा रोहिणि इअमयगऽत्थनक्खत्ता ।
नंदियइट्ठारमुहे सुहकज्जे वज्जए मइमं ॥ ६५ ॥

नन्दा तिथि (१-६ ११) को मूल, आर्द्रा, स्वाति चित्रा, आश्लेषा, शतभिषा, कृत्तिका या रेवती नक्षत्र हो, भद्रा तिथि (२-७-१२) को पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र हो, जया तिथि (३-८-१३) को मृगशिर, श्रवण, पुष्य, अश्विनी, भरणी या ज्येष्ठा नक्षत्र हो रिक्ता तिथि (४-९-१४) को पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, विशाखा, अनुराधा, पुनर्वसु या मघा नक्षत्र हो, पूर्णा तिथि (५-१०-१५) को हस्त, धनिष्ठा या रोहिणी नक्षत्र हो तो ये सब नक्षत्र मृतक अवस्थावाले कहे जाते हैं। इसलिये इनमें नदी, प्रतिष्ठा आदि शुभ कार्य करना मतिमान् छोड़ दें ॥ ६३ से ६५ ॥

अशुभ योगों का परिहार—

कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्था भवारजाः ।
हूणवङ्गखशेष्वेव वर्ज्यास्त्रितयजास्तथा ॥ ६६ ॥

तिथि और वार के योग से, तिथि और नक्षत्र के योग से, नक्षत्र और वार के योग से तथा तिथि नक्षत्र और वार इन तीनों के योग से जो अशुभ योग होते हैं वे सब हूण ([illegible]), बङ्ग (बंगाल) और खश (नेपाल) देश में वर्जनीय है। अन्य देशों में वर्जनीय नहीं है ॥ ६६ ॥

रविजोग राजजोगे कुमारजोगे असुद्ध दिअहे वि ।

जं सुहकज्ज कीरइ त सव्वं बहुफल होइ ॥ ६७ ॥

अशुभ योग के दिन यदि रवियोग, राजयाग या कुमारयोग हो तो उस दिन जो शुभ कार्य किय जाय वे सब बहुत फलदायक हाते हैं ॥ ६७ ॥

अयोगे सुयोगोऽपि चेत् स्यात् तदानी-

मयोग निहत्यैप सिद्धिं तनोति ।

परे लग्नशुद्ध्या कुयोगादिनाश,

दिनार्द्धोत्तर विष्टिपूर्वं च शस्तम् ॥ ६८ ॥

अशुभ योग के दिन यदि शुभ योग हो तो वह अशुभ याग को नाश करक सिद्धि कारक होता है । कितनेक आचार्य कहते हैं कि लग्नशुद्धि मे कुयोगों का नाश होता है । भद्रातिथि दिनार्द्ध के बाद शुभ होती है ॥ ६८ ॥

कुतिहि कुवार-कुजोगा विट्ठी वि अ जम्मरिक्ख दड्ढतिही ।

मज्झण्हदिणाओ पर सव्वंपि सुभ भवेऽवस्स ॥ ६९ ॥

दुष्टतिथि, दुष्टवार, दुष्टयोग, विष्टि (भद्रा), जन्मनक्षत्र और दग्धतिथि य सब मध्याह्न के बाद अवश्य करक शुभ होते हैं ॥ ६९ ॥

अयोगास्तिथिवारर्क्षे जाता येऽमी प्रकीर्त्तिता' ।

लग्ने ग्रहबलोपेते प्रभवन्ति न ते क्वचित् ॥ ७० ॥

यत्र लग्न विना कर्म क्रियते शुभसञ्ज्ञकम् ।

तत्रैतेषा हि योगाना प्रभावाज्जायते फलम् ॥ ७१ ॥

तिथि वार और नक्षत्रों से उत्पन्न होने वाले जो कुयोग कहे हुए हैं, वे सब बलवान ग्रह युक्त लग्न में कभी भी समर्थ नहीं होते हैं अर्थात् लग्नबल अच्छा हो तो कुयोगों का दोष न' हीं होता। जहां लग्न बिना ही शुभ कार्य करने में आवे वहां ही उन योगों के प्रभाव से फल होता है ॥ ७०-७१ ॥

लग्न विचार—

लग्न श्रेष्ठं प्रतिष्ठाया क्रमान्मध्यममधावरम् ।

द्व्यङ्ग स्थिर च भूयाभिर्गुणैराढ्यं चर तथा ॥ ७२ ॥

का योग होता है। अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र, शनिवार और पंचमी तिथि; रोहिणी नक्षत्र, बुधवार और दूज तिथि, मृगशिर नक्षत्र, सोमवार और एकादशी तिथि, आर्द्रा नक्षत्र रविवार और बारस तिथि हो तो अवला योग होता है। यह शुभ कार्य में वर्जनीय है ॥ ६२ ॥

तिथि और नक्षत्र से मृत्यु योग—

मूलद्दसाइचित्ता असेस सयभिसयकत्तिरेवइआ ।
नदाए भद्दाए भद्दवया फग्गुणी दो दो ॥ ६३ ॥
विजयाए मिगसवणा पुस्सऽस्सिणिभरणिजिट्ठ रित्ताए ।
आसाढदुग विसाहा अणुराह पुणव्वसु महा य ॥ ६४ ॥
पुन्नाइ कर धणिट्ठा रोहिणि इअमयगऽवत्थनक्खत्ता ।
नदिपइट्ठापमुहे सुहकज्जे वज्जए महम ६५ ॥

नंदा तिथि (१-६-११) को मूल, आर्द्रा, स्वाति चित्रा, आश्लेषा, शतभिषा, कृत्तिका या रेवती नक्षत्र हो, भद्रा तिथि (२-७-१२) को पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र हो, जया तिथि (३-८-१३) को मृगशिर, श्रवण, पुष्य, अश्विनी, भरणी या ज्येष्ठा नक्षत्र हो रिक्ता तिथि (४-९-१४) को पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, विशाखा, अनुराधा, पुनर्वसु या मघा नक्षत्र हो, पूर्णा तिथि (५-१०-१५) को हस्त, धनिष्ठा या रोहिणी नक्षत्र हो तो ये सब नक्षत्र मृतक अवस्थावाले कहे जाते हैं। इसलिये इनमें नंदी, प्रतिष्ठा आदि शुभ कार्य करना मतिमान् छोड़ दें ॥ ६३ से ६५ ॥

अशुभ योगों का परिहार—

कुयोगास्तिथिवारोत्था स्तिथिभोत्था भवारजा ।
हूणवङ्गखशेष्वेव वर्ज्यास्त्रितयजास्तथा ॥ ६६ ॥

तिथि और वार के योग से, तिथि और नक्षत्र के योग से, नक्षत्र और वार के योग से तथा तिथि नक्षत्र और वार इन तीनों के योग से जो अशुभ योग होते हैं, वे सब हूण (उडीसा), बङ्ग (बंगाल) और खश (नैपाल) देश में वर्जनीय हैं। अन्य देशों में वर्जनीय नहीं हैं ॥ ६६ ॥

रविजोग राजजोगे कुमारजोगे असुद्ध दिअहे वि ।

जं सुहकज्ज कीरइ तं सव्व बहुफल होइ ॥ ६७ ॥

अशुभ योग के दिन यदि रवियोग, राजयोग या कुमारयोग हो तो उस दिन जो शुभ कार्य किये जाय वे सब बहुत फलदायक होते हैं ॥ ६७ ॥

अयोगे सुयोगोऽपि चेत् स्यात् तदानी-

मयोग निहत्यैष सिद्धिं तनोति ।

परे लग्नशुद्धया कुयोगादिनाश,

दिनार्द्धोत्तर विष्टिपूर्वं च शस्तम् ॥ ६८ ॥

अशुभ योग के दिन यदि शुभ योग हो तो वह अशुभ योग को नाश करके सिद्धि कारक होता है । कितनेक आचार्य कहते हैं कि लग्नशुद्धि से कुयोगों का नाश होता है । भद्रातिथि दिनार्द्ध के बाद शुभ होती है ॥ ६८ ॥

कुतिहि-कुवार कुजोगा विट्ठी वि अ जम्मरिक्ख दड्ढतिही ।

मज्झण्हदिणाओ पर सव्वपि सुभ भवेऽवस्स ॥ ६९ ॥

दुष्टतिथि, दुष्टवार, दुष्टयोग, विष्टि (भद्रा), जन्मनक्षत्र और दग्धतिथि ये सब मध्याह्न के बाद अवश्य करके शुभ होते हैं ॥ ६९ ॥

अयोगास्तिथिवारर्क्षे जाता येऽमी प्रकीर्तिताः ।

लग्ने ग्रहबलोपेते प्रभवन्ति न ते क्वचित् ॥ ७० ॥

यत्र लग्न विना कर्म क्रियते शुभसञ्ज्ञकम् ।

तत्रैतेषा हि योगाना प्रभावाज्जायते फलम् ॥ ७१ ॥

तिथि वार और नक्षत्रों से उत्पन्न होने वाले जो कुयोग कहे हुए हैं, वे सब बलवान ग्रह युक्त लग्न में कभी भी समर्थ नहीं होते हैं अर्थात् लग्नबल अच्छा हो तो कुयोगों का दोष न‍ीं होता। जहां लग्न बिना ही शुभ कार्य करने में आवे वहां ही उन योगों के प्रभाव से फल होता है ॥ ७०-७१ ॥

लग्न विचार—

लग्न श्रेष्ठं प्रतिष्ठाया क्रमान्मध्यममथावरम् ।

द्व्यङ्ग स्थिर च भूयाभि-र्गुणैराढ्यं चर तथा ॥ ७२ ॥

जिनदेव की प्रतिष्ठा में द्विस्वभाव लग्न श्रेष्ठ है, स्थिर लग्न मध्यम और चर लग्न कनिष्ठ है। यदि चर लग्न अत्यंत बलवान शुभ ग्रहों से युक्त हो तो ग्रहण कर सकते हैं ॥ ७२ ॥

द्विस्वभाव	मिथुन ३	कन्या ६	धन ९	मीन १२	उत्तम
स्थिर	वृष २	सिंह ५	वृश्चिक ८	कुंभ ११	मध्यम
चर	मेष १	कर्क ४	तुला ७	मकर १०	अधम

सिंहोदये दिनकरो घटभे विधाता,
नारायणस्तु युवतौ मिथुने महेशः ।
देव्यो द्विमूर्त्तिभवनेषु निवेशनीया,
क्षुद्रास्चरे स्थिरगृहे निखिलाश्च देवा ॥ ७३ ॥

सिंह लग्न में सूर्य की, कुंभ लग्न में ब्रह्मा की, कन्या लग्न में नारायण (विष्णु) की, मिथुन लग्न में महादेव की, द्विस्वभाववाले लग्न में देवियों की, चर लग्न में क्षुद्र (व्यंतर आदि) देवों की और स्थिर लग्न में समस्त देवों की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ७३ ॥

श्रीहरिभद्राचार्य ने तो इस प्रकार कहा है—

सौम्यैर्देवाः स्थाप्या क्रूरैर्गन्धर्वयक्षरक्षांसि ।
गणपतिगणांश्च नियतं कुर्यात् साधारणे लग्ने ॥ ७४ ॥

सौम्य ग्रहों के लग्न में देवों की स्थापना करनी और क्रूर ग्रहों के लग्न में गन्धर्व, यक्ष और राक्षस इनकी स्थापना करनी तथा गणपति और गणों की स्थापना साधारण लग्न में करनी चाहिये ॥ ७४ ॥

लग्न में ग्रहों का होरा नवमांशादिक बल देखा जाता है, इसलिये प्रसंगोपात यहां लिखता हूं। आरम्भसिद्धिवार्त्तिक में कहा है कि—तिथि आदि के बल से चंद्रमा

का बल सौ गुणा है, चद्रमा से लग्न का बल हजार गुणा है और लग्न से होरा आदि षट्‌वर्ग का बल उत्तरोत्तर पांच २ गुणा अधिक बलवान् है।

होरा और द्रेष्काण का स्वरूप—

होरा रारयर्द्धमोजर्क्षे ऽर्कन्द्वोरिन्द्वर्कयो समे ।
द्रेष्काणा भे प्रयस्तु स्व पञ्चम त्रित्रिकोणपाः ॥ ७५ ॥

राशि के अर्द्ध भाग को होरा कहते हैं, इसलिये प्रत्येक राशि में दो दो होरा हैं। मेष आदि विषम राशि में प्रथम होरा रवि की और दूसरी चद्रमा की है। वृष आदि सम राशि में प्रथम होरा चद्रमा की और दूसरी होरा सूर्य की है।

प्रत्येक राशि में तीन२ द्रेष्काण हैं, उनमें जो अपनी राशि का स्वामी है वह प्रथम द्रेष्काण का स्वामी है। अपनी राशि से पांचवीं राशि का जो स्वामी है वह दूसरे द्रेष्काण का स्वामी है और अपनी राशि से नववीं राशि का जो स्वामी है वह तीसरे द्रेष्काण का स्वामी है ॥ ७५ ॥

नवमांश का स्वरूप—

नवांशा' स्युरजादीना-मजैणतुलकर्कत' ।
वर्गोत्तमाश्चरादौ ते प्रथम' पञ्चमोऽन्तिम ॥ ७६ ॥

प्रत्येक राशि में नव२ नवमांश हैं। मेष राशि में प्रथम नवमांश मेष का, दूसरा वृष का, तीसरा मिथुन का, चौथा कर्क का, पांचवां सिंह का, छट्ठा कन्या का, सातवां तुला का, आठवां वृश्चिक का और नववां धन का है। इसी प्रकार वृष राशि में प्रथम नवमांश मकर से, मिथुन राशि में प्रथम नवमांश तुला से, कर्कादि में प्रथम नवमांश कर्क से गिनना। इसी प्रकार सिंह और धनराशि के नवमांश मेष की तरह, कन्या और मकर का नवमांश वृष की तरह, तुला और कुभ का नवमांश मिथुन की तरह, वृश्चिक और मीन का नवमांश कर्क की तरह जानना।

चर राशियों में प्रथम नवमांश वर्गोत्तम, स्थिर राशियों में पांचवाँ नवमांश और द्विस्वभाव राशियों में नववां नवमांश वर्गोत्तम है। अर्थात् सब राशियों में अपना२ नवमांश वर्गोत्तम है ॥ ७६ ॥

प्रतिष्ठा विवाह आदि में नवमांश की प्राधान्यता है। कहा है कि—

लग्ने शुभेऽपि यद्यंशः क्रूरः स्यान्नेष्टसिद्धिदः ।
लग्ने क्रूरेऽपि सौम्यांशः शुभदोंऽशो बली यतः ॥ ७७ ॥

लग्न शुभ होने पर भी यदि नवमांश क्रूर हो तो इष्टसिद्धि नहीं करता है। और लग्न क्रूर होने पर भी नवमांश शुभ हो तो शुभकारक है, कारण कि अंश ही बलवान् है। क्रूर अंश में रहा हुआ शुभ ग्रह भी क्रूर होता है और शुभ अंश में रहा हुआ क्रूर ग्रह शुभ होता है। इसलिये नवमांश की शुद्धि अवश्य देखना चाहिये ॥ ७७ ॥

प्रतिष्ठा में शुभाशुभ नवमांश—

अंशास्तु मिथुनः कन्या धन्वाद्यार्द्धं च शोभना ।
प्रतिष्ठायां वृष सिंहो वणिग् मीनश्च मध्यमाः ॥ ७८ ॥

प्रतिष्ठा में मिथुन, कन्या और धन का पूर्वार्द्ध इतने अंश उत्तम हैं। तथा वृष, सिंह, तुला और मीन इतने अंश मध्यम हैं ॥ ७८ ॥

द्वादशांश और त्रिंशांश का स्वरूप—

स्युर्द्वादशांशा स्वगृहादमेषा त्रिंशांशकेष्वोजयुजोस्तु राश्योः ।
क्रमोत्क्रमादर्थशरा ष्ट-शैले न्द्रियेषु भौमार्किगुरुज्ञशुक्राः ॥ ७९ ॥

प्रत्येक राशि में बारह २ द्वादशांश हैं। जिस नाम की राशि हो उसी राशि का प्रथम द्वादशांश और बाकी के ग्यारह द्वादशांश उसके पीछे की क्रमशः ग्यारह राशियों के नाम ॥ जानना। इन द्वादशांशों के स्वामी राशियों के जो स्वामी हैं वे ही हैं।

प्रत्येक राशि में तीस त्रिंशांश हैं। इनमें मेष, मिथुन आदि विषम राशि के पांच, पांच, आठ, सात और पांच अंशों के स्वामी क्रम से मंगल, शनि, गुरु, बुध और शुक्र हैं। वृष आदि सम राशि के त्रिंशांश और उनके स्वामी भी उत्क्रम से जानना, अर्थात् पांच, सात, आठ, पांच और पांच त्रिंशांशों के स्वामी क्रम से शुक्र, बुध, गुरु, शनि और मंगल हैं ॥ ७९ ॥

					द्वादशांश	त्रिंशांश
मेष	मंगल	रवि चंद्र	मंगल रवि गुरु	मं शु बु चं र बु शु मं गु	मं शु बु चं र बु शु मं गु श श गु	५ मं ५ श ८ गु ७ बु ५ शु
वृष	शुक्र	चंद्र रवि	शुक्र बुध शनि	श श गु मं शु बु चं र बु	शु बु चं र बु शु मं गु श श गु मं	५ शु ७ बु ८ गु ५ श ५ मं
मिथुन	बुध	रवि चंद्र	बुध शुक्र शनि	शु मं गु श श गु मं शु बु	बु चं र बु शु मं गु श श गु मं शु	५ मं ५ श ८ गु ७ बु ५ शु
कर्क	चंद्र	चं रवि	चंद्र मंगल गुरु	चं र बु शु मं गु श श गु	चं र बु शु मं गु श श गु मं शु बु	५ शु ७ बु ८ गु ५ श ५ मं
सिंह	रवि	रवि चंद्र	रवि गुरु मंगल	मं शु बु चं र बु शु मं गु	र बु शु मं गु श श गु मं शु बु चं	५ मं ५ श ८ गु ७ बु ५ शु
कन्या	बुध	चंद्र रवि	बु शनि शुक्र	श श गु मं शु बु चं र बु	बु शु मं गु श श गु मं शु बु चं र	५ शु ७ बु ८ गु ५ श ५ मं
तुला	शुक्र	रवि चं	शुक्र शनि बुध	शु मं गु श श गु मं शु बु	शु मं गु श श गु मं शु बु चं र बु	५ मं ५ श ८ गु ७ बु ५ शु
वृश्चिक	मंगल	चं रवि	मंगल गुरु चं	चं र बु शु मं गु श श गु	मं गु श श गु मं शु बु चं र बु शु	५ शु ७ बु ८ गु ५ श ५ मं
धन	गुरु	रवि चंद्र	गुरु मंगल रवि	मं शु बु चं र बु शु मं गु	गु श श गु मं शु बु चं र बु शु मं	५ मं ५ श ८ गु ७ बु ५ शु
मकर	शनि	चंद्र रवि	शनि शुक्र बुध	श श गु मं शु बु चं र बु	श श गु मं शु बु चं र बु शु मं गु	५ शु ७ बु ८ गु ५ श ५ मं
कुंभ	शनि	रवि चंद्र	शनि बुध शुक्र	शु मं गु श श गु मं शु बु	श गु मं शु बु चं र बु शु मं गु श	५ मं ५ श ८ गु ७ बु ५ शु
मीन	गुरु	चं रवि	गुरु चंद्र मंगल	चं र बु शु मं गु श श गु	गु मं शु बु चं र बु शु मं गु श श	५ शु ७ बु ८ गु ५ श ५ मं

ी में चंद्रमा का बल अवश्य देखना चाहिये। कहा है कि—

ग्न देह' पद्कवर्गाऽङ्गकानि, प्राणश्चन्द्रो धातव' खेचरेन्द्रा' ।

ाणे नष्टे देहधात्वङ्गनाशो, यत्नेनातश्च द्रवीर्यं प्रकल्प्यम् ॥ ८० ॥

शरीर है, पद्वर्ग ये अग हैं, चन्द्रमा प्राण है और अन्य ग्रह सप्त धातु विनाश हा जाने मे शरीर, अगोपांग और धातु का भी विनाश हो लिये प्राणरूप चन्द्रमा का बल अवश्य लेना चाहिये ॥ ८० ॥

म आदि स्थान की शुद्धि—

वि कुजोऽर्कजो राहुः शुक्रो वा सप्तमस्थित. ।

न्ति स्थापककर्त्तारौ स्थाप्यमप्यविलम्बितम् ॥ ८१ ॥

मगल, शनि राहु या शुक्र यदि सप्तम स्थान में रहा हो ता स्थापन का और करनेवाले गृहस्थ का तथा प्रतिमा का भी शीघ्र ही है ॥ ८१ ॥

राज्या लग्नेऽब्धयो मन्दात् षष्ठे शुक्रेन्दुलग्नपा ।

न्ध्रे चन्द्रादयः पञ्च सर्वेऽस्तेऽब्जगुरू समौ । ८२ ॥

में शनि, रवि, सोम या मगल, छट्ठे स्थान में शुक्र, चन्द्रमा या लग्न ठवें स्थान में चद्र, मगल, बुध, गुरु या शुक्र वर्जनीय है तथा सप्तम भी ग्रह हो तो अच्छा नहीं हैं। किन्तु कितनेक आचार्यों का मत है गुरु सातवें स्थान में हों तो मध्यम फलदायक है ॥ ८२ ॥

ली में ग्रह स्थापना—

तिष्ठायां श्रेष्ठो रविरुपचये शीतकिरण. ,

स्वधर्माढ्ये तत्र क्षितिजरविजौ त्र्यायरिपुगौ ।

चत्वर्गोपार्थौ व्ययनिधनवर्जौ भृगुसुत ,

सत धावल्लग्नाद्व्ययमदशमायेष्वपि तथा ॥ ८३ ॥

के समय लग्न कुण्डली में सूर्य यदि उपचय (३ ६ १०-११) स्थान थष्ठ है। चन्द्रमा धन और धम स्थान सहित पूर्वोक्त स्थानों में

(१-२ ६-९-१० ११) रहा हो तो श्रेष्ठ है। मंगल और शनि तीसरे, ग्यारहवें और छट्ठे स्थान में रहे हों तो श्रेष्ठ हैं। बुध और गुरु बारहवें और आठवें इन दोनों स्थानों को छोड़कर बाकी कोई भी स्थान में रहे हों तो अच्छे हैं। शुक्र लग्न से पाँचवें स्थान तक (१ २-३ ४-५) तथा नवम, दशम और ग्यारहवाँ इन स्थानों में रहा हो तो श्रेष्ठ है ॥ ८३ ॥

> लग्नमृत्युसुतास्तेषु पापा रन्ध्रे शुभा स्थिता ।
>
> त्याज्या देवप्रतिष्ठायां लग्नषष्ठाष्टग शशी ॥ ८४ ॥

पापग्रह (रवि मंगल, शनि, राहु और केतु) यदि पहले, आठवें पाँचवें और सातवें स्थान में रहे हों, शुभग्रह आठवें स्थान में रहे हों और चन्द्रमा पहले, छट्ठे या आठवें स्थान में रहा हो, इस प्रकार कुण्डली में ग्रह स्थापना हो तो वह लग्न देव की प्रतिष्ठा में त्याग करने योग्य है ॥ ८४ ॥

आरंभसिद्धि में कहा है कि—

> त्रिरिपा१ धासुतखे२ स्वत्रिकोणके३ त्रे३ विरैरमरेऽग्र४र्व्यये५ ।
>
> लाभे६ क्रूर' बुधा२ चित३ भृग४ शशि५ सर्वे६ क्रमेण शुभा' ॥८५॥

क्रूरग्रह तीसरे और छट्ठे स्थान में शुभ हैं, बुध पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें या दसवें स्थान में रहा हो तो शुभ है। गुरु दूसरे, पाँचवें, नववें और केन्द्र (१ २ ३ ४) स्थान में शुभ है। शुक्र (६ ५ १ ४ १०) इन पांच स्थानों में शुभ है। चन्द्रमा दूसरे और तीसरे स्थान में शुभ है। और समस्त ग्रह ग्यारहवें स्थान में शुभ हैं ॥ ८५ ॥

> खेऽर्क' केन्द्रारिधर्मेषु शशी ज्ञोऽरिनवास्तग ।
>
> षष्ठेऽप स्वत्रिग' शुक्रो मध्यमा' स्थापनाक्षणे ॥ ८६ ॥
>
> आरेन्द्वर्को सुतेऽस्तारिरिष्फे शुक्रस्त्रिगो गुरु ।
>
> विमध्यमा शनिर्धीखे सर्वे शेषेषु निन्दिता' ॥ ८७ ।

दसवें स्थान में रहा हुआ सूर्य, केन्द्र (१ ४ ७-१०), अरि (६) और धर्म (९) स्थान में रहा हुआ चन्द्र, छट्ठे, सातवें और नववें स्थान में रहा हुआ बुध, छट्ठ स्थान में गुरु, दूसरे व तीसरे स्थान में शुक्र हो तो प्रतिष्ठा के समय में मध्यम फलदायक है।

र सूर्य पांचवें स्थान में, शुक्र छट्ठे, सातवें या बारहवें स्थान में, गुरु तीसरे
र पांचवें या दसवें स्थान में हो तो विमध्यम फलदायक है। इनके
स्थानों में सब ग्रह अधम है ॥ ८६-८७ ॥

ह स्थापना यत्र—

उत्तम	मध्यम	विमध्यम	अधम
६ ११	१०	५	१ २ ४ ७ ८ ९ १२
३ ११	१ ४ ६ ७ ९ १०	५	८ १२
६ ११	•	५	१ २ ४ ७ ८ ९ १० १२
४ ५ १० ११	६ ७ ९	•	८ १२
५ ६ ७ १० ११	९	३	८ १२
६ १० ११	२-३	५ ७ १२	८
६ ११	•	५ १०	१ २ ४ ७ ८ ९ १२
६ ११	२ ४ ५ ८ ९ १० १२	•	१ ०

तिष्ठा मुहूर्त—

बलवति सूर्यस्य सुते बलहीनेऽङ्गारके बुधे चैव ।
मेषवृषस्थे सूर्ये क्षपाकरे चार्हती स्थाप्या ॥ ८८ ॥
बलवान् हो, मंगल और बुध बलहीन हों तथा मेष और वृष राशि में सूर्य
रहे हों तब अरिहंत (जिनदेव) की प्रतिमा स्थापन करना
॥

तिष्ठा मुहूर्त—

लहीने त्रिदशगुरौ बलवति भौमे त्रिकोणसस्थे वा ।
सुरगुरौ चापस्थे महेश्वरार्चा प्रतिष्ठाप्या ॥ ८९ ॥

गुरु बलहीन हो, मंगल बलवान् हो या नवम पंचम स्थान में रहा हो, शुक्र ग्यारहवें स्थान में रहा हो ऐसे लग्न में महादेव की प्रतिष्ठा करना चाहिये ॥ ८६ ॥

ब्रह्मा प्रतिष्ठा मुहूर्त—

> बलहीने स्वसुरगुरौ बलवति चन्द्रात्मजे विलग्ने वा ।
> त्रिदशगुरावायस्थे स्थाप्या ब्राह्मी तथा प्रतिमा ॥ ६० ॥

शुक्र बलहीन हो, बुध बलवान् हो या लग्न में रहा हो, गुरु ग्यारहवें स्थान में रहा हो ऐसे लग्न में ब्रह्मा की प्रतिमा स्थापन करना चाहिये ॥ ६० ॥

देवी प्रतिष्ठा मुहूर्त—

> शुक्रोदये नवम्यां बलवति चन्द्रे कुजे गगनसंस्थे ।
> त्रिदशगुरौ बलयुक्ते देवीनां स्थापयेदर्चाम् ॥ ६१ ॥

शुक्र के उदय में, नवमी के दिन, चन्द्रमा बलवान् हो, मंगल दसवें स्थान में रहा हो और गुरु बलवान् हो ऐसे लग्न में देवी की प्रतिमा स्थापन करना चाहिये ॥ ६१ ॥

इन्द्र, कार्तिक स्वामी, यक्ष, चंद्र और सूर्य प्रतिष्ठा मुहूर्त—

> बुधलग्ने जीवे वा चतुष्टयस्थे भृगौ हिबुकसंस्थे ।
> वासवकुमारयक्षेन्दु भास्कराणां प्रतिष्ठा स्यात् ॥ ६२ ॥

बुध लग्न में रहा हो, गुरु चतुष्टय (१-४-७-१०) स्थान में रहा हो और शुक्र चतुर्थ स्थान में रहा हो ऐसे लग्न में इन्द्र, कार्तिकेय, यक्ष, चन्द्र और सूर्य की प्रतिष्ठा करना चाहिये ॥ ६२ ॥

ग्रह प्रतिष्ठा मुहूर्त—

> यस्य ग्रहस्य वा वर्गस्तेन युक्ते निशाकरे ।
> प्रतिष्ठा तस्य कर्त्तव्या स्वस्ववर्गोदयेऽपि वा ॥ ६३ ॥

जिस ग्रह का जो वर्ग (राशि) हो उस वर्ग में युक्त चन्द्रमा हो तब उसी ग्रह के वर्ग का उदय हो तब ग्रहों की प्रतिष्ठा करना चाहिये ॥ ६३ ॥

बलहीन ग्रहों का फल—

बलहीनाः प्रतिष्ठाय रवीन्दुगुरुभार्गवाः ।

गृहेश-गृहिणी सौख्य स्वानि हन्युर्यथाक्रमम् ॥ ६४ ॥

सूर्य बलहीन हो तो घर के स्वामी का, चद्रमा बलहीन हो तो स्त्री का, गुरु बलहीन हो तो सुख का और शुक्र बलहीन हो तो धन का विनाश होता है ॥ ६४ ॥

प्रासाद विनाश कारक योग—

तनु-बन्धु-सुत द्यून धर्मेषु तिमिरान्तक ।

सकर्मस्थु कुजार्की च संहरन्ति सुरालयम् ॥ ६५ ॥

पहला, चौथा, पाँचवाँ, सातवाँ या नववाँ इन पाचों में से किसी स्थान में सूर्य रहा हो तथा उक्त पाच स्थानों में या दसवें स्थान में मगल या शनि रहा हो तो देवालय का विनाश कारक है ॥ ६५ ॥

अशुभ ग्रहों का परिहार—

सौम्यवाक्पतिशुक्राणां य एकोऽपि बलोत्कटः ।

क्रूरैरयुक्तः केन्द्रस्थः सद्योऽरिष्टं विनष्टि स ॥ ६६ ॥

बुध, गुरु और शुक्र इनमें से कोई एक भी बलवान् हो, एव इनके साथ कोई क्रूर ग्रह न रहा हो और केन्द्र में रहे हों तो वे शीघ्र ही अरिष्ट योगों का नाश करते हैं ॥ ६६ ॥

बलिष्ठः स्वोच्चगो दोषानशीतिं शीतरश्मिजः ।

वाक्पतिस्तु शतं हन्ति सहस्रं वा सुरार्चितः ॥ ६७ ॥

बलवान् होकर अपना उच्च स्थान में रहा हुआ बुध अस्सी दोषों का, गुरु सौ दोषों का और शुक्र हजार दोषों का नाश करता है ॥ ६७ ॥

बुधो विनार्केण चतुष्टयेषु स्थितः शतं हन्ति विलग्नदोषान् ।

शुक्रः सहस्रं विमनोभवेषु सर्वत्र गीर्वाणगुरुस्तु लक्षम् ॥ ६८ ॥

सूर्य के साथ नहीं रहा हुआ बुध चार केन्द्र में से कोई केन्द्र में रहा हो तो लग्न के एक सौ दोषों का विनाश करता है । सूर्य के साथ नहीं रहा हुआ शुक्र

ातवें स्थान के सिवाय कोई भी केन्द्र में रहा हो तो लग्न के हजार दोषों का नाश रता है और सूर्य रहित गुरु चार में से कोई केन्द्र में रहा हो तो लग्न के लाख ोषों का विनाश करता है ॥ ९८ ॥

तिथिवासरनक्षत्रयोगलग्नक्षणादिजान् ।

सबलान् हरतो दोषान् गुरुशुक्रौ विलग्नगौ ॥ ९९ ॥

तिथि, वार, नक्षत्र, योग, लग्न और मुहूर्त मे उत्पन्न होने वाले प्रबल दोषों ो लग्न में रहे हुए गुरु और शुक्र नाश करते हैं ॥ ९८ ॥

लग्नजातान्नवांशोत्थान् क्रूरदृष्टिकृतानपि ।

हन्याज्जीवस्तनौ दोषान् व्याधीन् धन्वन्तरिर्यथा ॥ १०० ॥

लग्न से, नवांशक से और क्रूरदृष्टि से उत्पन्न होने वाले दोषों को लग्न में रहा ुआ गुरु नाश करता है, जैसे शरीर में रहे हुए रोगों को धन्वन्तरी नाश रता है ॥ १०० ॥

शुभग्रह की दृष्टि से क्रूरग्रह का शुभपन—

लग्नात् क्रूरो न दोषाय निन्द्यस्थानस्थितोऽपि सन् ।

दृष्टः केन्द्रत्रिकोणस्थैः सौम्यजीवसितैर्यदि ॥ १०१ ॥

क्रूरग्रह लग्न से निंदनीय स्थान में रहे हों, परन्तु केन्द्र या त्रिकोण स्थान में हे हुए बुध, गुरु या शुक्र से देखे जाते हों अर्थात् शुभ ग्रहों की दृष्टि पड़ती हो तो ोष नहीं है ॥ १०१ ॥

कूरा हवंति सोमा सोमा दुगुण फल पयच्छंति ।

जइ पासइ किंदठिओ तिकोणपरिसट्ठिओ वि गुरू ॥ १०२ ॥

केन्द्र में या त्रिकोण में रहा हुआ गुरु यदि क्रूरग्रह को देखता हो तो वे ्रग्रह शुभ हो जाते हैं और शुभ ग्रहों को देखता हो तो वे शुभग्रह दुगुना शुभ फल ेनेवाले होते हैं ॥ १०२ ॥

सिद्धछाया लग्न—

सिद्धच्छाया प्रमादर्को दिपु सिद्धिप्रदा पदैः ।

रुद्र-सार्द्धाष्ट-नन्दाष्ट सप्तभिर्बुध्दृप्रबद्ध क्रमो ॥ १०३ ॥

जब अपने शरीर की छाया रविवार को ग्यारह, सोमवार को साढ़ आठ, मंगलवार को नव, बुधवार को आठ, गुरुवार को सात, शुक्रवार को साढे आठ और शनिवार को भी साढे आठ पैर हो तब उसको सिद्धछाया कहते हैं, वह सब कार्य की सिद्धिदायक है ॥ १०३ ॥

प्रकारान्तर से सिद्धछाया लग्न—

वीस सोलस पनरस चउदस तेरस य बार बारेव ।
रविमाइसु बारगुलसकुछायगुला सिद्धा ॥ १०४ ॥

जब बारह अगुल के शकु की छाया रविवार को बीस, सोमवार को सोलह, मगलवार को पद्रह, बुधवार को चौदह, गुरुवार को तेरह, शुक्रवार को बारह और शनिवार को भी बारह अगुल हो तब उसको भी सिद्धछाया कहते हैं ॥ १०४ ॥

शुभ मुहूर्त के अभाव में उपरोक्त सिद्धछाया लग्न से समस्त शुभ कार्य करना चाहिये । नरपतिजयचर्या में कहा है कि—

नक्षत्राणि तिथिवारा-स्ताराश्चन्द्रबल ग्रहा ।
दुष्टान्यपि शुभ भाव भजन्ते सिद्धच्छायया ॥ १०५ ॥

नक्षत्र, तिथि, वार, तारावल, चन्द्रबल और ग्रह ये कभी दोषवाले हों तो भी उक्त सिद्धछाया से शुभ भाव को देनेवाले होते हैं ॥ १०५ ॥

नग	नाम	
२	जैनागम बृहद्भाण्डागार	रतलाम
२	जैन श्वेताम्बर सोसायटी हस्ते बाबू चाद मलजी चौपड़ा	मधुवन
१	शाह जीवराजजी भीमाजी,	खीनाणदी
१	,, फूलचदजी चुन्नीलालजी	,,
१	,, सहसमलजी सेनाजी	,,
१	,, उमेदमलजी ओगाजी	,,
१	,, चुन्नीलालजी कस्तूरचदजी	,,
१	,, फोजमलजी वनेचदजी	,,
१	,, दलीचदजी दोवाजी	कालन्द्री
१	,, हुकमीचदजी डोंगाजी	,,
१	,, भनुतमलजी मनाजी	,,
१	,, हेमाजी लूबाजी	,,
१	,, ताराचदजी भभूतमलजी	,,
१	,, जी० आर० शाह	,,
१	,, जेठमलजी अचलाजी	चडवाल
१	,, एच० जे० राठौड़	कोल्हापुर
१	,, मिलापचदजी प्रतापचदजी	सिरोही
१	,, साकलचदजी चीमनाजी	जावाल
१	,, भगवानजी लुनाजी	सियाणा
१	,, ताराचदजी वीठाजी	,,
१	,, ताराचदजी नरसिंहजी	,,

नग	नाम	
१	शाह नथमलजी हेमाजी	मिवाना
१	,, कपूरचंदजी जेठमलजी	,,
१	,, भीखमचदजी धनाजी	खोपोली
		(कोलाबा)
१	,, भेराजी वृद्धिचंदजी तातेड़	
१	,, जुहारमलजी गुमनाजी	शिवगज
१	,, फूलचद खेमचद बलाद	
१	बाबू चौथमलजी चढालिया	पालीताना
१	शाह चतुरभाई पूजाभाई	,,
१	मिस्त्री वृंदावन जैरामभाई सोमपुरा	,,
१	,, नटवरलाल मोहनलाल सोमपुरा	सिद्धपुर
१	,, जदुलाल	
१	भोजक हाथीराम काशीराम	वडगाव
१	शाह न्यालचद मोतीचन्द	भटका
१	,, दलीचद छगनलाल	भागभावाला
१	,, छोटालाल डामरसी	कोटकपुरा
१	सेठ सत्यनारायणजी	देहली
१	शाह हीरालाल छगनलाल	कडी
१	बाबू इन्द्रचदजी बोथरा	अजीमगंज
१	सेठ मोतीलाल कन्हैयालाल	हापड़